

The Gunjan

(Multi Disciplinary Quarterly International Referred/Peer Reviewed Research Journal)

PATRON

Shri Manvendra Swaroop, En. Gaurvendra Swaroop

Secretary - Dayanand Shikshan Sansthan, Kanpur

Dr.A.K.Dixit(Principal-D.A.V.College,Kanpur) **Dr.Anoop Kr.Singh**(Principal-P.P.N.College,Kanpur)

Editor-in-Chief

Vidya Verma

**Principal, Government Degree College,
Sumerpur-210502 Hamirpur (U.P.)**

Editor

Dr. Seema Mishra

**Assistant Professor-Dept. of B. Ed.,
Dr. V. S. I. P. S. Kidwai Nagar, Kanpur (UP)**

Peer-Reviewed Board (International)

◆**Dr. Ram Babu Gautam**, New Jersi 220, Wheeler Street, Clifsite Park, New Jersi-07010 (America),
◆**Dr. Sirish Kumar Pandey**, Ul Litawashka 37, 51-354, Ursaw, Poland, ◆**Dr. Alok Agarwal**
Chinmay Degree College, Ranipur, Haridwar (U.K.) ◆ **Dr. Filip Rodriguez-e-Melo** S. S. Ambiyee
Government College of Arts & Commerce, Virnoda, Pernem, Gova ◆**Dr. S. K. Batra** S. M. J. N. (P.G.)
College, Haridwar (U.K.) ◆**Prof. Anil Kr. Mishra** D.B.S. College, Kanpur, ◆**Dr. Manoj Kr. Garg**
D.N. (P.G.) College, Fatehgarh, ◆**Dr. Chandra Dev Yadav** B.V. (P.G.) College, Farukhabad, ◆**Dr.**
Vinod Mohan Mishra Buddh (P.G.) College, Kushi Nagar, ◆ **Prof. B. C. Kaushik** V. S. S. D.
College, Kanpur, ◆**Dr. Suman** S. N. Sen Balika (P.G.) College, Kanpur, ◆ **Dr. M. H. Siddiqi** Halim
Muslim (P.G.) College, Kanpur ◆ **Dr. Mahendra Singh** K.K. Mahadyalaya Etawah ◆ **Dr. Geeta**
Asthana Jwala Devi Vidya Mandir (P.G.) College, Kanpur ◆**Dr. Ritambhra** A.N.D. College,
Kanpur, ◆ **Dr. R. P. Chaturvedi** R.S.G.M. (PG) College, Pukharayan, ◆ **Dr. Ratna Gupta** D. W. T.
Centre, Kanpur, ◆ **Dr. S. C. Mishra** B.R.D. (P.G.) College, Devriya ◆ **Dr. Alok Kr. Singh** T. D.
(P.G.) College, Jounpur. ◆ **Dr. Pradeep Kr. Gupta** D.S.N. (P.G.) College, Unnao.

Peer-Review Board

Hindi-

Dr. R.B. Vanishree Govt. (P.G.) College, Pakala (AP)
Dr. Arti Dubey L.Y.D.C. Kaimganj, Farrukhabad
Dr. Rakhi Upadhyay D. A. V. (P. G.) College,
Dehradoon (Uttarakhand)
Dr. Amar N. Tiwari B. V. (P.G.) College, Farukhabad
Dr. Sofia Rajan Govt. Arts & Science College, Tanur,
Kerla State
Dr. Jitendra Kr. R.S.G.M. (P.G.) College, Pukhrayan

English-

Dr. Shobhna Srivastava B.L.V.Mahavidyalay,
Sarsaul, Maharajpur-Kanpur
Dr. Neeta Kulshetra S.V. (P.G.) College, Aligarh
Dr. Savita Gupta R.S.G.M. (P.G.) College,
Pukhrayan, Kanpur
Dr. C. P. Singh D.B.S. College, Kanpur
Dr. Indu Mishra M.M.V. Kidwai Nagar, Kanpur

Sanskrit-

Dr. Preeti Vadhvani T. D. (P. G.) College, Auriya
Dr. Mamta Snehi Lalit Narayan Mithila
University, Darbhanga (Bihar)
Dr. Archana Pandey B. V. (P.G.) College, Farukhabad
Dr. Archana Srivastav M. M. Vidyalaya, Kanpur
Dr. Megha Sharma J.D.B. (P. G.) College, Kota

Education-

Dr. Swati Singh D.G.P.G. College, Kanpur
Dr. Reena Chandra D.A.V. College, Dehradoon
Dr. Veenu Anand D. G. (P. G.) College, Kanpur
Dr. Pragya Srivastava M.M.V. (P.G.) College, Kanpur

Political Science-

Dr. Vijay Pratap Singh D. A. V. College, Kanpur
Dr. Pappi Mishra D.G. (P. G.) College, Kanpur
Dr. Neeraja Choudhary D.A.V. (P.G.) College,
Dehradoon (Uttarakhand)
Dr. Anamika Verma Mahila Mahavidyalaya, Kanpur



Dr. Pratima Gangwar J.D.V.M. Girls (P.G.) Kanpur
Collge, Kanpur

Dr. Shiv Narain Yadav R.S.G.M. (P.G.) College,
Pukharayan, Kanpur

Dr. Sachin Jaiswal V.S.S.D. College, Kanpur

Sociology-

Dr. Mridula Sharma D.A.V. (P.G.) College, Dehradun

Dr. Shailendra Kr. Singh B.V. (P.G.) College, Fkd.

Dr. Nishi Prakash S. N. Sen (P.G.) College, Kanpur

Dr. Anshuman Upadhyay R.S.G.M. (P.G.) College,
Pukharayan, Kanpur

Dr. Satyam Dwivedi D.A.V. (P.G.) College, Ddn (UK)

Economics-

Dr. Vandana Dwivedi P. P. N. College, Kanpur

Dr. Anju Srivastava M.M.V. P.G. College, Kanpur

Dr. Parwat Singh R.S.G.M. (P.G.) College,
Pukharayan, Kanpur

Dr. Manju Lata Dwivedi V.S.S.D. College, Kanpur

(Smt.) Tanu Varshney S.V.P.G. College, Aligarh

Psychology-

Dr. Surbhi Mishra Juhari Devi P.G. College, Kanpur

Dr. Renuka Joshi D.A. V. College, D. Doon (U.K.)

Dr. Pratibha Srivastava M.M.V. College, Kanpur

Math-

Dr. P. K. Tripathi D.A.V. College, Kanpur (U.P.)

Dr. A. K. Singh V. S. S. D. College, Kanpur (U.P.)

Dr. A.K. Srivastava D. B.S. College, Kanpur (U.P.)

History-

Dr. Mamta Gangwar M. M. V. P.G. College, Kanpur

Dr. Sanjay Mahashwari S.M.J.N. (PG) College,
Haridwar (U.K.)

Dr. Arvind Kr. Tripathi D.S.N. College, Unnao

Dr. Shalini Gangwar J.D.G. (P.G.) Collge, Kanpur

Smt. Suman Shukla Govt. M. M. V. Kannouj

Drawing & Painting-

Dr. Vandana Sharma M. M. V., Kanpur

Dr. Jyoti Agnihotri Juhari Davi PG Colge, Kanpur

Dr. Achal Arvind Maa Bharti (P.G.) College Kota,
Rajasthan

Dr. Sarika Bala A.N.D.N.N. Mahila Mahavidyalaya,

Physics-

Dr. K. K. Srivastava D.B.S. College, Kanpur

Dr. A. K. Agnihotri B.N.D. College, Kanpur

Dr. Navneet Mishra B. N. D. College, Kanpur

Chemistry-

Dr. Alka Srivastava D. G. (P.G.) College, Kanpur

Dr. Atul Tiwari D. B. S. College, Kanpur

Dr. Dhananjay Singh P. P. N. College, Kanpur

Zoology-

Dr. Sandeep Shukla D. B. S. College, Kanpur

Dr. Sangeeta Ansari A. N. D. College, Kanpur

Dr. Anjali Srivastava D. G. P. G. College, Kanpur

Botany-

Dr. Archana Srivastava D.G. P.G. College, Kanpur

Smt. Seema Anand S.V.(P.G.) College, Aligarh

Dr. Jainendra Kumar K.K.(P.G.) College, Etawah

Geography-

Dr. Pramod Kr. K.K.(P.G.) College, Etawah

Dr. Ram Naik Srivastav R.S.G.M. (P.G.) College,
Pukharayan, Kanpur

Dr. Hem Singh Ojha K.K.(P.G.) College, Etawah

Music-

Dr. Mohini Shukla Juhari Devi (PG) College, Knp.

Dr. Nishtha Sharma M. G. (P.G.) College, Firozabad

Smt. Kajal Sharma Agra College, Agra

Home Science-

Dr. Ranju Kushwaha Ju. Devi (PG) College, Kanpur

Dr. Archana Saxena A. N. D. N. N. M. M., Kanpur

Dr. Alka Tripathi D. G. (P.G.) College, Kanpur

Dr. Richa Saxena Juhari Devi (PG) College, Knp.

Dr. Byuti Dixit Mahila Mahavidyalaya, Kanpur

B. Ed. -

Dr. Ankur Singh D. W. T. Centre, Kanpur

Dr. Pragya Srivastava M.M.V., Kanpur

Dr. Reeta Srivastava A. N. D. College, Kanpur

Managing Editor & Publisher-

Sarveish Tiwari 'Rajan'

World Bank Barra, Kanpur-208027

सभी संपादकीय दायित्व पूर्णतः अवैतनिक हैं।

नोट: प्रकाशित आलेखों के विचारों से संपादक व प्रकाशक की सहमति अनिवार्य नहीं है। समस्तवाद का क्षेत्र कानपुर होगा।

स्वत्वाधिकारी, प्रकाशक, प्रबन्ध संपादक एवं मुद्रक सर्वेश तिवारी 'राजन' द्वारा सुपर ग्राफिक्स एण्ड प्रिन्टर्स, के-444, विश्व बैंक बर्रा, कानपुर-27 से मुद्रित एवं सुपर प्रकाशन के-444, 'शिवराम कृपा' विश्व बैंक बर्रा, कानपुर-208027 से प्रकाशित। संपादक : डॉ. सीमा मिश्रा मो.-09044808861। सम्पर्क: 8896244776, 9335597658, ई-मेल: super.prakashan@gmail.com, Website: www.superprakashan.com

महाकुम्भ—2025



कुम्भ महाकुम्भ—2025 का एक महत्वपूर्ण धार्मिक और सांस्कृतिक आयोजन था, जो प्रयागराज में आयोजित किया गया था। यह आयोजन 13 जनवरी, 2025 से 25 फरवरी, 2025 तक चला था और इसमें लाखों श्रद्धालुओं ने भाग लिया था। महाकुम्भ की कुछ महत्वपूर्ण तिथियाँ पौष पूर्णिमा, मकर संक्रान्ति, मौनी अमावस्या (सोमवती), बसन्त पंचमी, माघी पूर्णिमा और महाशिवरात्रि थीं। इस दौरान लाखों श्रद्धालुओं ने पवित्र संगम में स्नान

किया और पूजा अर्चना की।

कुम्भ महाकुम्भ का महत्व न केवल धार्मिक है, बल्कि यह एक सांस्कृतिक और सामाजिक आयोजन भी है, जिसमें लाखों लोग शामिल होते हैं और धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक लाभ प्राप्त करते हैं। इस आयोजन के दौरान प्रयागराज शहर में एक विशेष उत्साह और उमंग का माहौल रहता है, जिसमें लोग अपने परिवार एवं मित्रों के साथ मिलकर इस आयोजन का आनन्द लेते हैं। कुम्भ महाकुम्भ की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें विभिन्न धार्मिक एवं सांस्कृतिक समुदायों के लोग शामिल होते हैं। इस आयोजन के दौरान लोग अपने धार्मिक एवं सांस्कृतिक मतभेदों को भूलकर एक दूसरे के साथ मिलकर इस आयोजन का आनन्द लेते हैं। यह आयोजन हमें याद दिलाता है कि हमारी विविधता में भी एकता और समानता है।

कुम्भ महाकुम्भ के दौरान प्रयागराज शहर में विभिन्न सांस्कृतिक और धार्मिक आयोजन आयोजित किये जाते हैं। इन कार्यक्रमों में संगीत, नृत्य, नाटक और अन्य सांस्कृतिक गतिविधियाँ शामिल होती हैं। ये कार्यक्रम हमें हमारी सांस्कृतिक विरासत की याद दिलाते हैं और हमें अपनी संस्कृति के प्रति गर्व और सम्मान की भावना को बढ़ावा देते हैं। कुम्भ महाकुम्भ का आर्थिक महत्व भी बहुत अधिक है। इस आयोजन के दौरान प्रयागराज शहर में लाखों लोग आते हैं जो स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देते हैं। होटल, रेस्तरां और अन्य व्यावसायिक संस्थानों को इस आयोजन के दौरान बहुत अधिक लाभ होता है। इसके अलावा स्थानीय कलाकारों और शिल्पकारों को इस आयोजन के दौरान अपने उत्पादों को बेचने का अवसर मिलता है। कुम्भ महाकुम्भ का सामाजिक महत्व भी बहुत अधिक है। इस आयोजन के दौरान लोग अपने परिवार और मित्रों के साथ मिलकर इस आयोजन का आनन्द लेते हैं। यह आयोजन हमें याद दिलाता है कि हमारे समाज में एकता और समानता है। इसके अलावा इस आयोजन के दौरान लोग अपने धार्मिक और सांस्कृतिक मतभेदों को भुलाकर एक दूसरे के साथ मिलकर इस आयोजन का आनन्द लेते हैं।



महाकुम्भ का महत्व केवल धार्मिक एवं संस्कृति से जुड़ा नहीं है, बल्कि यह एक महत्वपूर्ण सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक आयोजन भी है, जो हमारे देश की एकता, अखण्डता और विविधता को प्रदर्शित करता है।

सम्पादक द्वारा जर्नल के प्रत्येक अंक को उद्देश्यपरक, गौरवपूर्ण और गागर में सागर भरने वाला बनाने का प्रयास किया जाता है। प्रस्तुत अंक में शोध पत्रों में विविध विषयों जैसे कि समावेशी शिक्षा, शिक्षण विधियों में नवाचार, शिक्षक प्रशिक्षण, मूल्य आधारित शिक्षा, शैक्षिक नीति का मूल्यांकन और मानसिक स्वास्थ्य जैसे समसामयिक मुद्दों को गम्भीरता से प्रस्तुत किया गया है। इन सभी लेखों में विद्वानों ने अपने अनुभव, निष्कर्ष व समाधान प्रस्तुत किये हैं जो निःसंदेह शिक्षा जगत के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे।

हमारा यह प्रयास रहा है कि हम पत्रिका के माध्यम से ऐसी सामग्री प्रस्तुत करें जो कि न केवल शोधकर्ताओं के लिए प्रेरणादायक हो, बल्कि नीति निर्माताओं और शिक्षकों के लिए मार्गदर्शक भी हो। हमें यह विश्वास करते हैं कि इस प्रकार के सार्थक संवाद और विचार-विमर्श से शिक्षा प्रणाली को व्यवहारिक एवं समावेशी बनाया जा सकता है।

इस अवसर पर उन सभी लेखकों, समीक्षकों, माननीय संपादकीय बोर्ड के सदस्यों एवं पाठकों का धन्यवाद ज्ञापित करते हैं, जिनके सहयोग, परिश्रम और मार्गदर्शन से इन सभी अंकों का प्रकाशन संभव हो सका। हम आशा करते हैं कि यह अंक आपकी शैक्षिक जिज्ञासा को संतुष्ट करेगा एवं आपके विचारों को नया आयाम प्रदान करेगा। आपके सुझाव और प्रतिक्रियायें हमारे लिए अत्यन्त मूल्यवान हैं। कृपया हमें अपनी राय अवश्य भेजें, ताकि हम अपने आगामी अंकों को और भी अधिक उपयोगी एवं प्रभावशाली बना सकें।

सादर

— डॉ. सीमा मिश्रा

सम्पादक — 'दि गुंजन' (मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली
इण्टरनेशनल रेफ्रीड / पियररिव्यूड रिसर्च जर्नल)

एवं

असिस्टेन्ट प्रोफेसर — बी. एड. विभाग,
डॉ. वी. एस. आई. पी. एस. इन्स्टीट्यूट,
किदवईनगर, कानपुर-208011 (उ.प्र.)



Index

- Dr. Vidya Verma : Chief Editor, 'The Gunjan' (Multidisciplinary Quarterly International Refreed / Peer Reviewed Research Journal) & (Principal : Government Degree College, Sumerpur-210502, Hamirpur (U.P.).

&

- Dr. Alka Dwivedi : Editor - 'The Gunjan' (Multi Disciplinary Quarterly International Refreed / Peer Reviewed Research Journal) & Assistant Profressor, Dept. of Education, Kalicharan (P.G.) College, Lucknow -226001 (UP)

1-	Sustainability of Mountain Ecosystems in the Himalayas	- Dr. Jitendra Sharma	07
2-	The Historico-Political Consciousness and the Individual in the Novels of Mulraj Anand, Raja Rao & R. K. Narayan	- Pooja Kasera	17
3-	The Effect of Collaborative Learning on Creativity of College Students	- Dr. Umendra Singh	23
4-	A Study of a Digital Platform for Investors in India : A Review	- Prof. Suneet Kumar Awasthi	32
5-	Public-Private Partnerships and Sustainable Development Issues in India	- Alay Anand	38
6-	The Role of Material Science in the Mahabharata	- Dr. Prakash Dubey - Dr. Jyoti Bhadoriya	42
7-	राजा राममोहन द्वारा दिये गये योगदान	- राकेश कुमार वर्मा	46
8-	प्लेटो के दार्शनिक एवं शैक्षिक विचार	- डॉ. रवेन्द्र राजपूत	52
9-	विश्वविद्यालय पुस्तकालयों में सूचना संचार प्रौद्योगिकी (आई.सी.टी.) : चुनौतियाँ	- पूनम द्विवेदी	56
10-	भारतीय चित्रकला में साहित्य की भूमिका	- डॉ. चिंतामणि गौतम	59
11-	भारतीय ग्रामीण विकास में सूचना एवं संचार तकनीकी का योगदान	- सुश्री संध्या जादौन	62
12-	वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में धर्म-दर्शन एवं सर्वधर्म समत्व की महत्ता	- सागर सोनी	62
13-	पुरुष सत्ता के आइने में 'वराह मिहिर' (नेपथ्य राग के विशेष सन्दर्भ में)	- डॉ. संतोष कुमार सिंह	65
14-	भारतीय उपमहाद्वीप के समीपवर्ती देशों से भू-आर्थिक सम्बन्ध	- लिजी जोसेफ टी.	67
15-	भारतीय उपमहाद्वीप के समीपवर्ती देशों से भू-आर्थिक सम्बन्ध	- राधेश्याम कुम्हार	69
15-	डॉ. सुमन राजे की कविताओं में समकालीन हिन्दी कवयित्रियों की कविता : व्यष्टि-समष्टि की यात्रा	- प्रो. अलका द्विवेदी	77



16-	बालकों के शारीरिक एवं मानसिक विकास में योग की भूमिका	— कल्पना चौधरी	73
17-	पंचायतीराज की अवधारणा एवं विकास : एक अध्ययन	— प्रो. वंदना शर्मा	82
18-	काशी की चित्रकला में "शिव स्वरूप" उद्देश्य	— शिव नारायण यादव	86
19-	काशी की चित्रकला में "शिव स्वरूप" उद्देश्य	— डॉ. कल्पना गौड़	86
20-	बस्तर में खनन परियोजनाओं का आदिवासी जीवन पर सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव : एक क्षेत्रीय अध्ययन	— डॉ. अमरेंद्र प्रताप गोंड	86
21-	मानस-मधुकोष और तुलसी की माधुकरी-वृत्ति बदलते समय में भारत और चीन के राजनायिक सम्बन्ध	— डॉ. अमरनाथ तिवारी	94
22-	उपनिषदों में निहित नैतिक शिक्षा की वर्तमान में उपयोगिता	— प्रो. प्रीती सिंह	98
23-	भारत में म्यूचुअल फण्ड का समीक्षात्मक अध्ययन	— प्रो. दीपा प्रधान	101
24-	आतंकवाद की समस्या और भारत की विदेश नीति : वर्तमान सन्दर्भ में एक विश्लेषण	— प्रो. अनुराग	104
25-	आचार्य नरेन्द्रदेव का देश की उच्च शिक्षा में योगदान : एक अध्ययन	— प्रो. रमेश चन्द्र	108
26-	'बलुतं' : एक प्रभावी आत्मकथन	— डॉ. सीमा शर्मा	112
27-	महामानव, सरल और सौम्य स्वभाव व लोकतंत्र के महानायक पं. दीनदयाल उपाध्याय:व्यक्तित्व एवं कृतित्व	— डॉ. आसिया चिश्ती	118
28-	भारतीय संगीत शिक्षण पद्धति का क्रमिक विकास 'गुरु शिष्य परम्परा से संस्थागत शिक्षण तक'	— प्रो. रमेश चन्द्र ओझा	105
29-	वैश्वीकरण के युग में कानूनी खामियों की वजह से 'बाल श्रम' एक अभिशाप	— श्रीमती ज्योति मिश्रा	123
30-	वैश्वीकरण और आत्मनिर्भर भारत की परिकल्पना	— डॉ. मोहिनी शुक्ला	128
31-	शिक्षा में साइबर क्राइम : चुनौतियाँ, प्रभाव और समाधान	— डॉ. अनामिका सिंह	128
32-	संस्कृत वाङ्मय में लोक मंगल	— डॉ. अंशु पाण्डेय	131
33-	काव्येषु नाटकस्य रमणीयता	— डॉ. सीमा मिश्रा	135
		— डॉ. अर्चना पाण्डेय	145
		— प्रो. (डॉ.) बिन्दु सिंह	150



Sustainability of Mountain Ecosystems in the Himalayas



- Dr. Jitendra Sharma
Assistant Professor -
Department of Geography,
D. S. College, Aligarh-202001
(Uttar Pradesh, India)

Email-
jitensharmadsc@gmail.com

Abstract

The Himalayan mountain ecosystem, spanning across eight countries and harboring extraordinary biodiversity, serves as a critical life-support system for nearly 1.5 billion people in South and Central Asia. However, it is facing unprecedented challenges due to climate change, unsustainable development, and socio-economic pressures. This paper explores the ecological, hydrological, and socio-political dimensions of sustainability in the Himalayas. It analyzes the implications of glacial retreat, biodiversity loss, habitat fragmentation, and extreme weather events on ecosystem stability and human livelihoods. The study also examines the role of indigenous knowledge, policy frameworks, and ecosystem-based adaptation in promoting resilience. Drawing on case studies from India, Nepal, and Bhutan, the paper argues for a holistic, transboundary approach that integrates local participation, gender equity, traditional ecological practices, and science-based interventions. Ensuring the sustainability of the Himalayan ecosystems is not just a regional necessity but a global imperative for climate regulation, water security, and biodiversity conservation.

Keywords: *Himalayan Ecosystem, Climate Change, Glacial Retreat, Biodiversity Loss, Indigenous Knowledge, Ecosystem-Based Adaptation, Sustainable Mountain Development, Disaster Risk Reduction, Environmental Resilience*

Introduction -

The Himalayas, often referred to as the "Third Pole" due to their vast glacial reserves, form the world's highest and most expansive mountain range, extending over 2,400 kilometers across five nations India, Nepal, Bhutan, China, and Pakistan. This region is not only a geographical marvel, with iconic peaks like Mount Everest, Kanchenjunga, and Nanda Devi, but also a unique ecological and cultural repository. Encompassing a wide range of altitudinal gradients, the Himalayas host an exceptional level of **biodiversity**, **ethnic**



diversity, and **ecosystem services**² that are crucial for the well-being of nearly 1.5 billion people in the downstream regions (Xu et al., 2009; ICIMOD, 2021).

The Himalayan ecosystems play an indispensable role in the **hydrological cycle**, regulating the flow of ten major rivers including the Ganga, Brahmaputra, and Indus. These rivers provide freshwater for agriculture, industry, and domestic use across large parts of South and Southeast Asia (Immerzeel et al., 2010). In addition, the region offers essential **ecosystem services** such as carbon sequestration, soil stabilization, microclimatic regulation, and pollination support. It is also culturally and spiritually significant, with sacred landscapes and pilgrimage sites like Kedarnath, Kailash Mansarovar, and Lumbini dotting its terrain.

Despite their importance, the Himalayan mountain ecosystems are increasingly under threat. **Climate change** has emerged as a dominant stressor, contributing to **glacial retreat**, rising temperatures, erratic precipitation, and extreme weather events. Studies show that Himalayan glaciers are melting at an accelerated rate, with implications for long-term water security, flood risks, and ecosystem shifts (Bolch et al., 2012; Yao et al., 2012). In parallel, **unsustainable development** driven by infrastructure expansion, tourism, overgrazing, and deforestation is causing habitat fragmentation, biodiversity loss, and soil erosion. The construction of dams, highways, and high altitude tunnels, often without comprehensive environmental assessments, is further degrading this fragile ecological zone (Bajracharya et al., 2020).

Moreover, the socio-political landscape of the Himalayas adds layers of complexity to environmental governance. Given the **transboundary nature** of the range, issues such as watershed management, disaster mitigation, and conservation require cooperation among countries with varying political priorities and capacities. Unfortunately, current environmental management tends to be fragmented, with little

alignment between local practices and national or regional strategies. This institutional disconnect often sidelines the traditional ecological knowledge held by Indigenous and local communities knowledge that has evolved over centuries to adapt to the region's unique terrain and climatic variability (Singh et al., 2011).

In this context, ensuring the **sustainability** of the Himalayan mountain ecosystems demands a multi-dimensional response. This includes understanding the drivers of environmental degradation, recognizing the role of local communities in conservation, implementing science-based climate adaptation strategies, and fostering cross-border environmental diplomacy. This paper aims to critically evaluate the **pressing challenges** faced by the Himalayan ecosystems,³ analyze the **effectiveness of current policy frameworks**, and recommend **integrated, interdisciplinary approaches** to enhance ecological resilience and human well-being. By situating the Himalayas within the broader discourse of climate justice, ecological security, and sustainable development, the paper contributes to a more nuanced understanding of mountain sustainability in a rapidly warming world.

Characteristics of Himalayan Mountain Ecosystems -

The Himalayan mountain ecosystems represent one of the most complex and ecologically significant landscapes on Earth. Stretching over 2,400 kilometers and spanning eight countries Afghanistan, Pakistan, India, Nepal, Bhutan, China, Bangladesh, and Myanmar the Himalayas are characterized by dramatic **altitudinal variation**, ranging from subtropical lowlands at 200 meters above sea level to the snow-clad peaks exceeding 8,000 meters. This verticality results in **distinct ecological belts** and an exceptional diversity of **climatic zones, vegetation types, and faunal assemblages** (Singh et al., 2011).

One of the defining features of the Himalayan ecosystem is its **biodiversity richness**.



The region is recognized as a global biodiversity hotspot, hosting more than **10,000 plant species**, of which about 30% are endemic, and over **300 mammalian species**, including the endangered **snow leopard (*Panthera uncia*)**, **red panda (*Ailurus fulgens*)**, and several species of langurs, bears, and mountain goats (Mittermeier et al., 2004). The vertical stratification supports a range of vegetation types, such as tropical deciduous forests, temperate coniferous forests, alpine meadows, and nival zones. Each ecological band performs critical **ecosystem functions** and supports traditional agro-pastoralist communities who have historically adapted to the region's topographic and climatic challenges.

Hydrologically, the Himalayas act as the "**Water Tower of Asia**", feeding ten of the world's major river systems including the Ganges, Indus, Brahmaputra, Yangtze, and Mekong. These rivers serve as the **lifeline for nearly 1.5 billion people** downstream, providing freshwater for drinking, agriculture, industry, and hydroelectricity (Immerzeel et al., 2010). The region stores vast quantities of water in its glaciers, permafrost, snowfields, and high-altitude wetlands, playing a central role in regulating **seasonal flow regimes, sediment transport, and groundwater recharge**. With over 15,000 glaciers, the Himalayan cryosphere is second only to the polar regions in freshwater reserve, making its **stability vital for regional water and food security**.⁴

The Himalayan ecosystem offers a multitude of **ecosystem services**, which can be categorized into four broad types-

Provisioning Services- These include tangible products such as freshwater, fuelwood, fodder, wild edibles, medicinal plants, and timber. For centuries, these resources have sustained the subsistence livelihoods of Himalayan communities and supported regional trade networks.

Regulating Services- Himalayan forests and grasslands play a crucial role in **climate regulation, carbon sequestration, flood mitigation, and erosion control**. Mountain

vegetation stabilizes slopes, while wetlands and floodplains regulate water flow, reducing the risks of flash floods and landslides during the monsoon.

Cultural Services- The Himalayas hold deep **religious, spiritual, and aesthetic** significance for numerous communities. Sacred peaks, rivers, and forests such as Mount Kailash, Yamunotri, and the Valley of Flowers are pilgrimage destinations and contribute to cultural continuity, identity, and eco-tourism.

Supporting Services- These include processes necessary for the maintenance of other services, such as **soil formation, nutrient cycling, and pollination**. These services underpin agricultural productivity and ecological integrity across the Himalayan landscape.

However, these critical functions are increasingly under threat. Climate change is leading to **glacial retreat, increased frequency of extreme weather events, and shifts in vegetation zones**. Meanwhile, **population growth**, changing land-use patterns, and unsustainable infrastructure development are accelerating deforestation, soil erosion, and biodiversity loss (Chettri et al., 2008). The rise in **unsustainable tourism** has further added to the environmental burden through waste generation, habitat fragmentation, and stress on water resources.

Geopolitical and administrative fragmentation across the Himalayan region also contributes to weak ecological governance. Different nations and sub-national regions often pursue **development strategies in isolation**, without a coordinated effort to manage transboundary ecosystems. In many cases, **ecological concerns are subordinated to political, economic, or security imperatives**, leading to fragmented conservation outcomes.

Despite these challenges, the Himalayas retain considerable **ecological and cultural resilience**. The interplay of natural systems and indigenous practices has allowed these ecosystems to survive millennia of environmental change. Strengthening this resilience, however, requires a⁵ renewed focus on **sustainable, community-based**



and transboundary environmental management strategies.

Climate Change and Environmental Degradation-

The Himalayan mountain ecosystem is increasingly facing critical stress due to the impacts of climate change and anthropogenic activities. The region is warming at a rate almost **twice the global average**, leading to rapid environmental transformations across glaciers, forests, rivers, and biodiversity habitats (IPCC, 2023). These changes not only threaten ecological integrity but also undermine the socio-economic well-being of millions who depend on Himalayan ecosystem services.

1. Glacial Retreat and Water Security -

One of the most visible and alarming consequences of climate change in the Himalayas is the **accelerated retreat of glaciers**. The region holds more than 15,000 glaciers, which feed major river systems like the Ganges, Brahmaputra, and Indus. However, satellite observations reveal that glaciers have been shrinking at unprecedented rates—some retreating by over 30% in the past few decades (Bolch et al., 2012; Yao et al., 2012). The retreat of glaciers threatens to disrupt **seasonal water flow**, resulting in **short-term increases in river discharge**, followed by long-term **water scarcity**.

An additional hazard associated with glacial retreat is the **formation and expansion of glacial lakes**, many of which are dammed by unstable moraine. These lakes are prone to **glacial lake outburst floods (GLOFs)** sudden, violent surges of water that destroy settlements, infrastructure, and agricultural land downstream. Countries like Nepal, Bhutan, and India have already experienced such events, including the **2021 Chamoli disaster** in Uttarakhand, which caused massive destruction and loss of life (Mukherji et al., 2019).

2. Biodiversity Loss and Habitat Fragmentation- As temperature regimes shift and precipitation patterns become erratic, the Himalayan region is undergoing significant

changes in **species distribution and ecosystem composition**. **Treelines are moving upslope**, encroaching on alpine meadows that are home to endemic plant species and threatened fauna such as the snow leopard and Himalayan musk deer. Many cold-adapted species are losing habitat faster than they can adapt or migrate, increasing extinction risks (Chettri et al., 2008).⁶

Human-induced activities such as **deforestation for agriculture, infrastructure development, firewood collection**, and tourism-related encroachments are accelerating habitat fragmentation. Large infrastructure projects hydropower dams, highways, tunnels cut through wildlife corridors and disrupt **ecological connectivity**, making it harder for species to adapt to climate-induced changes. Moreover, invasive species and monoculture afforestation efforts are altering native forest dynamics and nutrient cycles.

3. Extreme Weather Events- The Himalayas are increasingly vulnerable to **extreme climatic events** such as flash floods, cloudbursts, landslides, and avalanches. These events are becoming more frequent and severe due to a combination of **climatic variability and environmental degradation**. The **2013 Uttarakhand floods** triggered by excessive rainfall and glacier melt left over 5,000 people dead or missing and highlighted the dangers of unregulated development in fragile zones.

Unplanned urbanization, deforestation, and river channel modification reduce the natural absorptive capacity of ecosystems, intensifying disaster impacts. The increased unpredictability of weather events also threatens **agricultural cycles, food production, and local economies**, particularly for mountain farmers dependent on rainfall and glacial-fed irrigation.

4. Socio-Economic Pressures and Development Challenges- The Himalayan region is increasingly subjected to diverse socio-economic pressures that threaten the ecological balance and long-term sustainability of its mountain ecosystems. These pressures arise not only from natural population growth and changing



economic aspirations but also from large-scale development initiatives and geopolitical complexities. The delicate interface between human activities and the natural environment in this fragile mountainous terrain necessitates a critical examination of development trajectories.

1. Population Growth and Resource Overuse- The Himalayan states, particularly in India and Nepal, have experienced rapid population growth and significant in-migration from the plains, driven by socio-economic factors, livelihood stress, and climate-induced displacement. This demographic expansion has resulted in the **intensification of land use**, including the **conversion of forest lands to agriculture**, the **encroachment on steep slopes**, and the unsustainable **harvesting of timber, fuelwood, and non-timber forest products** (Valdiya, 1985; Rawat & Vishvakarma, 2011).⁷

Traditional farming practices, such as **terrace cultivation** and **shifting agriculture**, once adapted to ecological conditions, are now under severe strain due to declining soil fertility, erratic rainfall, and loss of agro-biodiversity. Overgrazing by livestock, particularly in alpine and sub-alpine zones, has degraded pasturelands and led to **soil erosion and landslide susceptibility**. This increasing ecological footprint of human settlements places immense pressure on limited mountain resources, undermining ecosystem resilience.

2. Infrastructure and Tourism- The Himalayan region has witnessed a surge in infrastructure development under the guise of economic integration and national security. Projects such as the **Char Dham highway, border roads, railway tunnels**, and large-scale **hydropower plants** have been undertaken without adequate environmental impact assessments. These linear structures not only **fragment wildlife habitats** but also destabilize slopes, alter drainage patterns, and **trigger landslides and flash floods** (Bajracharya et al., 2020; Walia et al., 2021).

Tourism, once considered a source of sustainable income, has become a double-edged

sword. The proliferation of **mass tourism** in pilgrimage sites like Kedarnath and hill towns such as Shimla and Manali has led to **unregulated construction, water overuse, solid waste accumulation**, and vehicular pollution. Seasonal tourist inflows strain basic infrastructure, increase per capita carbon footprint, and reduce the quality of life for residents. While **eco-tourism** has emerged as a counter-model, its limited implementation and commercial dilution have restricted its positive environmental impact (Nepal, 2008).

3. Political Fragmentation - The **transboundary nature** of the Himalayas, which span several nation-states and administrative divisions, poses unique governance challenges. Political priorities often overshadow environmental concerns, with fragmented jurisdictional authority leading to **poor coordination in conservation efforts**. For example, deforestation or dam construction in upstream regions like Tibet or Uttarakhand can have cascading effects on flood risks and sedimentation in downstream areas like Bihar or Bangladesh.

Moreover, interstate and international tensions frequently hamper collaborative environmental governance. For instance, **hydropower projects on shared rivers** have led to disputes between India and Nepal, or between India and China, delaying effective climate adaptation and watershed management. Despite regional platforms like ICIMOD advocating⁸ **integrated and participatory approaches, geopolitical sensitivities**, lack of data sharing, and limited institutional capacity continue to hinder transboundary cooperation (Sharma et al., 2010).

5. Indigenous Knowledge and Community-Based Sustainability- The Himalayan region is home to a rich mosaic of Indigenous communities who have co-evolved with the fragile mountain ecosystems for centuries. These communities have developed **ecological knowledge systems** that are finely attuned to the specific climatic, topographical and biological



conditions of the mountains. This traditional ecological knowledge (TEK) is embedded in **local customs, agricultural practices, forest management techniques, spiritual beliefs** and oral traditions, making it a vital resource for achieving **sustainable and climate-resilient development** (Berkes, 2012).

One notable example of such knowledge is the **dzud practice** in Ladakh, where pastoralists strategically manage livestock grazing and fodder storage in anticipation of harsh winters. This practice minimizes livestock mortality and ensures food security during prolonged snowbound periods. Similarly, the **baranaja (12-grain) system** of polyculture in Uttarakhand involves the simultaneous cultivation of multiple crops such as millets, legumes, and oilseeds on the same field. This not only enhances **soil fertility** and reduces dependency on chemical fertilizers but also builds **climate resilience** by diversifying food sources and spreading risk (Maikhuri et al., 1997).

Sacred groves, particularly prevalent in regions like Sikkim, Bhutan, and parts of Arunachal Pradesh, are another form of community-led biodiversity conservation. These forest patches are traditionally protected due to religious or spiritual significance and often serve as reservoirs of endemic flora and fauna. Scientific studies have shown that sacred groves harbor higher levels of biodiversity and soil moisture retention than nearby non-protected forests, underscoring their ecological importance (Gadgil & Vartak, 1976; Singh et al., 2011).

The **role of women** in Himalayan ecological systems is particularly significant. As primary collectors of water, fuelwood, fodder, and medicinal plants, women possess intimate knowledge of ecological patterns and resource dynamics. In many mountain villages, they are the custodians of traditional seed varieties, herbal medicine, and agroecological knowledge. Initiatives like the **Chipko Movement**, led by rural women in the 1970s, demonstrated the capacity of grassroots women to mobilize for forest protection and sustainable livelihoods

(Shiva, 1988).

Despite their centrality, women often remain **excluded from formal decision-making structures**, such as forest management committees, water user associations, and disaster planning⁹ bodies. This gender gap in policy and practice undermines the efficacy of adaptation strategies and disregards vital sources of knowledge. Integrating **gender-sensitive, participatory frameworks** that involve women, elders, and marginalized groups in planning and governance can significantly enhance **adaptive capacity and social equity** (Agarwal, 2001).

Moreover, indigenous systems of land tenure, dispute resolution, and collective labor—such as **goth and goan burra** in Himachal Pradesh or **dzongkhag councils** in Bhutan have traditionally maintained ecological balance while meeting community needs. Recognizing and **mainstreaming these institutions** into formal governance mechanisms can bridge the gap between top-down policies and ground-level realities.

In the context of climate change and increasing environmental uncertainty, revitalizing Indigenous knowledge is not merely a matter of cultural preservation but a **strategic imperative** for sustainability. Policymakers, researchers, and development practitioners must move beyond tokenistic inclusion and establish **co-productive models** that validate, integrate, and scale community-based practices alongside scientific innovations.

Policy Frameworks and Institutional Responses -

Effective conservation and sustainable development of the Himalayan ecosystem require well-articulated policy frameworks and multi-level institutional collaboration. National, regional, and international mechanisms have been established to address environmental degradation, climate change, and biodiversity loss. However, many of these initiatives remain fragmented, underfunded, or weakly implemented due to limited coordination and grassroots involvement.



1. National and Regional Policies- India's **National Mission on Sustaining the Himalayan Ecosystem (NMSHE)** a component of the National Action Plan on Climate Change (NAPCC) aims to understand and address the vulnerability of Himalayan ecosystems through scientific research, monitoring of glaciers and biodiversity, and the promotion of sustainable livelihoods. While the mission has enabled scientific data generation, its impact has been constrained by **limited community engagement, bureaucratic delays, and poor inter-state coordination**, especially across ecologically contiguous zones (MoEFCC, 2015).

Bhutan offers a distinctive policy model through its **Gross National Happiness (GNH)** framework, which integrates ecological conservation into national development planning. With over 70% forest cover and a constitutional mandate to maintain at least 60%, Bhutan exemplifies ¹⁰ how **socio-cultural values can be institutionalized into environmental governance** (Ura et al., 2012).

2. International Collaboration- The **International Centre for Integrated Mountain Development (ICIMOD)** serves as a critical regional platform for research, data sharing, and policy dialogue across the Hindu Kush Himalaya (HKH) countries. Its programs such as the **Kailash Sacred Landscape Conservation and Development Initiative** facilitate **transboundary cooperation**, blending cultural heritage preservation with biodiversity protection (Sharma et al., 2010). However, **geopolitical tensions**, lack of binding legal agreements, and insufficient financial resources continue to impede integrated mountain governance.

To strengthen outcomes, there is a pressing need for **policy harmonization, community-driven implementation models, and enhanced institutional capacities** at both local and regional levels.

Pathways to Sustainable Mountain Development-

Achieving sustainability in the Himalayan

mountain ecosystems demands a holistic, context-sensitive, and multi-scalar approach. Given the region's ecological fragility and socio-cultural diversity, development strategies must move beyond conventional top-down paradigms to emphasize **ecosystem-based, community-centered, and knowledge-integrated frameworks**. The following four pathways provide actionable directions for enabling sustainable development in the Himalayas.

1. Ecosystem-Based Adaptation (EbA) - Ecosystem-Based Adaptation (EbA) is a nature-centric strategy that utilizes biodiversity and ecosystem services to help communities adapt to the adverse effects of climate change. In mountain contexts, EbA is particularly relevant due to the intimate dependency of local populations on natural resources. Restoration of **high-altitude wetlands** such as the Tso Moriri in Ladakh, which regulate seasonal hydrology and provide wildlife habitats, has shown promise in buffering communities against glacial melt and erratic rainfall (ICIMOD, 2015).

Similarly, **agroforestry** systems that combine fruit trees with traditional crops improve **soil stability**, enhance **carbon sequestration**, and diversify incomes. In erosion-prone areas, **natural slope stabilization** using indigenous plant species has been more effective and sustainable than cement-based interventions. These approaches not only reduce disaster risks but also promote ¹¹ biodiversity conservation and local employment, reinforcing both **ecological and socio-economic resilience** (Munang et al., 2013).

2. Sustainable Agriculture and Agroecology- Himalayan agriculture, traditionally based on diversity, frugality, and sustainability, is now facing threats from monocultures, chemical input dependency, and climate variability. Reviving traditional crops such as **amaranth, millets, barley, and buckwheat** which are drought-resistant, nutrient-rich, and climate-resilient can play a pivotal role in ensuring food security and reducing the carbon footprint of farming (Altieri & Nicholls, 2017).



Agroecological practices like **mixed cropping, terracing, composting, and rainwater harvesting** harness ecological processes rather than synthetic inputs. These systems mimic natural ecosystems, enhance pollinator diversity, and reduce greenhouse gas emissions. For instance, in the mid-Hills of Nepal and Uttarakhand, integrated farming systems with livestock, legumes, and vegetables have improved productivity without degrading the landscape (Pretty et al., 2011). Promoting **value chains** for traditional crops through cooperatives and niche markets—such as organic labels or Geographical Indications (Gis) can further incentivize sustainable mountain agriculture.

3. Disaster Risk Reduction (DRR)—Mountains are inherently prone to **natural hazards**, including landslides, earthquakes, flash floods, and glacial lake outburst floods (GLOFs). The increasing intensity and frequency of such events, exacerbated by climate change and unplanned development, necessitate mainstreaming **Disaster Risk Reduction (DRR)** into regional planning.

Early warning systems, tailored for mountain topographies, are essential for preventing catastrophic losses. In Nepal, **community-based disaster preparedness programs** have empowered local youth and women's groups to develop hazard maps, monitor glacial lakes, and participate in evacuation drills (Sudmeier-Rieux et al., 2013). Infrastructure must also be **climate-sensitive and earthquake-resilient**, particularly in rapidly urbanizing hill towns. Incorporating **traditional architectural practices**, such as the use of wood-lime composite structures in Sikkim or Bhutan's stone-and-timber buildings, can enhance structural flexibility and reduce seismic vulnerability.

4. Education and Ecotourism¹² Building **local capacity through environmental education** is foundational to long-term sustainability. Integrating climate literacy, biodiversity conservation, and sustainable practices into school curricula encourages future

generations to become stewards of their environment. NGOs and civil society organizations have successfully piloted **Eco-Clubs** in schools across Himachal Pradesh and Sikkim, involving students in waste management, biodiversity audits, and afforestation drives (WWF-India, 2020).

Ecotourism, when implemented with community participation and ecological safeguards, presents a **viable alternative to mass tourism**. Initiatives like **homestays in Spiti Valley, community-based trekking routes in Bhutan, and birdwatching tours in Arunachal Pradesh** offer income while promoting conservation. Unlike mass tourism, ecotourism minimizes ecological footprints, encourages cultural exchange, and fosters **environmental stewardship** among both locals and visitors.

To be truly sustainable, ecotourism must be supported by regulatory frameworks, certification mechanisms, and benefit-sharing models that ensure **equity and ecosystem integrity**.

Conclusion and Recommendations-

The Himalayan mountain ecosystems stand at a critical juncture, challenged by a convergence of anthropogenic pressures and climate-induced transformations. As a global ecological asset—regulating monsoon patterns, feeding Asia's major rivers, and hosting extraordinary biodiversity the Himalayas are far more than a regional concern; their sustainability has **planetary implications** for water security, climate stability, and species survival (IPCC, 2023; ICIMOD, 2021). However, current development paradigms anchored in short-term economic gains—such as unregulated tourism, hydropower expansion, highway construction, and extractive land-use change are threatening to push the region toward **irreversible ecological tipping points**.

The fragility of the Himalayan landscape is compounded by **geopolitical fragmentation**, poor governance, and insufficient coordination among the eight countries that share this transboundary ecosystem. Developmental trajectories often proceed in isolation or competition, rather than



cooperation, thereby undermining ecosystem connectivity and resilience. Additionally, **climate adaptation efforts remain top-down**, overly technocratic, and insufficiently informed by the centuries-old **indigenous knowledge systems** and **community-based governance models** that have sustained these mountains over generations (Sharma et al., 2010; Berkes, 2012).¹³

To chart a sustainable path forward, a **radical rethinking** of development in the Himalayas is required one that embraces ecological sensitivity, social justice, and regional cooperation. The following recommendations serve as a blueprint for this transition-

Institutionalize Transboundary Environmental Governance- Countries across the Hindu Kush Himalaya (HKH) must adopt **shared legal frameworks and data-sharing protocols** for biodiversity conservation, disaster preparedness, and watershed management. Strengthening the mandate and capacity of ICIMOD or forming a legally binding **HKH Environmental Treaty** can ensure coordinated action in the face of cross-border threats.

Empower Community-Based Natural Resource Management- Recognize and legally secure **community forest rights, grazing lands, and water commons**. Expand participatory forest councils, eco-development committees, and women-led cooperatives to decentralize environmental governance and encourage **stewardship over enforcement** (Agarwal, 2001).

Integrate Scientific and Indigenous Knowledge- Bridge modern climate science with traditional ecological knowledge by co-producing research, planning, and monitoring strategies. Community weather stations, participatory hazard mapping, and crop calendar adjustments offer powerful examples of such integration (Maikhuri et al., 1997).

Promote Landscape-Based Conservation- Shift from isolated protected areas to **ecologically connected landscapes** that respect wildlife corridors, migration patterns, and cultural-spiritual linkages. Models like the Kailash

Sacred Landscape Initiative demonstrate how **cultural and ecological integrity can be jointly protected** (ICIMOD, 2015).

Advance Gender Equity and Youth Engagement- Ensure that **women, youth, and Indigenous leaders** have representation in local and regional environmental decision-making bodies. Investing in their capacity strengthens democratic resilience and generates more equitable, locally-appropriate solutions.

Ultimately, sustaining the Himalayan ecosystems is not just about preservation it is about securing the **socio-ecological future of one-fifth of humanity**. It calls for a paradigm that values **long-term ecological health over short-term extraction, regional solidarity over national isolation, and community agency over bureaucratic control**. The Himalayas can still serve as a¹⁴ beacon of sustainability but only if acted upon with urgency, humility and a shared sense of planetary responsibility.

References

- Agarwal, B. (2001). Participatory exclusions, community forestry, and gender: An analysis for South Asia and a conceptual framework. *World Development*, 29(10), 1623–1648. [https://doi.org/10.1016/S0305-750X\(01\)00066-3](https://doi.org/10.1016/S0305-750X(01)00066-3).
- Altieri, M. A., & Nicholls, C. I. (2017). The adaptation and mitigation potential of traditional agriculture in a changing climate. *Climatic Change*, 140(1), 33–45. <https://doi.org/10.1007/s10584-013-0909-y>.
- Bajracharya, S. R., Maharjan, S. B., Shrestha, F., & Kargel, J. S. (2020). The changing Himalayas: Impact of climate change on water resources and glaciers in the HKH region. *ICIMOD Research Report*.
- Berkes, F. (2012). *Sacred ecology* (3rd ed.). Routledge.
- Bolch, T., Kulkarni, A., Kääb, A., Huggel, C., Paul, F., Cogley, J. G., ... & Stoffel, M. (2012). The state and fate of Himalayan glaciers. *Science*, 336(6079), 310–314. <https://doi.org/10.1126/science.1215828>.
- Chettri, N., Sharma, E., Shakya, B., & Bajracharya, B. (2008). Biodiversity in the Eastern Himalayas: Status, trends and vulnerability to climate change. *ICIMOD Technical Paper*.
- Gadgil, M., & Vartak, V. D. (1976). The sacred groves of Western Ghats in India. *Economic Botany*, 30(2), 152–160. <https://doi.org/10.1007/BF02862961>.
- ICIMOD. (2015). *Ecosystem-based adaptation in the Himalayas: Enhancing the resilience of local*



- communities. International Centre for Integrated Mountain Development.
- ☛ ICIMOD. (2021). *Hindu Kush Himalaya Mountains – A Global Asset Under Threat*. International Centre for Integrated Mountain Development. <https://www.icimod.org>.
 - ☛ Immerzeel, W. W., van Beek, L. P., & Bierkens, M. F. (2010). Climate change will affect the Asian water towers. *Science*, 328(5984), 1382–1385. <https://doi.org/10.1126/science.1183188>.
 - ☛ IPCC. (2023). *Climate Change 2023: Synthesis Report*. Intergovernmental Panel on Climate Change. <https://www.ipcc.ch/report/sixth-assessment-synthesis-report>.
 - ☛ Maikhuri, R. K., Rao, K. S., & Saxena, K. G. (1997). Traditional crop diversity for sustainable development of Central Himalayan agroecosystems. *International Journal of Sustainable Development & World Ecology*, 4(1), 27–33. <https://doi.org/10.1080/13504509-709469938>.
 - ☛ Mittermeier, R. A., Robles Gil, P., Hoffmann, M., Pilgrim, J., Brooks, T., Mittermeier, C. G., ... & da Fonseca, G. A. B. (2004). *Hotspots revisited: Earth's biologically richest and most endangered terrestrial ecoregions*. CEMEX.
 - ☛ MoEFCC. (2015). *National Mission on Sustaining the Himalayan Ecosystem (NMSHE) Annual Report*. Ministry of Environment, Forest and Climate Change, Government of India.
 - ☛ Mukherji, A., Choudhury, D., Mishra, A., & Singh, V. (2019). Implications of climate change for sustainable mountain development. In Wester, P., Mishra, A., Mukherji, A., & Shrestha, A. B. (Eds.), *The Hindu Kush Himalaya Assessment* (pp. 221–252). Springer. https://doi.org/10.1007/978-3-319-92288-1_7.
 - ☛ Munang, R., Thiaw, I., Alverson, K., Liu, J., & Han, Z. (2013). The role of ecosystem services in climate change adaptation and disaster risk reduction. *Current Opinion in Environmental Sustainability*, 5(1), 47–52. <https://doi.org/10.1016/j.cosust.2013.02.002>.
 - ☛ Nepal, S. K. (2008). Tourism-induced rural energy consumption in the Annapurna region of Nepal. *Tourism Management*, 29(1), 89–100. <https://doi.org/10.1016/j.tourman.2007.03.015>.
 - ☛ Pretty, J., Toulmin, C., & Williams, S. (2011). Sustainable intensification in African agriculture. *International Journal of Agricultural Sustainability*, 9(1), 5–24. <https://doi.org/10.3763/ijas.2010.0583>.
 - ☛ Rawat, G. S., & Vishvakarma, S. C. R. (2011). Land use and land cover dynamics in the Indian Himalaya: A review. In S. Nautiyal et al. (Eds.), *Knowledge systems of societies for adaptation and mitigation of impacts of climate change* (pp. 387–406). Springer.
 - ☛ Sharma, E., Chettri, N., & Tse-ring, K. (2010). Climate change impacts and vulnerability in the Eastern Himalayas. *ICIMOD Working Paper*.
 - ☛ Shiva, V. (1988). *Staying alive: Women, ecology and development*. Zed Books.
 - ☛ Singh, S. P., Bassignana-Khadka, I., Karky, B. S., & Sharma, E. (2011). *Rethinking development in the Himalaya: Contribution to sustainable mountain development from Bhutan, India, Nepal and China*. ICIMOD.
 - ☛ Sudmeier-Rieux, K., Jaquet, S., Dubois, J., & Adhikari, A. (2013). Community-based landslide risk reduction: Managing disasters in small steps. *UNEP & Practical Action Nepal*.
 - ☛ Ura, K., Alkire, S., Zangmo, T., & Wangdi, K. (2012). *A short guide to Gross National Happiness Index*. Centre for Bhutan Studies.
 - ☛ Valdiya, K. S. (1985). *Environmental geology Indian context*. Tata McGraw Hill.
 - ☛ Walia, V., Kumar, A., Kumar, S., & Mahajan, S. (2021). Environmental implications of infrastructure development in fragile Himalayan ecosystems. *Environmental Earth Sciences*, 80(23), 1–14. <https://doi.org/10.1007/s12665-021-10043-3>.
 - ☛ WWF-India. (2020). *Eco-Clubs in the Himalayas: Education for sustainability*. World Wide Fund for Nature India.
 - ☛ Xu, J., Grumbine, R. E., Shrestha, A., Eriksson, M., Yang, X., Wang, Y., & Wilkes, A. (2009). The melting Himalayas: Cascading effects of climate change on water, biodiversity, and livelihoods. *Conservation Biology*, 23(3), 520–530. <https://doi.org/10.1111/j.1523-1739.2009.01237>.
 - ☛ Yao, T., Thompson, L., Yang, W., Yu, W., Gao, Y., Guo, X., ... & Joswiak, D. (2012). Different glacier status with atmospheric circulations in Tibetan Plateau and surroundings. *Nature Climate Change*, 2(9), 663–667. <https://doi.org/10.1038/nclimate1580>.





Received: 16 August, 2024; Accepted: 28 November-2024, Published: January-March, 2025 Issue

The Historico-Political Consciousness and the Individual in the Novels of Mulkraj Anand, Raja Rao & R. K. Narayan



- Pooja Kasera
Assistant Professor -
Department of English,
Government College, Lakheri-
323603, Dist.-Bundi (Rajsthan)

E-mail:
shivkumarbnd21@gmail.com

History and politics have always been a predominant preoccupation of the Indian-English novelist. This compulsive obsession was perhaps inevitable since the genre developed concurrently with the climactic phase of colonial rule, the stirrings of nationalist sentiment and its full flowering in the final stages of the freedom movement. The Indian English novel developed at a time when the consciousness of being a part of history was a national phenomenon. The intense emotional stirring of a people united in the effort to break free from the shackles of foreign rule made individuals unusually conscious of being a part of a momentous historical movement. This consciousness is exemplified in the novels of Mulk Raj Anand, Raja Rao, Manohar Malgonkar with R.K. Narayan providing glimpses; it also finds expression in the later novels of Khushwant Singh, Chaman Nahal and Attia Hossain.

Therefore the theme of History, Politics and the Individual might not appear as particular to the novel of the Eighties. However, the difference of treatment a shift in the focus, a new array of techniques through which the theme is expressed—gives it an indisputable novelty. History and politics dominated the proceedings in the earlier novels but with the individual relegated to the periphery. The individual gets lost in the movement as can be seen in Raja Rao's *Kanthapura* or R.K. Narayan's *Waiting for the Mahatma* or Manohar Malgonkar's *A Bend in the Ganges*. The novels on partition, *Train to Pakistan* and *Azadi* present the individuals as helpless victims of historical forces. The image of history projected in these novels is that of a Juggernaut rolling impassively over all that comes within its purview. In the novel of the Eighties, the hitherto peripheral individual is thrust into the centre-stage, no longer linked to history as a passive victim but projected as himself an agent of history. Rushdie, in whose novels this perspective is present in the most striking manner, is a self-consciously theoretical novelist who has propounded his own theory of history. He regards individuals as being linked to history in several ways as he explains in *Midnight's Children*.¹



I was linked to history both literally and metaphorically, both actively and passively, modes of connection composed of dualistically combined-configurations. This is why hyphens are necessary: actively-literally, passively-metaphorically, actively-metaphorically and passively-literally, I was inextricably entwined with my world. By the combination of "active" and "literal" I mean, of course, all actions of mine which directly literally affected, or altered the - course of seminal historical events, for instance the manner in which I provided the language marchers with the battle cry. The union of "passive" and "metaphorical" encompasses all socio-political trends and events which, by existing, affected me metaphorically for example, by reading between the lines of the episode entitled "The Fisherman's Pointing Finger," you will perceive the unavoidable connection between the infant state's attempts at rushing towards full-sized adulthood and my own early, explosive efforts at growth Next, "passive" and "literal," when hyphenated, cover all moments at which national events had a direct bearing upon the lives of myself and my family under this heading you should file the freezing of my father's assets, and also the explosion at Walkeshwar Reservoir, which unleashed the cat invasion. And finally there is the "mode" of the "active-metaphorical," which groups together the occasions on which things done by me or to me were mirrored in the macrocosm of public affairs, and my private existence was shown to be symbolically at one with history. The mutilation of my middle finger was a case in point, because when I was detached from my fingertip and blood (neither Alpha nor Omega) rushed out in fountains, a similar thing happened to history, and all sorts of every-which thing began pouring out all over us.

History then is linked to the individual in three ways. Raghavendra Rao succinctly sums up the lengthy passage, as "history bearing, history suffering and history creating."² In "On the Uses and Disadvantage of History for Life." Nietzsche

discusses the three modes of historical consciousness "the unhistorical," which comprises the power of "forgetting," of limiting one's horizon, (the historical, which is what we understand by conventional history the paralysing "burden of history," finally the super-historical—a sense that allows for a greater cultural view.³ The last mode of history creating as expounded by Rushdie is similar to Nietzsche's super-historical mode. Commenting on this last mode, David W. Price says, "Only he who is oppressed and wants to throw off this burden at any cost, has the need for critical history."⁴

While the earlier novels focused on individuals as history bearing and history suffering, the novels of the Eighties project the history-creating individual. The myth of history as Juggernaut is diffused. Being a product of the post-Independence generation, the novel of the Eighties primarily focuses on the post-Independence scenario and projects the individual in a hitherto unexplored role as history creating. The glimpses of pre-Independence and Partition years expose the limitations of the earlier perspective. This chapter has been divided into three sections dealing with the pre-Independence, Partition and post-Independence eras respectively, in order to focus on the new perceptions of the link between history and the individual.

Historical forces have a tremendous effect on almost all things in the world today. To quote Walter Alien-

In the literature of an age, its conflicts, tendencies, obsessions are uncovered and made manifest to a degree which is continually astonishing; good writers are, so to speak, mediumistic to the deeper stirrings of life of their time while they are still unknown to, or at any rate unsuspected by, the public, politicians and current received opinion contemporary novels are the mirror of the age, but a very special kind of mirror that reflects not merely the external features of the age but also its inner face, its nervous system, coursing of its blood and the unconscious



promptings and conflicts which sway it.

The writers of the Eighties also show that the suffering did, not end with the coming of freedom. The partition drama is depicted as a nightmarish experience with the individual in his role of history suffering, the victim of the inexorable forces of history. The new novel with its innovativeness enables the post-Independence generation to imaginatively re-live that horrendous experience. The novels show that the post - Independence scenario is equally challenging. Today the word politics has acquired a variety of unpleasant meanings. The novelists show the titanic struggle of the individual in the post-Independence era against Herculean odds. His efforts to create a new positive history emphasize the idea of the individual as history creating.

The historico-political consciousness of Rushdie is blatantly on display. In Amitav Ghosh and Upamanyu Chatterjee, this consciousness is given a more muted expression. They deal with the inextricable link between history and the individual in less concentrated but equally meaningful manner.

Hence this chapter is divided into three sections namely pre-Independence-showing the individual as history bearing, Partition –showing the individual as history suffering and the post-Independence-showing the individual as history creating.

The demarcation may not be universally acceptable because of the inevitable overlapping of the categories. However it has been found convenient as a means of organizing this study to maintain a necessary focus on the new dynamic connection being established between history and the individual.

Pre-Independence : The Individual as History Bearing -

Through an encapsulation of the experiences of the three generations of the Sinai family, the narrative of *Midnight's Children* moves through the pre-Independence, Partition and the

post-Independence eras of contemporary Indian history. Saleem Sinai, the narrator protagonist, fuses public events with his personal life and that of his family. From Kashmir to Amritsar and from there to Agra and from Agra to Delhi, Saleem narrates the journey of his maternal grandparents Dr. Aadam Aziz and his wife Naseem. With the progress of the story of the journey, we see the progress of the Indian struggle for Independence from Jallianwala Bagh to the partition of India. Dr. Aadam Aziz passes through various situations, which are connected with every turn in the march of Indian history. Commenting on the role of Dr. Aadam Aziz. Neeraja Mattoo says: "Through Aziz's story we are introduced to one of the important themes in this study of India; the juxtaposition of the old and the new, the myth ridden fabulous past and its attendant narrowness and prejudice on the one hand and modernism which brings its own problems on the other."¹²

The actual connection between Dr. Aziz and history is set into motion when in Kashmir, old Tai, the shikara man, brings a summons to him to treat the blind landowner's daughter Naseem. The perforated sheet, through which Dr. A-ziz gets partial glimpses of his future bride, is a symbolic anticipation of the fragmented history of India, which is to unfold. Dr. Aziz's relationship with his "sectioned" patient Naseem keeps pace with the developments of the First World War-

Dr. Aziz has his first brush with Indian history when he comes to Amritsar with his newly wed wife Naseem. He is quick to reject the Rowlatt Act banning political agitation. On April 7th, 1919, the strike called by Gandhi turns violent. Dr. Aziz plunges into the movement by treating the wounded. His sympathies are aroused. He realizes that there is some horrendous event waiting in the wings. A sardonic humour characteristic of Rushdie, his adeptness at fusing the grand and the trivial is evident when the premonition of the historical Jallianwala Bagh event is linked to the itching of Dr. Aziz's nose. On April 13th, 1919, Brigadier Dyer ordered the massacre of one



thousand five hundred and sixteen unarmed people gathered at the Jallianwala Bagh. This incident seems to embody the helplessness of the common man caught in the whirlwind of history. Saleem Sinai, who is narrating this incident, does so by being scrupulously truthful and providing a factual report, as opposed to a partisan, nationalistic, religious or cultural viewpoint. He resorts to understatement rather than melodramatic rhetoric when he describes the shooting in Jallianwala Bagh by Brigadier General Dyer's men-

Brigadier Dyer's fifty men put down their machine guns and went away. They have fired a total of one thousand six hundred and fifty rounds into the unarmed crowd. Of these, one thousand five hundred and sixteen have found their mark, killing or wounding some person. Good shooting, Dyer tells his men we have done a jolly good thing. (35)

Tariq Rehman aptly sums up General Dyer's actions when he says, "General Dyer's words bring out his inhumanity in particular and the whole phenomenon of colonial rule in general."¹³ Rushdie's style of narration seems unemotional but it unleashes deeper emotions which could not have been evoked by melodrama.

On the day Dr. Aziz witnesses the Jallianwallah Bagh massacre, many new realizations dawn on him. The impact of the senseless massacre is not limited to the emotional. His association with Mian Abdullah transforms this into a desire for positive action. Mian Abdullah or 'the Humming bird' rose from the famous magicians' ghetto in Delhi to become "the hope—of In-dia's hundred million Muslims." (40) Mian Abdullah was the founder of the free Islamic convocation, an organization to counteract the Muslim League's designs for a separate country for the Muslims. Under his tutelage, Dr. Aziz's identification with the secular ideals of India is complete. He tells the Rani of Coonch Naheen, "I started off as a Kashmiri and not much of a Muslim, then I got a bruise on the chest that turned me into an Indian, though not much of a Muslim

but I'm all for Abdullah." (40) His secular outlook is evident when he dismisses the maulvi, his children's tutor. He tells his wife Naseem that the maulvi was "teaching them to hate..... Hindus, Buddhists, Jain and Sikh." (40) He refuses to let his children grow up hating others. With his association with Mian Ahdullah, Aziz's zest for freedom grows into an "optimism disease" which is sweeping through the hearts of all liberal Indians. With the gruesome death of Mian Abdullah at the hands of fanatic Muslim Leaguers, the idea of a united India is scuttled. The "optimism disease" comes to a premature and disillusioned end. Dr. Aziz is left in tears of grief. Nevertheless Aziz's brush and association with incidents of history had made him more determined, humane and secular in outlook; he "buried himself in his work, taking upon himself the nursing of the sick in the shanty towns by the railway tracks rescuing them from quacks who injected them with pepper water, and thought that fried spiders could cure blindness." (56) He thus plunged into social work at the service of millions of poverty-stricken, exploited people. The connection between the individual and history is reiterated through passing references to other members of Dr. Aziz's family. The parallelism between the disintegration of the marriage of Mumtaz Aziz, his daughter and Nadir Khan and the atomic explosion in Japan during the Second World War is blatant in its artifice. After three years of marriage, a bomb is dropped on Mumtaz and Nadir Khan's relationship. Simultaneously, on a fateful day a weapon such as the world had never seen was being dropped on the 'yellow people' in Japan. In Agra, her sister Emerald unleashed a secret weapon of her own, the bandy-legged, short, flat headed Zulfikir, placing him on Nadir Khan's track. The latter disappears, bringing the unconsummated marriage to an explosive end.

Rushdie's linking of history, politics and the individual often seems forced and contrived. However, the sheer verve of the writing and the exuberance of his imagination entices the reader



into "a willing suspension of disbelief."

From a study of the incidents in the novels it is clear that in addition to the burden of history, unethical and unscrupulous politicians by their actions reduce individuals to being mere bearers of history. The individual as history bearing can be best exemplified through what happens to Dr. Aadam Aziz during the Jallianwal-lah Bagh carnage. The innocuous Jallianwallah Bagh meeting into which he unwittingly wanders with his attache case turns out into a literal baptism by fire into the freedom movement. A chance sneeze however saves his life. But in the process as he falls on his attache case, the clamp of the bag leaves a permanent bruise on his chest. This wound makes him a literal bearer of history. Dr. Aadam Aziz's wound is symbolic of what happened to millions of Indians during the pre-Independence days.

The Partition : The Individual as History Suffering -

As the national movement gained momentum, subversive forces were hacking away at the very ideals on which it had grown. As wiser and saner counsels failed, the spectre of Partition loomed large on the horizon. People of various religions carried away by partisan and misplaced ideologies found it impossible to sink their differences and made the Partition an unavoidable reality. The most traumatic event in the history of modern India was the Partition, unsurpassed in the magnitude of its effect on individuals in the sub-continent. The link between History and the Individual as its sufferer cannot be depicted more vividly than through the tragic drama of the Partition. The Partition was not just a historical event but one which touched the lives of millions of common people throughout the country. The sudden outburst of the simmering animosity between the communities which had co-existed for centuries, tore asunder the basic fabric of the nation, destroying the much-vaunted ideal of religious tolerance. The tragic effect of Partition manifested itself on two fronts the mindless and bloody violence which set the country ablaze

leaving one million people in northern India killed in brutal and primitive manner, and the stupendous mass migration, the largest two-way land migration in history, uprooting hundreds and thousands of long entrenched people and transforming them into refugees overnight. The latter was not merely a geographical dislocation comparable to the migration of the Israelites, it represented a complete disintegration of the lives of millions of people who had to rebuild their lives after a total obliteration of their identities, the helpless sufferers of history'.¹ The Partition has had a far-reaching impact on the psyche of the Indian sub-continent, as in the case of the Jews of Nazi Germany, it was a trauma psychologically affecting an entire people. The human dimension has made writers of the sub-continent turn repeatedly to this tragic experience. The theme of Partition dominated the middle phase in the development of the Indian English novel. Even the new generation of writers who have not directly experienced the horrors of Partition found it imperative to touch on such a momentous national catastrophe.

The highly ruthless and frenzied nature of violence between the Hindus and Muslims is conveyed when Mr. Multani contrasts it with the nature of a contemporary riot: "Compared to the Forties, these riots are like fire crackers hoodlums having their special brand of fun and organizing integration meetings." (229) It is a sad commentary on those people who now rake up communal passions for their own selfish and vested ends. In spite of having lived during those turbulent times, Mr. Multani considers himself lucky for having experienced the most momentous time in the history of the country. These reminiscences of Mr. Multani are thought-provoking to Agastaya and he is shocked at his own insensitivity: "Multani's father had known the sufferance of colonial rule, but Agastaya and Darshan Multani had not, and unlike John Avery, had not even been particularly inquisitive." (230) It is a sad reflection on the present generation's ineptitude, for whom riots



mean a chance of a holiday. Multani's fear that the English "have left behind cultural cripples, incapable of appreciation" (230) may not be far from the truth.

From the foregoing it may be commented that Jugga in *Train to Pakistan*. Debi in *A Rend in the Ganges*, Lala Kanshiram in *Azadi*. Multani in *English, August* and a score of others are all inevitably presented as history suffering.

Reference

1. Salman Rushdie, *Midnight's Children* (1980; New York : Avon Books, 1982).
2. K. Raghavendra Rao, "The Novel as 'Chutney': Unriddling Salman Rushdie's *Midnight's Children*," *Perspectives on Indian Fiction in English*, ed. M.K. Naik (New Delhi: Abhinav, 1985), page- 159.
3. Friedrich Nietzsche, "On the Uses and Disadvantages of History for Life," *Untimely Meditations*, trans. R.J. Hollingdale (Cambridge: Cambridge Univ. Press, 1983), page- 72.
4. David W. Price, "Salman Rushdie's 'Use and Abuse of History' in *Midnight's Children*," *ARIEL: A Review of International English Literature*, 25:2 (1994), page-93.
5. Walter Allen, *Reading a Novel* (London: Phoenix House, 1940), page-18-19.
6. Ralph J. Crane, "The Chutnification of History," *Inventing India: A History of India in English Language Fiction* (London: Macmillan, 1992), page-171.
7. Salman Rushdie, interview by Gordon Wise, *Gentleman*, Feb. 1984, page-59.
8. B. K. Joshi, "It may be long, but it is not overwritten," *The Times of India*, 1 Nov. 1981. page- 8.
9. Wise, page- 57.
10. Wise, page- 57.
11. Niel Ten Kortenaar, "*Midnight's Children* and the Allegory of History," *ARIEL*, 26:2, 1995, page- 41.
12. Neeraja Mattoo, "Indianness in *Midnight's Children*: Rushdie's View of an 'Amnesiac Nation,'" *The Indian Novel in English: Essays in Criticism*, ed. Ravi Nandan Sinha and R.K. Sinha (Ranchi: Ankit, 1987), page-67.
13. Tariq Rehman. "Politics in the Novels of Salman Rushdie," *The Novels of Salmon Rushdie*, Ed. G. R. Taneja and R.K. Dhawan (Prestige, 1992), page- 102
14. Amitav Ghosh, *The Shadow Lines* (1988; New Delhi: Ravi Dayal Publisher, 1992).
15. Amitav Ghosh, *The Circle of Reason* (New Delhi: Roli Books International, 1986).
16. Novy Kapadia, "Imagination and Politics in Amitav Ghosh's *The Shadow Lines*," *The New Indian Novel in English: A Study of the 1980s*, ed. Viney Kirpal (New Delhi: Allied, 1990), page- 201.
17. Salman Rushdie - *The Times of India*, 1 Nov 1981, page- 8.
18. Khushwant Singh, *Train to Pakistan* (New Delhi : Ravi Dayal Pub, 1988), page- 18.
19. C. N. Srinath - "The Writer as Historical Witness : Khushwant Singh's *Train to Pakistan* and Chaman Nahal's *Azadi*" *The Literacy Criterion*, 25.2 (1990), page-60.
20. Salman Rushdie, interview, "Author from Three Countries," by Michael J. Kaufman, *New York Book Review*, 13 Nov. 1983, page- 3.
21. Salman Rushdie, *Shame* (1983; Calcutta: Rupa, 1983).
22. Robert L. Ross, "The Emerging Myth: Partition in the Indian and Pakistani Novel," *ACLALS Bulletin*, 7.4: 1986, page-3.





Received: 18 August, 2024; Accepted: 28 November-2024, Published: January-March, 2025 Issue

The Effect of Collaborative Learning on Creativity of College Students



- Dr. Umendra Singh
Assistant Professor -
Department of Teacher Education,
Dharm Samaj College, Aligarh-
202001 (Uttar Pradesh)

Raja Mahendra Pratap Singh
University, Aligarh (U.P.)

Email-
usds1979@gmail.com

Abstract

Examining the impact of collaborative learning on college students' creativity was the goal of the current study. The researcher employed a control group design that was pre-test and post-test for this objective. 54 male students in the eleventh grade studying biology at a government-aided intercollege in Aligarh city were selected for the sample using a straightforward random sampling method. Two groups of these pupils were formed, and they were subsequently randomly assigned to the experimental and control groups. A pre-test was first administered to both groups. After that, the experimental group received instruction using a collaborative learning approach, whereas the control group received a traditional learning paradigm for twenty weeks. A post-test was given to both groups to determine the difference in the students' creativity scores. Both the independent and paired sample t-tests were used to analyse the data. According to the results, the experimental and control groups did not significantly differ from one another in the pre-test, but they did significantly differ in the post-test. The findings of the paired sample t-test, which was used to examine how collaborative learning affected students' creativity, revealed a significant difference between the experimental and control groups' pre- and post-treatment scores. After examining the data, it was determined that college students' creativity was positively impacted by collaborative learning.

Keywords- Collaborative Learning, Creativity, Fluency, Flexibility, Originality, College Students.

Introduction-

Learning is the result of classroom teaching. The classroom environment, student motivation, pedagogical skills, utilisation of educational technologies, instructional strategies, and instructor competencies are some of the factors that affect how successful learning is. Sultan and Hussain (2012) claim that when students engage in more activities, learning happens more effectively. As a result, effective



learning and student participation are tightly related in the teaching-learning process. Student-centred educational techniques have always been the choice of a good teacher. Students actively participate in the learning activities that these instructors design and give.

Teachers use two types of instructional tactics in the classroom: group activities and individual activities. According to Hussain and Sultan (2010), students must participate in a variety of interactive activities in order to finish their academic assignments in order for learning to be effective. Both individually and in small groups, the students work on assigned tasks to complete them cooperatively. Collaborative learning is the phrase used to describe this kind of learning that takes place in small groups of students who take on projects and help each other out. It is referred to as collaborative learning when two or more student study or attempt to learn something together. Throughout this learning process, students gain from one another's resources and skills (Dillenbourg, 1999).

The premise behind this instruction is that teachers may create knowledge among a group of students by promoting asymmetrical roles and experience-sharing. As part of a team-based teaching strategy, collaborative learning assigns a project or assignment to each team. A small amount of the project is finished by each team member independently, and ultimately, all of the individual contributions are brought together to produce the final assignment or project. Feedback on this effort is being sent to the individual as well as the team. According to Jain, Rao, and Sunda (2016), who cited Johnson and Johnson (1998), the notion that knowledge is a social construct forms the basis of collaborative learning.

As a result, group learning is usually exhibited when students work together to generate an artefact or learning product or to discover answers, meaning, or knowledge. Activities like group projects, cooperative problem-solving exercises, cooperative writing, fishbowl talks, case

studies, and big ideas are all included in the category of collaborative learning exercises.

Creativity-

An essential component of global competition is creativity. Trying to foster pupils' creativity is a major challenge for every institution. Through education, students should be able to solve problems and be motivated to be innovative. The learning environment of the institution should support students' creativity to the fullest extent possible. Students need to be ready if they want to succeed in the real world. As a result, they need to be able to act and be creative in addition to having the ability to speak. That's what Jackson et al. (2012) say. "Developing new concepts and ideas, or finding new connections between preexisting ideas and concepts, is the mental process of creativity." Most people consider originality and conformity to be traits of creative work.

According to Lau (2011), we usually mention notable works of art or important scientific discoveries when discussing creativity. In reality, creative thinking encompasses more than simply the arts and sciences. We must use our creativity to get past life's challenges. The essence of creativity is the development of unique, useful concepts. Consequently, creativity originates from unique ideas. In essence, creative thinking is a complex process that involves several social interactions, processes, final outputs, and sociocultural contexts that are relevant to the topic of study. Zimmerman (2010) asserts that educational strategies and models can enhance creativity. A number of educational innovations can be applied to foster creativity. This is important because studies have indicated that traditional schooling does not improve conceptual understanding and application as well (Lindstrom and Sharma, 2009). Howard Gardner (1999) defined creativity as the ability to create products, solve problems, or bring up concerns in a certain field in a way that is initially novel but subsequently accepted in one or more cultural context. One essential element of creativity is the



ability to distinguish between creative and analytical thought. Generally speaking, originality means being creative. In 1956, Drevdahl gave a comprehensive and scientific description of creativity. It refers to a person's capacity to produce works of art, goods, or concepts of any type that are essentially original and unheard of.

It could involve combining concepts or doing artistic endeavours. It should be more than just fantasising; it should be purposeful or goal-oriented. It may involve integrating knowledge from past experiences and developing new patterns. It could manifest as a work of literature, art, or science. In 'The Creative Imagination,' Ribot (1906) proposed that human creativity is due to two factors: (a) the motor movements that result from their appetites, inclinations, and desires, and (b) the potential for spontaneously reviving images that are arranged in novel ways. Similarly, Wertheimer (1945) proposed that creative thought is the successful conversion of a component from one configuration to another. Shaughnessy (1998) interviewed E. Paul Torrance, who described creativity for research as the process of recognising problems, difficulties, gaps in knowledge, missing pieces, and something as unique, developing theories and assumptions about these shortcomings, evaluating and testing these theories and assumptions, possibly revising and retesting them, and then sharing the results.

Collaborative Learning and Creativity-

Conventional education just aids in the assimilation and retention of facts; it has no effect on students' conceptual grasp. Students are usually involved in all pertinent responsibilities in order to make education efficient in the modern era. Critical thinking is significantly impacted by collaborative learning through discussion, concept clarification, and assessment of others' ideas. The teacher should monitor each student's development in terms of learning skills acquisition in order to achieve this. Being creative is one of those skills. Creativity is required to stay up with the rapid advancements in technology and

knowledge (Hilton, 2008; Trilling & Fadel, 2009). The traditional 3 Rs (reading, writing, and mathematics) of the 20th century have been replaced by the 4 Cs: communication, collaboration, critical thinking and problem solving, and creativity and innovation skills (Frydenberg & Andone, 2011). Since we live in a creative age of communication, information, and collaboration, creativity is considered crucial for both individual and social achievement (Kampylis, Berki, & Saariluoma, 2009). According to Rojanapanich and Pimpa (2011), innovation and adaptability to globalisation can be facilitated by creativity. Creativity is viewed as a human ability that can be developed and improved dynamically over the course of a person's life, both individually and collaboratively.

The curriculum that will be necessary in the future is referred to as the 4Cs learning paradigm. One's ability to think critically, productively, cooperatively, and creatively is enhanced by this learning model. The results of several studies (Daud et al., 2012; Glăveanu, 2010; Hadzigeorgiou et al., 2012; Lin et al., 2016; Michalopoulos, 2014) indicate that collaborative learning interventions are a successful way to develop the ability to think creatively. Chang et al. (2016) and other similar studies suggest that the meta-analysis's assessment of the effect size of the collaborative learning treatment is credible. The purpose of promoting creative thinking in the classroom is to equip students for the diverse and rapidly evolving difficulties of life, according to Häkkinen et al. (2017).

Well-coordinated students are able to understand ideas and draw parallels between them and the outside world (Daud et al., 2012; Ramirez & Monterola, 2019). When students participate in collaborative learning, they can communicate with their peers, actively discuss opinions, and present and defend ideas (Johnson & Johnson, 2009; Laal & Ghodsi, 2012). Students debate the issue in groups to raise a range of hypotheses about it as part of the collaborative learning process. Next,



they make recommendations for possible remedies based on relevant research (Alt & Raichel, 2020; Bos, 2020; Chang et al., 2016; Deep et al., 2020). Team members might be encouraged to communicate their viewpoints and thoughts with one another through group activities that promote collaborative contact (Cheng, 2013). These findings are in line with prior research that showed how group learning and real-world difficulties affect creative thinking (Tateishi, 2011). It becomes important to keep in mind that during collaborative learning, stimulus difficulties are presented (DeHaan, 2009). According to Baillie (2006), Bengi (2015), Daud et al. (2012), Eragamreddy (2013), Hadzigeorgiou et al. (2012), and Tateishi (2011), problem stimulus—such as fluency, elaboration, flexibility, and originality plays a significant role in the creation of new knowledge from the perspective of creative thinking.

Significance of the Study-

Effective learning, according to Ruengtam (2012), should offer a deep understanding rather than memorisation and imitation. Collaborative learning may aid in the development and enhancement of instruction since it leads to more effective and efficient student learning. It is now essential to research how collaborative learning affects creativity in both high school and college settings. Introducing collaborative learning across a range of areas will boost students' inventiveness. Additionally, by employing this strategy, students will find the content more interesting and significant rather than boring. There are few empirical studies to back up collaborative learning at all levels, but especially in higher education. So, to convince instructors to use collaborative learning in their teaching in different subjects, it is very important to collect strong empirical evidences in favor of this instructional strategy at college level.

Objective of the Study-

The present study aimed to determine the effect of collaborative learning on creativity of

college students.

Hypothesis of the Study-

There is no significant mean score difference between the creativity scores of experimental and control groups after intervention.

De-limitation of the Study-

☛ The present study was confined with only 54 samples of 11th grade students from a government aided inter college (U.P. Board) of Aligarh city.

☛ The present study was confined only to verbal creativity with three dimensions (fluency, flexibility and originality).

Material, Method and Procedure-

Research Design- The present study was dealt significantly by using experimental research method. The pre-test post-test control group design was used in this experimental study. The systematic description of this research design is described in following figure.

RO1	X	O2
RO3		O4

This research design was selected on the basis of nature of the problem and the hypothesis of the study. This design consisted of two groups—experimental group (27 students) and control group (27 students). The experimental group was treated with collaborative learning model while the control group was taught by conventional learning model.

Sample-

The sample of this study consisted of all 11th grade students enrolled in biology section of a government aided inter college (U.P. Board) of Aligarh city. There were five sections (1 art, 1 commerce, 2 mathematics and 1 biology) in that college. First of all, one section was selected out of five by simple random sampling technique. In this section, there were 54 students. All students were male. So, there was no diversification in terms of gender. Age range of the sample was 15 to 17 years old. These 54 students were divided in two groups on the basis of their pre-test scores. After that these



two groups were randomly assigned in experimental and control group.

Total Students (54)

- Experimental Group (27)
- Control Group (27)

Instrument-

To measure the creativity of the sample, a standardized test named 'Passi Test of Creativity' constructed by Dr B. K. Passi was used. This PTC include six tests, namely: The Seeing Problems Test, The Unusual Uses Test, The Consequences Test, The Test of Inquisitiveness, The Square Puzzle Test and The Blocks Test of Creativity. The researcher used only first three tests which are verbal in nature. The same tests were used for pre-test and post-test.

Procedure-

To address the pre-existing discrepancies between the experimental and control groups, the researcher administered a pre-test. Following this pre-test, the experimental group received the treatment. The same subject-matter expert teacher treated both groups so order to control the impact of instruction quality. The instructor instructed both groups in the same material from the biology textbook for the eleventh grade. Over the course of 20 weeks, the experimental group received instruction using a collaborative learning model,

while the control group received instruction using a traditional learning model. Both groups were given a post-test following this implementation period.

Data Analysis-

In this present study, independent sample t-test was used to examine whether there is a significant difference between pre-test and post-test scores of both groups. To determine the effect of collaborative learning on creativity of students, paired sample t-test was used.

Verification of Hypothesis-

There is no significant effect of collaborative learning on creativity of college students.

1. To determine whether there is a statistically significant difference between pre-test mean scores of students in experimental and control groups, pre-test results were examined. (See Table-1)

According to table 1, the t-value is 0.511, which is not statistically significant at the 0.05 level with df 52. It shows that there is no discernible change in the mean between the experimental and control groups. Therefore, there was no difference in the level of creativity among students in the experimental and control groups prior to the intervention.

Table -1

Independent Sample t-test results of Experimental and Control groups pre-test mean scores.

Group	N	Mean	SD	df	t	p
Experimental	27	40.15	15.02	52	0.511	2.000 at 0.05 level
Control	27	38.26	12.01			

Table - 2

Independent Sample T-test Results of Experimental and Control groups' Post-test mean Scores

Group	N	Mean	SD	df	t	p
Experimental	27	55.74	16.75	52	3.517	2.000 at 0.05 level
Control	27	42.41	10.27			



1. Post-test scores of students in the experimental and control groups were compared in order to see if there was a statistically significant difference between them. **(See Table-2 on back page).**

According to table 2, the t-value is 3.517 and is significant at the 0.05 level with df 52. It shows that the difference in mean values between the experimental and control groups is significant. This indicates that after the intervention, the inventiveness of the students in the experimental and control groups varied.

1. Pre-test and post-test data were compared in order to ascertain whether there is a statistically significant difference between pre-test and post-test scores in the experimental group. **(See Table-3)**

As table-3 showed that the calculated t-value (11.901) is greater than the critical value (2.779) at the 0.01 significance level. This shows that the means of the two groups differ statistically significantly from one another. Due to the significance level being set at 0.01, the p-value for the t-value is less than 0.01. Because of this, it is unlikely that such a significant variation in means between the two groups could have been seen by pure chance. Because of this, we can say that the experimental group's collaborative learning

process (based on pre- and post-test scores) has significantly improved. The t-value indicates that there is a difference in means between the two groups, indicating that the students' creativity has benefited from collaborative learning.

1. Pre-test and post-test scores in the control group were compared to see if there was a statistically significant difference between them. **(See Table-4)**

Table 4 demonstrated that the calculated t-value (6.049) is higher than the crucial value (2.779) at the significance level of 0.01. This shows that the means of the two groups differ statistically significantly from one another. Due to the significance level being set at 0.01, the p-value for the t-value is less than 0.01. This indicates that there is a very low likelihood of seeing a significant difference in averages between the two groups solely by chance. Based on the results of the pre- and post-tests, we can therefore say that the traditional learning approach (control group) has also led to a considerable development in terms of creativity. **(See Figure -1 on next page)**

Discussion -

The purpose of this study was to look into how college students' creativity was affected by collaborative learning. The pupils were divided into two groups at random—the experimental

Table-3

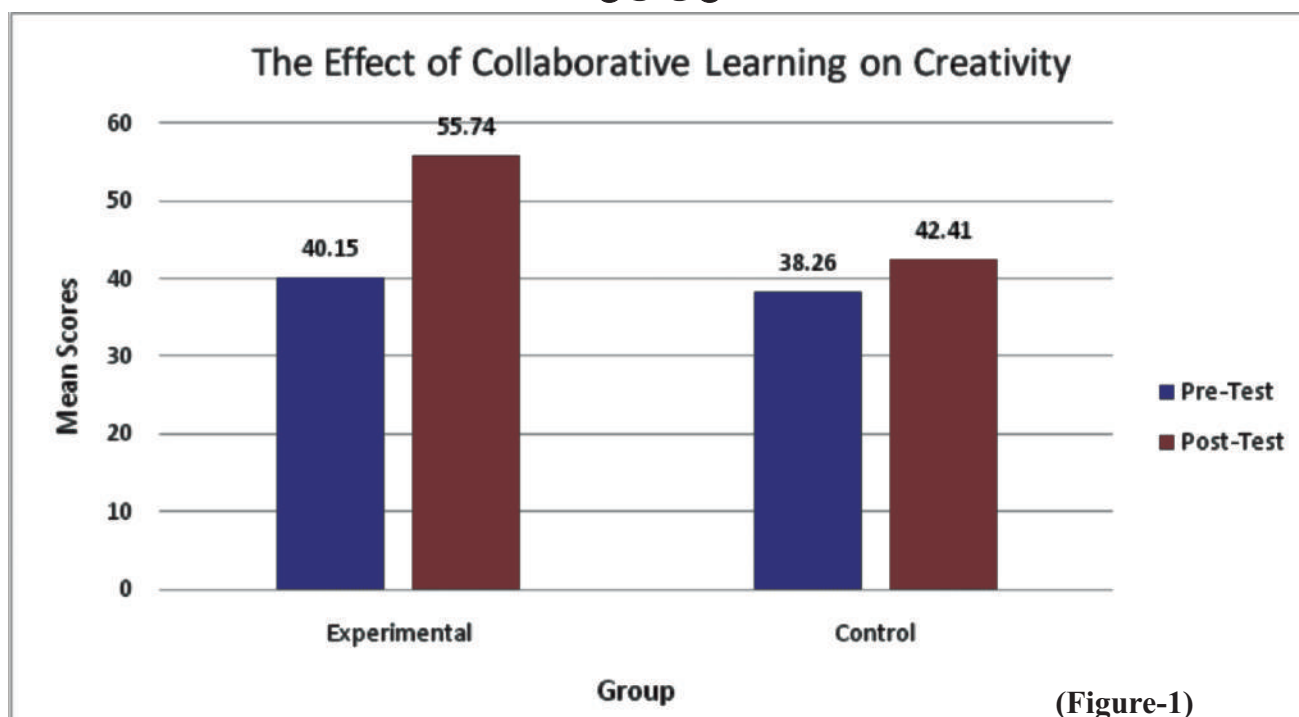
Paired Sample T-test Results of Experimental Group's Pre-test and Post-test mean Scores

Test	N	Mean	SD	df	t	p
Pre-test	27	40.15	15.02	26	11.901	2.779 at 0.01 level
Post-test	27	55.74	16.75			

Table - 4

Paired Sample T-test Results of Control group's Pre-test and Post-test mean Scores

Test	N	Mean	SD	df	t	p
Pre-test	27	38.26	12.01	26	6.049	2.779 at 0.01 level
Post-test	27	42.41	10.27			



group and the control group in order to obtain sound results. To determine whether the mean scores of the experimental and control groups differed significantly, a pre-test was administered. Following that, the experimental group received treatment using the collaborative learning model, whereas the control group received treatment using the traditional learning paradigm for 20 weeks. A post-test was then given to the experimental and control groups to determine how the intervention had changed them. According to the findings, college students' creativity and its dimensions fluency, adaptability, and originality benefit greatly from collaborative learning, although traditional learning also has a favourable but small effect on creativity and its dimensions (fluency, flexibility and originality). The results of a few studies that have been conducted on this topic are in line with this conclusion. For example, collaborative learning significantly influences critical thinking through discussion, concept clarification, and assessment of others' ideas. The teacher should monitor each student's development in terms of learning skills acquisition in order to achieve this. Being creative is one of those skills. Creativity is required to stay up with

the rapid advancements in technology and knowledge (Hilton, 2008; Trilling & Fadel, 2009). According to Frydenberg and Andone (2011), the traditional 3 Rs (reading, writing, and maths) of the 20th century have been replaced by the 4 Cs: critical thinking and problem solving, communication, teamwork and creative and invention skills.

References

- Alt, D., & Raichel, N. (2020). Problem-based learning, self- and peer assessment in higher education: Towards advancing lifelong learning skills. *Research Papers in Education Advance* online publication. <https://doi.org/10.1080/02671522.2020.1849371>.
- Baillie, C. (2006). Enhancing students' creativity through creative-thinking techniques. In N. Jackson, M. Oliver, M. Shaw, & J. Wisdom (Eds.), *Developing creativity in higher education*. Routledge. <https://bit.ly/3ltrZIM>.
- Bayindir, N., & Inan, H. Z. (2008). Theory into practice: Examination of teacher practices in supporting children's creativity and creative thinking. *Ozean Journal of Social Science*, 1(1), 91-96.
- Bengi, B. (2015). Creative and critical thinking skills in problem-based learning environments. *Journal of Gifted Education and Creativity*, 2(2), 71-71. <https://doi.org/10.18200/JGEDC.2015214253>.
- Bos, D. M. V. (2020). Use of problem-based learning activity to improve attitudes regarding inter-



- professional collaborative teamwork in mental health nursing students: An evaluation study. *Nurse Education in Practice*, 49, 102908. <https://doi.org/10.1016/j.nepr.2020.102908>.
- ☛ Chang, J. W., Wang, T.-I., Lee, M.-C., Su, C.-Y., & Chang, P.-C. (2016). Impact of using creative thinking skills and open data on programming design in a computer-supported collaborative learning environment. In J. M. Spector, C.-C. Tsai, D. G. Sampson, Kinshuk, R. Huang, N. S. Chen, & P. Resta (Eds.), *IEEE 16th International Conference on Advanced Learning Technologies (ICALT 2016)* (pp. 396–400). IEEE Computer Society- Coonference Publishing Service (CPS). <https://doi.org/10.1109/ICALT.2016.78>.
 - ☛ Cheng, H. (2013). Student team creativity in information system development: Social capital perspective. *Journal of Software*, 8(9), 2134–2141. <https://doi.org/10.4304/jsw>.
 - ☛ Daud, A. M., Omar, J., Turiman, P., & Osman, K. (2012). Creativity in science education. *Procedia - Social and Behavioral Sciences*, 59, 467–474. <https://doi.org/10.1016/j.sbspro.2012.09.302>.
 - ☛ Deep, S., Ahmed, A., Suleman, N., Abbas, M. Z., Nazar, U., & Razzaq, H. S. A. (2020). The problem-based learning approach towards developing soft skills: A systematic review. *The Qualitative Report*, 25(11), 4029–4054. <https://doi.org/10.46743/2160-3715/2020.4114>.
 - ☛ DeHaan, R. L. (2009). Teaching Creativity and Inventive Problem Solving in Science. *CBE—Life Sciences Education*, 8(3), 172–181. <https://doi.org/10.1187/cbe.08-12-0081>.
 - ☛ Dillenbourg, P. (1999). What do you mean by C. L.? In P. Dillenbourg (Ed.), *Collaborative Learning: Cognitive and Computational Approaches*. pp.1-19 Oxford; U.K., Elsevier Publishing.
 - ☛ Drevdahl, J. E. (1956). Factors of Importance for Creativity. *Journal of Clinical Psychology*. Vol-12(1). pp. 6-21.
 - ☛ Eragamreddy, D. N. (2013). Teaching creative thinking skills. *International Journal of English Language & Translation Studies*, 1(2), 124-145.
 - ☛ Frydenberg, M. E., & Andone, D. (2011). Learning for 21st Century Skills. *IEEE's International Conference on Information Society*. London.22-27 June. pp. 314-318.
 - ☛ Gardner, H. (1999) *Intelligence Reframed. Multiple intelligences for the 21st century*. New York : Basic Books.
 - ☛ Glăveanu, V. P. (2010). Paradigms in the study of creativity: Introducing the perspective of cultural psychology. *New Ideas in Psychology*, 28(1), 79–93. <https://doi.org/10.1016/j.newideapsych.2009.07.007>.
 - ☛ Hadzigeorgiou, Y., Fokialis, P., & Kabouropoulou, M. (2012). Thinking about creativity in science education. *Creative Education*, 3(5), 603–611. <https://doi.org/10.4236/ce.2012.35089>.
 - ☛ Häkkinen, P., Järvelä, S., Mäkitalo-Siegl, K., Ahonen, A., Näykki, P., & Valtonen, T. (2017). Preparing teacher-students for twenty-first-century learning practices (PREP 21): A framework for enhancing collaborative problem-solving and strategic learning skills. *Teachers and Teaching*, 23(1), 25–41. <https://doi.org/10.1080/13540602.2016.120377>.
 - ☛ Hilton, M. (2008). Skills for Work in the 21st Century: What does the research tell us? *Academy of Management Perspectives*. Vol-22. pp. 63-78.
 - ☛ Hussain, I. & Sultan, S. (2010). Learning by Doing: Outcomes of Teaching a Research Course through Group Activities, in proceedings of the Annual International Conference of Computer Science Education: Innovation & Technology (CSEIT) 2010. Published and organized by the Global Science and Technology Forum (GSTF) Singapore, December 6-7, 2010.
 - ☛ Jackson, L. A., Witt, E.A., Games, A.I., Fitzgerald, H.E., Von Eye, A. and Zhao, Y. (2012). Information Technology Use and Creativity: Findings from the Children and Technology Project. *Computer in Human Behavior*. Vol-28(2). pp. 370-376. <https://doi.org/10.1016/j.chb.2011.10.006>.
 - ☛ Jain, R., Rao, V. & Sunda, H. (2016). Multiple Intelligence based Cooperative and Collaborative Learning. *International Journal of Applied Engineering Research*. Vol. 11(7).
 - ☛ Johnson, D. W., & Johnson, R. T. (2009). An educational psychology success story: Social interdependence theory and cooperative learning. *Educational Researcher*, 38(5), 365–379. <https://doi.org/10.3102/0013189X09339057>.
 - ☛ Kamyli, P., Berki, E. & Saariluoma, P. (2009). In-service and Prospective Teachers' Conceptions of Creativity. *Thinking Skills and Creativity*. Vol- 4. pp. 15-29.
 - ☛ Laal, M. & Ghodsi, S. M. (2012). Benefits of Collaborative Learning, *Procedia- Social and Behavioural Sciences* 31. pp 486-490. Elsevier Publishing.
 - ☛ Laal, M. & Ghodsi, S. M. (2012). Benefits of Collaborative Learning, *Procedia- Social and Behavioural Sciences* 31. pp 486-490. Elsevier Publishing.
 - ☛ Lau Joe, Y.F. (2011). *An Introduction to Critical Thinking and Creativity: Think More, Think Better*.



- (United States of America: John Wiley & Sons Inc.
- ☛ Lindstrom, C. & Sharma, M. D. (2009). Link Maps and Map Meetings: Scaffoldings Student Learning. Physical Review Special Topics- Physics Education Research. Vol-5(1).
 - ☛ Lucas, B. (2016). A five-dimensional model of creativity and its assessment in schools. *Applied Measurement in Education, Taylor & Francis*, 29(4), 278–290. <https://doi.org/10.1080/08957347.2016.1209206>.
 - ☛ Michalopoulou, A. (2014). Inquiry-based learning through the creative thinking and expression in early years education. *Creative Education*, 5, 377-385. <https://doi.org/10.4236/ce.2014.56047>.
 - ☛ Ramirez & Monterola, 2019 Ramirez, H. J. M., & Monterola, S. L. C. (2019). Co-creating scripts in computer-supported collaborative learning and its effects on students' logical thinking in earth science. *Interactive Learning Environments. Advance online publication*. <https://doi.org/10.1080/10494820.2019.1702063>.
 - ☛ Ribot, T. (1906). Essay on Creative Imagination. Chicago, Ill.: Open Court Publishing Co., 1.
 - ☛ Rojanapanich, P. & Pimpa, N. (2011). Creative Education, Globalisation and Social Imaginary: A Case of Higher Education. *Creative Education*. Vol- 2. pp. 327-332.
 - ☛ Ruengtam, P. (2012). Learning efficiency in theoretical subjects of interior architecture by cooperative/ collaborative learning technique. *Procedia- Social and Behavioral Sciences*. 68(1), pp 281-294.
 - ☛ Shaheen, R. (2010). Creativity and Education. *Creative Education*. 1(3), 166-169. <https://doi.org/10.4236/ce.2010.13026>.
 - ☛ Shaughnessy, M. F. (1998). An Interview with E. Paul. Torrance: About Creativity. *Educational Psychology Review*. <https://www.researchgate.net/publication/233971371>.
 - ☛ Sultan, S. & Hussain, I. (2012) Comparison between Individual and Collaborative Learning: Determining a Strategy for Promoting Social Skills and Self-Esteem among Undergraduate Students, *Journal of Educational Research*, Vol-15, Iss. 2 pp 35-43.
 - ☛ Tateishi, I. (2011). Impact of group collaboration on the improvement of individual creative thinking ability [Doctoral dissertation, Birmingham Young University]. BYU ScholarsArchive. <https://bit.ly/38xRJkp>.
 - ☛ Trilling, B. & Fadel, C. (2009). 21st Century Skills: Learning for Life in our times. San Francisco, CA: Jossey-Bass.
 - ☛ Zimmerman, E. (2010). Guest Editor, *Art Education*. 63(84).

Declaration

This is to certify that the work entitled “*The Effect of Collaborative Learning on Creativity of College Students*” is original and has not been published in any other journal in India or abroad.

- Dr. Umendra Singh



विशेष

प्रकाशन शोधकर्ताओं के लिए शोध प्रक्रिया का अन्तिम और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चरण होता है। शोध समाज की एक मूल्यवान उपलब्धि है, जिसके लिए इसे समाज के बीच आना ही चाहिए ताकि समस्त मानवता इसका लाभ उठा सके। वर्तमान में बेलगाम होती महंगाई, कम्यूटर टाइपिंग, कागज, मुद्रण सामग्री एवं प्रिंटिंग की दरों में उत्तरोत्तर बढ़ती शोधार्थियों के द्वारा प्रकाशित होने वाले शोध-पत्रों के अवसरों को सीमित एवं संकुचित करते हैं।

संगोष्ठियों में शोध प्रपत्र का वाचन शोधार्थियों एवं शोधविदों के लिए एक महत्त्वपूर्ण अवसर होता है। अपने गुणवत्तापरक शोध कार्य को इन संगोष्ठियों के माध्यम से जनमत के बीच लाने का माध्यम बनता है। ऐसे अवसरों का लाभ उठाना ही हम सभी के लिए हितकर है, हम सभी आर्य और समाज में आगे बढ़कर अधिक से अधिक सहयोग देकर इसे सफल बनाने के कार्य में हाथ बंटायें।

- प्रबन्धक सम्पादक

A Study of a Digital Platform for Investors in India : A Review



- Prof. Suneet Kumar Awasthi
Professor - Department of Economics,
D. A.-V. (P.G.) College, Kanpur -
20801 (Uttar Pradesh)

Email-
dr.suneet.awasthi@gmail.com

Abstract

Digital platforms have been recognized as "revolutionary", "innovative", and at the same time "cost-effective" for the retail or small investors. The present study concludes the digital environment helped the small investors to create economical literacy in investing. The easy availability of credible information and stock trading apps, are the main driving force for the investment. In addition, mobile devices and applications, cloud computing, and platforms based on artificial intelligence are the primary changes that have occurred in the method that small investors take to investing. We are of the opinion that the digital environment will continue to acquire more significance in regards to financial instruments such as investment. For people of all ages, digital platforms offer a new and developing source of income. Digital platforms serves as a central hub for engagement since they may link customers, resources, and organisations. Given the pandemic scenario, the digital environment has been a roaring success and is yet a relatively unstudied field of study. In contrast to the "Productivity Paradox" of 1987, there is strong evidence today that investments in digital technology are profitable. Economic growth is accompanied by increased productivity because digitization opens up new job opportunities. The role of the digital platform as an engine for economic growth is well understood. Because to internet disparity, a sizable portion of the world's population is still offline and unable to benefit from digital dividends. The purpose of this study is to add to the body of knowledge by illuminating the hidden advantages for small investors and explaining how company models have changed on digital platforms.

Keyword: *Digital platforms, investment, stocks.*

Introduction -

A digital investment platform is a computerized arrangement that combines automated financial and business



executive capabilities with a human touch in the areas where it is vital to do so (Feyen, et al. 2021). This enables customers to save money and invest it in stocks, shares, and investment funds, thereby increasing the amount of money they have and allowing them to make more of it. As we move away from the period of the industrial revolution and towards the era of the economic dominance of information technology, the 21st century has been dubbed the "digital era." This digital transformation is adding to revenue all over the world and transforming economies all over the world. In recent years, there has been a discernible growth in the number of internet services that have the common characteristic of linking demand and supply for a particular purpose. This development has been made possible by the fast expansion of digital and mobile technology (Cepal et al., 2021). Business models that are enabled by digital technology facilitate high-value interactions between customers and providers. Vertical search engines, multi-sided platforms, and two-sided marketplaces are some of the names that have been used to these types of business models in the published research (Veile et al. 2022). Evans and Schmalensee (2016) extol the virtues of platforms, praising them as "powerful engines of business" that are "transforming economies" all over the world and "making life easier and better for billions of people." Transactional platforms and innovation platforms are both included in the category of digital platforms. By definition, investing platforms are online markets or infrastructure that stimulates exchange between different parties/investing companies. These kinds of platforms are the core component of the business models utilized by multimillion-dollar digital firms such as Groww, Goalwise, Wint Wealth, Paytm Money, Wealthy, Clearfunds, Scripbox, Zerodha Coin, and others (Verhoef et al. 2021). Digital investment platforms help investors invest in mutual funds in addition to stocks and bonds, fixed deposits, and help manage portfolios periodically based on taxes and exit loads, offer

goal-based investment approaches, help balance one's equity portfolio, and help switch between funds, among other things (Sharma, 2020). The majority of these platforms offer a full collection of features that may assist users in making, managing, and keeping tabs on their investments. This paper focuses on effects of digital platforms for small investors that contribute to improving the Indian economy.

Research Objectives-

Despite the tremendous interest and rise in digital platforms, academic literature on the topic is still scarce. Hence, the objective of our study is to get a better understanding of how digital platforms have evolved for the small investors in course of time. In order to answer the research question, a thorough literature review is carried out as described under the methodology section.

Research Methodology -

A detailed literature analysis is conducted to better understand the growth of digital platforms and their benefits for small investors. Exploratory research involves qualitative methods. The main source of data is research papers, articles, economy reports highlighting digital business models and digital entrepreneurship. In addition, an empirical qualitative and quantitative study carried out using a multiple-case study design is also reviewed.

Results

India's Rapid Transition to Investing -

India has been able to connect hundreds of millions of people to the internet by making more low-cost smartphones available and investing more in digital technology infrastructure like mobile broadband, fiber-optic cable connections, and expanding the power grid (Deo, 2017). Consumers have become increasingly comfortable weaving technology into their everyday lives, from purchasing consumption items like food on hyperlocal delivery platforms, to digital investing. COVID-19 has made tech-enabled businesses not a choice, but a ubiquitous reality.

Retail investors in India may invest from home with smart investing applications like



Groww, Paytm Money, ETMONEY, Zerodha, and others. These platforms are truly innovators, bringing high yields with high risks with risk mitigants in place, delivering 9-11 per cent stable returns. As investors continue to back tech-enabled businesses, increasing amounts of capital pours into tech enabled business models, more than doubling the number of unicorns from 24 in 2019 to 63 today (Venture Intelligence, IVC Analysis). Over the next 5 years, data anticipate that the unicorn opportunity in India will grow to over 150 (Venture Intelligence, IVC Analysis). According to 2018 research by the Confederation of Indian Industries (CII), the Indian mutual fund market would expand at an 18% CAGR to reach INR 50 lakh crore in AUM by 2023 (Rana & Haque, 2020; IBEF Report, 2020).

In fact, Computer Age Management Services (CAMS), a mutual funds transfer agency, revealed that just under half of the 3.6 million new mutual fund investors in its portfolio for the Financial Year (FY) 2018-19, or 1.7 million, came from the retail investor community (CAMS Report (2020)). This information was made public in order to show how the retail investor population is growing. The amount of money that Indian companies have been able to raise through primary and secondary securities issuances has increased significantly during the last three years. The market's initial public offerings (IPOs) have been extremely successful so far in 2021.

The total amount of money issued thus far is around \$22.6 billion, with initial public offerings accounting for approximately 713 billion of total (IBEF Report, (2020)). The total value of the equities market in India has been expanding at a rate that is far quicker than in the past. The market capitalization has increased from \$1 trillion in 2007 to \$2 trillion in 2017, and it is presently at \$3.5 trillion (MeitY, 2018). The most current patterns of digital investment in India were displayed in Figure 1. Amidst a continuous rise in the value of Indian stocks over the course of the previous year, the influence of retail investors has

grown significantly. According to the findings of PRIME Infobase, the percentage of shares held by retail investors in companies that are traded on the NSE reached an all-time high of 7.32 percent in the quarter that ended on December 31, 2021. This represented a new record for the percentage of shares held by retail investors. This figure represents an increase from 7.13 percent in the prior quarter and 6.9 percent one year earlier (Business Standard article).

During the December, 2021 quarter, retail ownership increased in 871 of the firms that are listed on the New York Stock Exchange (NSE). During this time period, these firms had a gain of 15.51 percent in their average stock price (Chakraborty, 2021). While this was going on, retail holdings dropped in 759 different firms, but the average stock price of those companies saw a considerably larger gain of 20.35 percent. According to data provided by the Securities and Exchange Board of India (Sebi), investors opened a record number of demat accounts during the December quarter, totaling 10.23 million, with an average of 3.41 million being opened each month (SEBI Bulletin, 2021). This number is lower than the 8.21 million new demat accounts that were established in the September quarter. By the end of the year 2021, a record 30.8 million demat accounts had been opened, bringing the overall number of demat accounts in India to its highest-ever level of 80.6 million (SEBI Bulletin, 2021).

Evolution of Investment Platforms -

A non-professional investor who buys and sells securities or funds that hold securities, such as mutual funds and exchange traded funds, is known as a retail or small investor (ETFs). It's worth noting that retail investors have a significant impact on market behavior (Schmidt, 2010). With investors accounting for about 47 percent of India's working population, this industry is destined to dominate. Because 91 percent of investors prefer to manage their own money, there is a rising need for digital platforms that cater to this demographic (Ahluwalia, 2018). India's fintech industry has



created more than ten investment platforms for ordinary investors. Some Android applications have attracted the interest of this demographic, for instance, by providing an easy interface, rapid access to a variety of instructional information, and jargon-free in-app conversation. Users may invest using their app and website and track their investments without difficulty (Times of India, Article No. 10903029). Onboarding and Know Your Customer (KYC), which are often the most time-consuming components of investing, are reduced to minutes by these apps' automated workflows and many API interfaces. This eliminates the need to repeatedly enter the same information and makes the process quick and error-free. At each user interaction point, the investing platform depends on better machine learning algorithms to create a smooth experience. Customers are clearly segmented and steered through various user experiences based on their needs, with a heavy emphasis on customization. A first-time investor, for example, would have a different experience on these apps than someone who is tracking their external assets (Priyanka, R. (2020). Consumers are not swamped with content that is irrelevant to their needs, and they are given clear investment counsel, thanks to unique user experiences and customized communication. Many investor engagement procedures have been accelerated and optimized using these tactics.

Future Trend for Investments in India-

If current trends are any indication, investors are more interested in investing in equities than in any other asset class, with fintech apps and solutions as the preferred approach. Even within this demographic, a portion of investors are more interested in equity investments and stock markets. While 48 percent of older investors bought in stocks, only 4 percent of younger investors did so (Sahoo & Ashwani, 2020). This is due to two factors: the lower income of younger investors and their propensity to save less.

On August 31, 2019, the AMFI reported that the industry's assets under management

(AUM) was at \$357.8 billion and the total number of accounts stood at 85.3 million. Even if the number is increasing, there are still few young investors in this group (AMFI Data Sheet, 2019). This is the reason why entrepreneurs have set out to target this segment of the population. In order to provide ordinary investors with access to equity markets beyond mutual funds, a growing number of digital investment platforms are expanding into stock market investing. Investing applications seek to separate themselves from traders by catering to ordinary investors and stock market newcomers seeking long-term wealth building opportunities in the equity markets. By 2025, India's stock market capitalization might surpass \$5 trillion, propelling it into the top five internationally (Chikermane et al. 2021). On the basis of IPO prospectus filings and business announcements, a substantial number of firms are projected to be listed in the next 12 to 24 months (IPO Guide, 2021; (Outlook India Article No. 395283, 2021). Recent projections suggest that the market capitalization increase over the next three years will approach \$400 billion (Outlook India Article No.395283, 2021). Given the need for new economy enterprises, several of these companies have enormous market capitalizations and substantial liquidity. This may result in significant changes to the index composition and weights of local and foreign indexes. Consequently, India's weight in global indexes may expand.

Discussion-

A digital investment platform blends automated financial and business administration with human contact. Customers can save money and invest it in stocks, shares, and investment funds, allowing them to generate more money. Digital investment solutions reduce the cost of delivering financial services by automating, using AI, and substituting human decision-making with algorithms (Goodell et al. 2021). The Indian Government and public-private partnerships are developing and sharing a dizzying variety of creative, networked solutions to enhance digital



investing. Indian digitization revolution allowed new investors start investing with a bank account, disposable cash, and a smartphone (The Financial Express Article No. 88242, 2015). The government's digital approach is bringing technology to distant areas of the country. Creating a new regulatory environment and investing in research, technology, and entrepreneurship have helped India build cutting-edge technology and a fast-growing digital economy (Kaka, 2021). Digital investment is becoming sophisticated and easier. This was previously impossible. Investing a decade ago required lengthy paperwork, many bank visits, enormous lineups, and days-long application processing. Add lack of investment product knowledge and rampant miss selling by brokers and the experience would be a nightmare. The laborious procedure prevented many ordinary investors from equities market wealth-building potential.

Regulatory improvements have also enticed investment to public markets. The Securities and Exchange Board of India (SEBI) has relaxed several listing standards, simplifying the IGP listing procedure. Investment holding periods were decreased from two years to one year. Several guidelines and regulations have been revised or shortened to help new and small investors (Singh, 2021).

Investments aren't one-size-fits-all. Investing depends on a person's financial goals and return expectations. To address the vacuum and serve these consumers, fintech businesses and digital investing platforms have developed several possibilities. Many causes led to its rise. For example, the Association of Mutual Funds of India (AMFIMutual)'s Funds Sahi Hai campaign has helped raise awareness. Second, investing platforms have become more user-friendly, with beautiful UI/UX, fast onboarding, and rapid navigation (Narend&Thenmozhi, 2016).

Digital investing simplifies and makes investments more accessible. Previously, packaged or structured investment products had

opacity and hidden expenses. Interactive learning or investor education has also helped eliminate mutual fund misconceptions. Investors have benefited from bite-sized informative films on YouTube. The firm also invites industry experts to speak about investing, which engages clients.

Conclusion-

Digital platforms have been recognized as "revolutionary", "innovative", and at the same time "cost- effective" for the retail or small investors. The present study concludes the digital environment helped the small investorsto create economical literacy in investing. The easy availability of credible information and stock trading apps, are the main driving force for the investment. In addition, mobile devices and applications, cloud computing, and platforms based on artificial intelligence are the primary changes that have occurred in the method that small investors take to investing. We are of the opinion that the digital environment will continue to acquire more significance in regards to financial instruments such as investment.

Future Perspectives-

The readers of this article will be able to adopt the digital economic literacy regarding investment trends in the near future with the aid of this article. Help is also needed to grasp the significant role that the digital environment is playing in digital investment, and statistical data may be of great assistance in this regard.

References

1. Ahluwalia, H. (2018). Millennials to redefine India's consumption story : Report. Livemint. Doi: <https://www.livemint.com/Consumer/vj5e3v3uGyQR9K RwcvNBvN/Millennials-to-redefine-Indias-consumption-story-report.html>.
2. AMFI Data Sheet (2019). [https://www.amfiindia.com/indian-mutual CAMS Report \(2020\). http://www.cmlinks.com/pub/dp/dp47716.pdf](https://www.amfiindia.com/indian-mutual CAMS Report (2020). http://www.cmlinks.com/pub/dp/dp47716.pdf).
3. Cepal, N. U. (2021). Digital technologies for a new future.
4. Chakraborty, L. (2021). Union Budget 2021–22. *Economic & Political Weekly*, 56(9), 21.
5. Chikermane, G., Rai, R., & Sinha, R. (2021). INDIA AT \$5 TRILLION.



6. Deo, A. (2017). Telecom Industry in India: Evolution, Current Challenges & Future Road Map. *Indira Management Review*, 11(1), 92-105.
7. Evans, D. S., & Schmalensee, R. (2016). *Matchmakers: The new economics of multisided platforms*. Harvard Business Review Press.
8. Feyen, E., Frost, J., Gambacorta, L., Natarajan, H., & Saal, M. (2021). *BIS Papers*.
9. Goodell, J. W., Kumar, S., Lim, W. M., & Pattnaik, D. (2021). Artificial intelligence and machine learning in finance : Identifying foundations, themes, and research clusters from bibliometric analysis. *Journal of Behavioral and Experimental Finance*, 32, 100577.
10. IBEF Report, (2020). <https://www.ibef.org/download/Financial-Services-October-2020.pdf>.
11. IPO Guide, (2021). <https://www.investopedia.com/terms/i/ipo.asp>.
12. Kaka, N., Madgavkar, A., Ksihirsagar, A., Gupta, R., Manyika, J., Bahi, K., & Gupta, S. (2021). *Digital India: technology to transform a connected nation*. McKinsey Global Institute. 2019.
13. MeitY [Ministry of Electronics and Information Technology]. (2018). *India's trillion dollar digital opportunity*.
14. Narend, S., & Thenmozhi, M. (2016). What drives fund flows to index ETFs and mutual funds? A panel analysis of funds in India. *Decision*, 43(1), 17-30.
15. Outlook India Article No. 395283, (2021). <https://www.outlookindia.com/website/story/business-news-ipo-push-would-help-add-us400-bln-to-the-overall-market-capitalisation-over-the-next-three-years-goldman-sachs/395283>.
16. Priyanka, R. (2020). *Investment Through Mutual Fund*. Rana, S., & Haque, M. M. (2020). The Indian economy: Critical factors and constraints of economic development. *FIIB Business Review*, 9(4), 237-238.
17. Sahoo, P., & Ashwani. (2020). COVID-19 and Indian economy: Impact on growth, manufacturing, trade and MSME sector. *Global Business Review*, 21(5), 1159-1183.
18. Schmidt, N. (2010). What drives investments into mutual funds? Applying the theory of planned behaviour to individuals' willingness and intention to purchase mutual funds. In *Conference Proceeding*. Retrieved from <http://retailinvestmentconference.org>.
19. SEBI bulletin (2021) https://www.sebi.gov.in/sebi_data/commndocs/sep2021/word%20BulletinAugust%202021_p.docx.
20. Sharma, K. B. (2020). *Performance Analysis of Mutual Fund : A Comparative Study of the Selected Debt Mutual Fund Scheme in India*.
21. Singh, V. K. (2021). Policy and regulatory changes for a successful startup revolution: experiences from the startup action plan in India. In *Investment in Startups and Small Business Financing* (pp. 33-67).
22. The Financial Express Article No. 88242, 2015. <https://www.financialexpress.com/economy/public-private-partnerships-for-a-digital-india/88242>, TOI Article 10903029.
23. <https://timesofindia.indiatimes.com/business/india-business/tech-tools-to-track-your-investments/articleshow/10913029.cms>.
24. Veile, J. W., Schmidt, M. C., & Voigt, K. I. (2022). Toward a new era of cooperation: How industrial digital platforms transform business models in Industry 4.0. *Journal of Business Research*, 143, 387-405.
25. Verhoef, P. C., Broekhuizen, T., Bart, Y., Bhattacharya, A., Dong, J. Q., Fabian, N., & Haenlein, M. (2021). Digital transformation: A multidisciplinary reflection and research agenda. *Journal of Business Research*, 122, 889-901.



Public-Private Partnerships and Sustainable Development Issues in India

Abstract



- Alay Anand
Assistant Professor -
Department of Commerce,
S. S. P. S. College,
Sambhugunj, Banka-813211
(Bihar)

E-mail-
alayanand46@gmail.com

After getting independence in 1947, India started its new journey. Being a newly born democracy, there were so many challenges in front of Government for providing even basic minimum facilities to the citizens of India. There was a need of development in most of the sectors to make our country self sustainable and economically strong. From that time till today government is putting its efforts in evolving different approaches and new strategies for overall development of the country in different sectors.

Introduction -

Nowadays government is practising one model of development known as PPP (Public Private Partnerships). This is a model where government partners with the private companies for several projects. For completion of a particular project there are various types of requirements starting from land acquisition, clearance from various ministries, man power, procurement, designing, engineering and many more. It is very difficult for either Government or Private to manage all these requirements individually as a total in a best possible way. Each of these requires some expertise where either government or private companies may have edge over one another, for eg getting clearance from different ministries is a long time taking process for any private company and similarly quick procurement and engineering & technical know-how along with professional management may be challenging for government organisations. When these two shake hands, this creates a nice combination needed for successful completion of project.

As private sector, however prefers to limit the participation to financially attractive projects only, therefore this model of partnering with government also enables the investment in the areas which may not be eye-catching for private firms. By this model of PPP as responsibility and risk is shared between the both government and private firms, they have less reservations in going ahead for these projects. Now the need has arrived when these development projects should not only be assessed with the financial viability. These are needed to be looked from the view of sustainability in long term. Sustainable development means, that



interest of all the concern parties and stake-holders are properly understood and taken care. This should not have adverse effect on the poor people and the environment in future.

Areas where Indian government is working on this model are:

- ☛ Highways
- ☛ Railways
- ☛ ports
- ☛ Airports
- ☛ telecom
- ☛ Power

Sustainable Development

Concept-

“Sustainable development is development that meets the needs of the present without compromising the ability of future generations to meet their own needs.

Development projects are carried at many locations across India. As India is a vast country with lots of regional disparities, every region have their own advantages and challenges in order to make development, as long term sustainable development, Social, Environmental and Economical factors of that region are needed properly taken care during the entire process. This will lead the aim sustainable development.

Short advantages should not to long development process. This concept of development is multi-Dimensional in nature development process we need to assure that interest of the stakeholders the project protected. Stakeholders may direct/indirect, people, animals, other habitats ecological balances, geographical factors and many more. These all have interdependencies each removal of any one the cycle may lead long term problems living hot weather Rajasthan have different projects as feasible compared hilly areas of North East India power plants may not be possible hot Rajasthan but very well successful in Hilly areas and vice versa for Wind and Thermal energy.

Areas : Their Importance and Issues -

Let's examine few areas developmental projects and understand their importance and for being long sustainable.

Highways and Railways - Highways and Railways are known as economy as they provide

fast movement personal and private vehicles. As fact from to 2010 China has extended their railway network approximately 32,000 kms whereas India expended only 2,000 kms. Condition is so highways. For the highways railways most important factor the acquisition of land. The process of land acquisition of the most challenging one this acquired land, mostly agricultural land and land poor villagers. The challenge that development one infrastructure we compromise with other sector which agricultural. Here it very much important countermeasures well advance compensate the loss agricultural land. Further dislocation the natives needs be properly planned as they lose their regular source income and everyone may not so mature to convert his compensation in income. This may lead to great social unrest and problems society Similarly in India lots tribal regions. It government responsibly to assure that these tribes are able their precious social customs development of roads and industries should not result encroachment of their lands.

Power Generation – This the sector which responsible for supply of energy the Even after so many years Independence we not have sufficient electricity for These are villages which are still waiting for their turn to get chance to switch on light their house. This sector also important for industries as agricultural As on approximately 70% the electric generation is through thermal power These power dependent on burning of fossil fuel like coal, Gas and Oil. This burning the contributor generation greenhouse gases and eventually resulting environmental pollution and global warming WHO has mentioned that this air pollution globally responsible for approx. 7 million premature deaths annually so this cannot sustainable development any case and needs be dealt in seriously manner.

One the solution is use alternative sources of energy which environment friendly solar, nuclear and other renewable energy like hydro power. These sustainable in term and could help generating human friendly energy Again this



should sustainable for the long term like nuclear energy plants should be properly equipped with the safety to avoid any repetition Fukushima government has already made the plan percentage our energy from alternative and renewable sources from total energy generation.

Ports - Ports are the major contributors for export and import of goods. We know from history that since past thousands of years from the time of Kings and even at the ne offers sea was the most adopted way of travel and business. India is the biggest peninsula and has a sea coast line of around 7,500 Kms. This provides huge opportunity of sea and sea transportation, which is an important aspect of economic development. This is also good as it generates lots of employment opportunities at the port. The other most important factors that these ports provides new areas for the businessmen to sell their material out of India. This gives them chances to increase production and grow business more and more. Also this provides motivation for the new traders to start their business with other countries. Various government and private ports and needs more and more of them. Development of ports is a careful process as sea is a very important part of our eco system. It is very much important to keep the interest of local fishermen and sea habitats of that area that they are not much affected and properly relocated. We may also have some sea shores which may be heritage sites with lots of historical importance and needs to be given importance.

Telecom and Wireless Communication - Communication is the very important part in our day to day life. It is not possible to imagine our lives today without mobile phones and internet. Mobile phones are easily available not only in urban areas but also in most of the rural areas. This exponentially increasing demand and use of smart phone has made a great play area of competition between different telecom companies. This competition and advance technologies like 3G 4G etc. companies are in immense pressure to provide satisfactory services to the customer. All the telecom companies would like to provide the best

possible uninterrupted signals to their customers. For this region they need to install many numbers of towers. Again as we discussed earlier, the development of telecom sector should also be a sustainable development for the society. This should not take place without considering the factors like health etc. This development and technology can only be sustainable when we all are free from their harmful radiation. This could be possible by doing many ways like installing the towers away from the residential area where the public is not living under continuous effect of radiations. Secondly, high end research in the field of radiation and telecom should be supported by the government so that we may develop new technologies which may support in reducing radiations effect while distributing the signals. Similarly for the internet optical fiber lines are also good as compared to wireless signals but it has its own issues of using fibres etc. Which may not be so environment friendly.

We also need to be careful on few other issues like, deforestation, effect of industries and pollution on world heritage sites and historical monuments, migration from rural to urban areas and other issues. Forests are biggest source of oxygen which is mandatory for human beings survival. Similarly existence of wild life is important for the balance of our eco system. We need to be careful that our development projects should be sustainable enough on these points.

So from all these examples it is crystal clear that on one hand development is very much important but it should not happen unless and until it is sustainable for the long term.

Nature has defined a proper ecological cycles for all of us. We all as humans are part of this and flora, fauna, sea, desert, forests etc are equally important and equally responsible for maintaining the process defined by nature. Any human intervention which has not been given appropriate thinking and modifying any one module of it without evaluating its effect on others, may lead to disasters. We are already facing problems like global warming, Tsunami, environmental



pollution etc.

Recommendations and conclusions -

So from the above discussion, we can see that in order to survive for long term we need to put much emphasis on over all sustainable development process. These may take some more time in the initial phase but that will help in survival of mankind and environment in future.

Few Points which can help us in attaining this Goal are:

- ☛ There should be inclusion of local habitats while doing the feasibility study of the projects.

- ☛ We should also include the experts from educational and technical institutions who can suggest us the correct and honest view on different aspect.

- ☛ We should focus more and more in high-end advanced technologies. These technologies can help us in many ways to reduce pollution and environmental damages Government should have tie-ups with other developed countries for transfer of advanced technologies.

- ☛ We should make upfront rehabilitation and economical plans for the affected people, whose lands is being acquired.

- ☛ As we have already declared forest lands as prohibited lands, it should be ensured that forest area is intact and animals are not encroached by humans.

- ☛ Govt. Should look for alternative source of energy other than fossil fuels burning.

- ☛ For airpolluting factories and automobiles, government should work for advance air purifiers systems and catalytic convertors.

Few initiatives taken by the government in this regard :

- ☛ Government has planned to increase dependency on alternate energy sources up to 256 GW by 2020 which includes 80GW of wind energy.

- ☛ Government is discussion that in case of land acquisition, certain percentage of developed land will be given back to the owner for his

livelyhood.

- ☛ at few tribals areas govt has made a rule that tribal land can not be purchased by non tribals.

- ☛ Government is planning to develop a huge capacity of hydro power plants at north east and accordingly installing wind turbines at non productive land in Rajasthan.

- ☛ Recently government has made a pool of 100 countries for contribution and development of solar power.

- ☛ Government has decided to give tax advantages to Hybrid vehicles over conventional Diesel petrol vehicle as hybrid vehicles emits less CO, CO, and NOx These greenhouse gases are responsible for environmental pollution.

- ☛ In automobiles passenger car segment, government is planning for new emission norms of Bharat stage 5 (similar to Euro 5) and Bharat stage-6 (Similar to Euro 6) in year 2019 and 2023 Accordingly.

So the message is clear. Sustainable development is the need of today and could not be overlooked at any cost. Not it is the time to take the correct policy decisions, ensure effective planning and get it appropriately executed. This has now become unavoidable responsibility of the government which is no more optional.

To avoid destabilization of our planet, it is everyone's responsibility to understand the importance of sustainable development and think in that direction. Everyone has to make his own contribution and join hands together with the policy makers to help them in implementation towards a cleaner, greener and safer planet of today and tomorrow.

Readings

1. SIAM Automotive plan 2026
2. <http://www.pppinindia.com/pop.sectors.php>.
3. https://en.wikipedia.org/wiki/Electricity_sector_in_India.
4. <http://www.who.int/mediacentre/news/releases/2014/airpollution/en>.
5. http://www.awec.net/indias_ambitious_renewable_energy_plans! En [wikipedia.org/wiki/Sustainable_development](https://en.wikipedia.org/wiki/Sustainable_development).



राजा राममोहन द्वारा दिये गये योगदान



— राकेश कुमार वर्मा
असिस्टेन्ट प्रोफेसर — इतिहास
विभाग,
महाराजा मूल सिंह डिग्री कालेज,
लाखेरी, बूँदी—323615 (राजस्थान)

ई-मेल:

rkvermakarwar@gmail.com

सारांश

राजा राममोहन प्रत्येक क्षेत्र में स्वशासन के अधिकार और स्वतंत्रता संग्राम के प्रति खुले रूप में सहानुभूति जताते थे। बंकिंघम साहब को लिखे एक पत्र में उन्होंने स्वाधीनता के शत्रु (Enemies of Liberty) और तानाशाही के समर्थकों (Friends of Despotism) के प्रति अपनी तीव्र घृणा और भविष्य में मानव मुक्ति के संघर्ष में अन्तिम विजय में पूरा विश्वास प्रकट किया था। अपने देश के मामले में श्री राम मोहन विदेशी शासन मुक्त स्वतंत्र भारत की कल्पना पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान, अंग्रेजी शिक्षा, कल-कारखानों सम्भव नहीं, वे इस सिद्धान्त के पक्षपाती थे लेकिन उनकी कल्पना में पराधीन भारत की संभावित समय सीमा पचास वर्ष से अधिक नहीं थी। राष्ट्रीय स्तर पर वे प्रजातंत्र में ही विश्वास रखते थे।

हम पुर्नजागरण काल में राम मोहन द्वारा दिये गये योगदान का वर्णन करेंगे। जैसा कि हम सब जानते हैं कि राम मोहन का जन्म भारतीय इतिहास के उस सक्रांति काल में हुआ था जब एक ओर अंधकार व्याप्त था और दूसरी ओर अंग्रेजों और यूरोपीय व्यापारियों के माध्यम से पश्चिमी ज्ञान की पहली किरण का देश में आना आरम्भ हुआ था। राजनैतिक भारत सैकड़ों टुकड़ों में बंटा था। ऐसी स्थिति में राम मोहन ने अपनी योग्यता और विचारों से भारत में एक नवीन युग का सूत्रपात किया जिसे हम नवजागरण या पुर्नजागरण के नाम से जानते हैं।

नव जागरणा या रेनासॉ का परिभाषित अर्थ है प्राचीन ज्ञान और संस्कृति को नये वातावरण और काल के परिप्रेक्ष्य में भविष्य के लिये परिवर्तित या रूपायित करना। एक नयी चेतना के आधार पर ऐसा भविष्य का निर्माण जिसमें मानव के विचार शक्ति की सम्भावनाओं पर पूरी आस्था रखी जाय। इसके द्वारा मानव समाज की वैचारिक दृष्टि का अनुकूल आदर्शों के अनुरूप उदार और बौद्धिक आधार दिया जाता है। नवजागरण का प्रारम्भ समस्त विश्व में अलग-अलग समय में हुआ। वस्तुतः भारत में नवजागरण का काल अठारवीं शताब्दी के मध्य से आरम्भ होकर बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक माना जाता है। भारत में नवजागरण की लहर बंगाल से मानी जाती है। इसका एक प्रमुख उपकरण है जिसमें नवजागरण की भावना को भारतीय स्वरूप प्रदान किया था। राम मोहन का इस आन्दोलन में शामिल होना राम मोहन के विचारों और लेखों से यह स्पष्ट है कि वे अपने भीतर भारतीय नवजागरण के बीज को पल्लवित कर रहे थे। राम मोहन ने एक बार पादरी एलेक्जेंडर डफ से कहा था मुझे लगता है कि यूरोपीय रेनासॉ के समानान्तर कुछ भारत में भी घटित हो रहा है।



वे 'आधुनिक भारत के निर्माता' तथा 'नवोत्थान और नवयुग के अग्रदूत' थे। उनकी जीवनी लेखिका मिस कोलेट के अनुसार— "इतिहास में राजा राममोहन राय ऐसे जीवित पुल के सामान हैं जिस पर भारत अपने अपरिमित भूतकाल से अपरिमित भविष्य की ओर चलता है। वे एक ऐसे वृत्तखण्ड थे जो प्राचीन जातिवाद और अर्वाचीन मानवता, अन्धविश्वास तथा विज्ञान अनियन्त्रित सत्ता और प्रजातन्त्र, स्थिर रिवाज और अनुदार विचार के बीच को ढोए हुये थे।"

1815 में राम मोहन जब कलकत्ता आकर बस गये और उन्होंने अपना सार्वजनिक कार्यक्रम आरम्भ किया तो उसमें पहला था, वेदान्त का बंगला और अंग्रेजी अनुवाद। स्पष्ट है कि वे भारतीय धर्म और संस्कृति के शाश्वत मूल्यों के बारे में पूरी तरह सचेत और वचनबद्ध थे उन्होंने पश्चिमी संस्कृति और ईसाई धर्म दोनों को अच्छी तरह समझा था लेकिन विदेशी संस्कृति और ईसाई धर्म दोनों की चकाचौंध और लालच से वे बचते रहे और अपनी शक्ति देश की धार्मिक और सामाजिक मूल्यों की व्याख्या और पुनर्मूल्यांकन में लगाया। उन्होंने एक ओर श्रीरामपुर मिशन में पादरियों के हिन्दू धर्म विरोधी प्रचार का डटकर मुकाबला किया तो दूसरी ओर रूढ़िवादी संकीर्णता के विरुद्ध अपने पण्डों और पुरोहित के विरुद्ध भी शत-शत संघर्ष चलाते रहे। नतीजा यह हुआ कि एक ओर यूरोपीय वर्ग उनका विरोधी बना तो दूसरी ओर देश का प्रतिष्ठित वर्ग भी उनका विरोधी बन गया।

राम मोहन ने सबसे पहले वेदान्त सूत्र, वेदान्त सार, कठोपनिषद, केनोपनिषद, मुण्डकोपनिषद आदि का बंगला और अंग्रेजी में अनुवाद किया। पौराणिक कहानियों और धार्मिक संकीर्णता के दलदल में फंसे हिन्दू धर्म को पुनर्जीवित करने का बीड़ा राम मोहन ने उठया। वे एक ओर हिन्दू धर्म के पण्डों और ठेकेदारों से मोर्चा ले रहे थे तो दूसरी ओर ईसाई मिशनरियों के साथ। ईसाईयों के इस झूठे प्रचार के विरुद्ध कि भारत के लोग सिर्फ मूर्ति पूजक और पाखण्डी हैं, राम मोहन ने उपनिषद के अद्वैतवाद और वैदिक एकेश्वरवाद की श्रेष्ठता को प्रमाणित किया। ईसाई धर्म के 'त्रित्ववाद' के विरुद्ध भी उन्होंने श्रीरामपुर बेपिटस्ट मिशन के पादरियों से बराबर तर्क युद्ध करते रहे। ईसाई धर्म में प्रचलित पाखण्डों के विरुद्ध भी उस समय में जब ईसाई धर्म राजधर्म था, खुले तौर पर आलोचना करने का साहस केवल राम मोहन में ही था। इस तर्क युद्ध में बड़े-बड़े महारथियों को परास्त किया। लेकिन साथ ही

ईसा मसीह के उपदेशों और नीति वाक्यों को उन्होंने आदर किया स्वयं संकलन प्रकाशित किया यही नहीं इस्लाम के निराकर एकेश्वरवाद और सूफीवादी उदारता को भी देश के सामने रखा। इस प्रकार केवल भारत में ही नहीं शायद विश्व में वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने तीनों धर्मों के तुलनात्मक विवेचन की ओर ध्यान दिया।

केवल धर्म के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि देश की राष्ट्रीय धारा में उनकी देन आसाधारण मानी जायेगी।

प्रेस की स्वाधीनता व भाषण की स्वतंत्रता के लिये भी राम मोहन ने भारी संघर्ष छेड़ा था। जैसा कि हम सब जानते हैं कि आधुनिक भारत के नवजागरण के इतिहास के साथ प्रेस की स्थापना और पत्रकारिता का गहरा सम्बन्ध रहा है। जनसंचार के इन माध्यमों के महत्व को राम मोहन अच्छी तरह समझते थे। देशी पत्रकारिता के क्षेत्र में राम मोहन अगुआ थे और शायद पहले व्यक्ति थे जिन्होंने स्वाधीनता के लिये अपने युग में सबसे पहले आन्दोलन आरम्भ किया था। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में इन घटनाओं का जायजा लेने के लिए ब्रिटिश भारत की राजधानी कलकत्ता में पत्रकारिता व प्रेस के विकास के इतिहास देखना होगा।

वारेन हेस्टिंग्स के शासनकाल के अन्त तक कलकत्ता में कुछ छापेखाने स्थापित हो चुके थे। सन् 1779 में कलकत्ता में सरकारी प्रेस की स्थापना हुई। जेम्स आंगस्टस ने 29 जनवरी 1780 को "बंगाल गजट" के नाम से एक साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। पत्रिका के उद्देश्यों का ब्यौरा इस प्रकार था— "A weekly political and commercial paper open to all parties but influenced by none."

लेकिन इस पत्रिका का प्रकाशन अधिक समय तक न हो सका और वर्ष भर में ही सरकारी आदेशानुसार इसका वितरण बंद कर दिया गया और 1782 के मार्च में हिकी का छापाखाना जब्त कर लिया गया। इस प्रकार भारत के पहले अंग्रेजी पत्रिका की अकाल मृत्यु हो गयी। अठारहवीं शती के अंतिम चरण में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने जब पाँव जमाना आरम्भ किया उसी समय कलकत्ता में "कैलकटा गजट" 1784, बंगाल जर्नल 1785 "ओरियंटल मैगजीन" 1785, कैलकटा क्रानिकल 1786, थे। इसके अतिरिक्त मुम्बई व मद्रास में भी कई पत्र पत्रिकायें प्रकाशित हुईं।

1799 से पहले तक ब्रिटिश भारत में प्रेस सम्बन्धी कोई विशेष कानून नहीं था। लार्ड बेलेजली 1798 में भारत के गर्वनर जनरल बनाकर आये वेलेजली का मुख्य मंत्र था कठोर शासन अतः उससे प्रेस के प्रति उदार नीति को



अपनाये जाने की आशा करना मूर्खतापूर्ण था। यद्यपि उस समय प्रेस के नाम पर अंग्रेजी पत्र पत्रिकायें थीं और उनका स्वामित्व मुख्यतः अंग्रेजों व यूरोपियों के हाथ में था फिर भी कम्पनी के अधिकारी महसूस करने लगे थे कि प्रेस में ऐसे समाचार या लेख प्रकाशित न होते रहें जो ब्रिटिश स्वार्थों के प्रतिकूल हों। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये बेलजली ने 1799 में पहला कुख्यात प्रेस "रेगुलेशन जारी किया इस कानून के अन्तर्गत आवश्यकता पड़ने पर अपराधी सम्पादक को निर्वासित कर देने का प्रावधान था।"

लार्ड मिन्टो के समय में समाचार पत्र सरकारी आदेशों का ही पालन कर रहे थे। इसके बाद 1814 में लार्ड हेस्टिंग्स जब गर्वनर जनरल के पद पर आसीन हुए तो उन्होंने प्रेस रेगुलेशन को किसी सीमा तक सुधारने का प्रयास किया। 19 अप्रैल, 1818 को प्रेस पर सेंसर समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार प्रेस कानून की कठोरता किसी सीमा तक कम हो गई। प्रेस सम्बन्धी इस उदार नीति के काल में पत्रकारिता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण घटना थी, देशी पत्रकारिता का जन्म। 1818 में 15 मई में श्री हरचन्द्र राय ने "बंगाल गजेट" नाम की एक साप्ताहिक पत्रिका प्रकाशित की। हरचन्द्र राय राममोहन की सभा के सदस्य थे। यह पत्रिका अधिक समय तक न चल सकी। इसका महत्व केवल इतना था कि यह पहली देशी पत्रिका थी जिसका संचालन भी देशी लोगों के द्वारा किया गया था।

सन् 1815 में जब राम मोहन कलकत्ता आकर बसे उस समय देश और शासन की स्थिति इतनी उदार नहीं थी और पत्रकारिता की ओर झुकने में वहाँ काफी असुविधायें थी राम मोहन का स्वाभिमान इतना प्रखर था कि सरकारी नियमों का पालन करके पत्रिका सम्पादन करना उनके लिये कठिन था, फिर भी उन्होंने अपने विचारों को व्यक्त करने के लिये 4 दिसम्बर, 1821 को "संवाद कौमुदी" का प्रकाशन आरम्भ किया। उस समय के प्रगतिशील और शिक्षित हिन्दू इस पत्रिका के माध्यम से देश सुधार के काम में जुट गये। सिर्फ यही पत्रिका नहीं इसके बाद 1822, में फारसी भाषा की पत्रिका 'मिरात-उल-अखबार' प्रकाशन आरम्भ किया।

लार्ड हेस्टिंग्स की उदार नीति से कम्पनी के डायरेक्टर्स प्रसन्न नहीं थे ज्यों ही उसका कार्यकाल समाप्त हुआ और एडम साहब कार्यवाहक गर्वनर जनरल बने तो उन्होंने तत्काल ही प्रेस की स्वतंत्रता को समाप्त करने की दिशा में कदम उठाया। पहला हमला 'कैलकटा जनरल' पर हुआ इसी अध्यादेश के विरोध में राम मोहन ने

'मिरात-उल-अखबार' का प्रकाशन बन्द कर दिया।

1823 के प्रेस अर्डिनेंस के अन्तर्गत जारी किये अध्यादेश के अनुसार किसी भी दैनिक, साप्ताहिक अथवा किसी भी पत्रिका को कलकत्ता शहर में पुलिस के दफ्तर में हलफनामा पेश किये बिना, तथा चीफ सक्लेटरी से लाइसेंस प्राप्त किये बिना, प्रकाशित करने की अनुमति नहीं थी। यह लाइसेंस भी सरकार जब चाहे तब वापस ले सकती थी। इस अर्डिनेंस के द्वारा प्रेस की स्वतंत्रता का गला पूरी तरह घोंट दिया गया। राम मोहन व उनके साथियों ने इस अर्डिनेंस के विरुद्ध आवाज उठाने का निश्चय किया। कानून के पारित होने से पहले बीस दिन का अन्तरिम समय दिया जाता है। जब समय सीमा पार हो चुकी तो शीघ्रता में एक स्मरण पत्र सुप्रीम कोर्ट में दाखिल कर दिया गया। यह स्मरण पत्र भाषा शैली और दलील की दृष्टि से महत्वपूर्ण दस्तावेज है। यह स्मरण पत्र जज के आदेश से रजिस्ट्रार द्वारा पढ़ा गया लेकिन न्यायधीश ने निर्णय देते समय स्मरण पत्र की पूरी तरह अनदेखी कर दी क्योंकि वे भी कम्पनी के शासन तंत्र का एक हिस्सा थे। सुप्रीम कोर्ट द्वारा स्मरण पत्र के टुकरा दिये जाने पर राम मोहन व उनके साथियों ने इंग्लैंड के सम्राट के पास अपील भेजी। राम मोहन ने पत्र पत्रिकाओं पर लगाये गये प्रतिबन्धों के बारे में तीव्र समीक्षा की उन्होंने कहा यह प्रतिबन्ध कतई अनावश्यक है इससे केवल न्याय के स्वभाविक संचालन में ही बाधा पैदा होगी और न्यायपालिका और प्रशासनिक अधिकारों का एक ही अधिकारी के हाथों में एकत्रित होना नागरिक अधिकारों का नष्ट कर देगा नये कानून का उद्देश्य केवल इतना ही लगा है— "To afford Government and all its functionaries from the highest to the lowest anything done by them in their official capacity, however desirable it might be that the public conduct of such public men should not be allowed to pass unnoticed."

उन्होंने आगे लिखा कि जिस प्रकार यह अधिनियम पारित किया गया है उससे केवल प्रेस की स्वाधीनता ही नहीं बल्कि ब्रिटिश संसद के कानूनी सुरक्षा के अधिकार से भी हम वंचित होंगे। राम मोहन ने आगे दलील पेश करते हुये कहा कि जनता की शिकायत का समुचित प्रकाशन और उसके द्वारा शिकायतें दूर करने से विद्रोह रोके जा सकते हैं। इस अपील में पेश किये गये तर्क और विचार आज के युग और आधुनिक सरकार के लिये भी उतनी ही प्रासंगिक हैं, जितने उस युग में थे।



इस प्रकार की राम मोहन की अपील का बौद्धिक समाज व सरकारी हल्कों में स्वागत तो अवश्य हुआ परन्तु इसका कोई लाभ नहीं हुआ और स्थित ज्यों की त्यों बनी रही। परन्तु जब एडम के बाद लार्ड एमहर्स्ट गर्वनर जनरल के पद पर आये उन्होंने धीरे-धीरे प्रेस कानून को ढील दे दी और बेंटिक के जमाने में आधिकतर समाचार पत्र प्रायः स्वाधीन हो गये थे। मेटकांफ के जमाने में 1823 के कानून की जगह एक नया प्रेस विधेयक 1835 में पारित हुआ। यद्यपि इस समय राम मोहन जीवित न थे परन्तु फिर भी उन्होंने प्रेस की स्वतंत्रता के लिये जो संघर्ष किया उसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। प्रेस की स्वाधीनता के लिये किये गये संघर्ष में उनकी भूमिका की याद में 9 फरवरी, 1938 को उनकी मृत्यु के कई वर्ष बाद एक स्मृति सभा का आयोजन किया गया था जिसमें प्रसन्न कुमार ठाकुर और द्वारकानाथ ठाकुर ने भाव भीनी श्रद्धालजि पेश की थी। वही एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने प्रेस व भाषण की स्वाधीनता के लिये आन्दोलन के प्रारम्भ किया।

केवल प्रेस व भाषा की स्वतंत्रता के लिए ही नहीं वरन् भारत में राजनैतिक चेतना का प्रारम्भ करने में भी राम मोहन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। राजनैतिक स्तर पर राम मोहन के सामने दो प्रमुख स्थितियाँ थीं एक ओर जहाँ मुगल साम्राज्य का सूर्यास्त हो रहा था वही दूसरी ओर भारत में अंग्रेजी शासन की नींव पड़ चुकी थी। देश की ऐसी राजनैतिक स्थिति में देश में “राष्ट्रीयता” की एक नयी परिभाषा का जन्म हो रहा था इस संक्रतिकाल में देश को राजनीतिक स्थिरता देने और वैचारिक स्तर पर आधुनिकता के दरवाजें पर लाने में राम मोहन ने जो कुछ भी किया वह एतिहासिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है।

राम मोहन के लिये राजनैतिक मुक्ति की परिभाषा कुछ अधिक गहरी और व्यापक थी। इस परिभाषा में देश, जाति या सम्प्रदाय की सीमा रेखा का हस्ताक्षेप नहीं था व उस काल के प्रगतिशील और उदारवादी पश्चिमी विचार धाराओं ने राम मोहन को भी प्रभावित किया था। इसके अतिरिक्त फ्रांस, स्पेन और अमेरिका के विद्रोह या क्रांति का प्रभाव भी राम मोहन के विचार मानस पर पड़ा।

पाश्चात्य विचारधारा के एक और मूलतत्त्व जिसने राम मोहन की विचार धारा का प्रभावित किया था, वह था स्वाधीनता “लिबर्टी” का आदेश। “स्वाधनीता” राम मोहन के लिये कोई नारा या कोरा सिद्धान्त नहीं था। इस प्रत्यय का उनकी आन्तरिक प्रेरणा से सम्बन्ध था। उनके मित्र एमडम साहब के शब्दों में— “He would be free or not

be at all..... love to freedom was perhaps the strongest passion of his soul freedom not of action merely, but of through.”

तत्कालीन विचारों के द्वारा राम मोहन प्रत्येक क्षेत्र में स्वशासन के अधिकार और स्वतंत्रता संग्राम के प्रति खुले रूप में सहानुभूति जताते थे बंकिधम साहब को लिखे एक पत्र में उन्होंने स्वाधीनता के शत्रु (Enemies of Liberty) और तानाशाही के समर्थकों (Friends of Despotism) के प्रति अपनी तीव्र घृणा और भविष्य में मानव मुक्ति के संघर्ष में अन्तिम विजय में पूरा विश्वास प्रकट किया था। अपने देश के मामले में श्री राम मोहन विदेशी शासन मुक्त स्वतंत्र भारत की कल्पना पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान, अंग्रेजी शिक्षा, कल-कारखानों सम्भव नहीं, वे इस सिद्धान्त के पक्षपाती थे लेकिन उनकी कल्पना में पराधीन भारत की संभावित समय सीमा पचास वर्ष से अधिक नहीं थी। राष्ट्रीय स्तर पर वे प्रजातंत्र में ही विश्वास रखते थे।

राम मोहन की राजनैतिक विचारधारा, उनके धार्मिक विचारधारा में निहित, उपनिषदों में वर्णित मानव के शाश्वत और स्वच्छन्द स्वरूप पर आधारित है, उनके धार्मिक, सामाजिक सुधारवाद और राजनैतिक आन्दोलन के बीच गहरा सम्बन्ध रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. विश्वास: राम मोहन समीक्षा, पृष्ठ 320-321
2. पारिख एवं दही भाते : भारत सामाजिक आर्थिक संरचना एवं संस्कृति के तत्व, पृष्ठ 93
3. कांफ, ब्रिटिश ओरियंटलिज्म एण्ड बंगाल रेनासा : पृष्ठ 199
4. मुखोपाध्याय : राम मोहन और तत्कालीन समाज और साहित्य (बंगला), पृष्ठ 108
5. वही, पृष्ठ 109
6. नटराजन एस. ए. हिस्ट्री आफ पेपर इन इण्डिया : पृष्ठ 16
7. नटराजन एस. ए. हिस्ट्री आफ पेपर इन इण्डिया : पृष्ठ 19-20
8. नटराजन एस. ए. हिस्ट्री आफ पेपर इन इण्डिया : पृष्ठ 23
9. मुखोपाध्याय : राम मोहन आ तत्कालीन समाज और साहित्य, पृष्ठ 128
10. मुखोपाध्याय : पृष्ठ 128
11. नटराजन एस. ए. हिस्ट्री आफ पेपर इन इण्डिया : पृष्ठ 129
12. कोलेट : द लाइफ एण्डलैटर्स ऑफ राज राम मोहन राय
13. सेन, अमिया कुमार : राज राम मोहन राय: द रिप्रेसेन्टेटिव मैन कैलकटा, पृष्ठ 118
14. डब्लू. ऐडम ए लैक्चर आन द लाइफ एण्ड लेबर ऑफ राम मोहन राय : द्वितीय संस्करण, कलकत्ता (1977), पृष्ठ 16-17
15. कोलेट : राम मोहन राय, पृष्ठ 130-131
16. क्राफोर्ड : राम मोहन राय, पृष्ठ 118।



प्लेटो के दार्शनिक एवं शैक्षिक विचार



सारांश

— डॉ. रवेन्द्र राजपूत
एसोसिएट प्रोफेसर —
शिक्षक-शिक्षा विभाग,
श्री वाष्णोय महाविद्यालय,
अलीगढ़-202001 (उत्तर प्रदेश)

ई-मेल:

ravendrarajput@hotmail.com

चारों ओर अन्धकार छाया हुआ था, जनमानस में रूढ़िवादिता व अवगुणों का बोलबाला था ऐसे समय में यूनान की एथेन्स नगरी में प्रकाश स्तम्भ लेकर अवतरित हुए, विश्व के श्रेष्ठ दार्शनिक व शिक्षाशास्त्री जो गुरु शिष्य की अटूट परम्परा से भी जुड़े हुए थे, ये थे सुकरात उनके शिष्य प्लेटो और उनके शिष्य अरस्तू। इन विलक्षण ज्ञान की प्रतिमूर्तियों ने हर दृष्टिकोण से जनता को दिखाई ज्ञान की डगर और त्यागने के लिए मजदूर किया अपने दुर्व्यसनों को। इसी श्रृंखला में शामिल हैं विश्व के श्रेष्ठ दार्शनिक व शिक्षा शास्त्री "प्लेटो"।

जीवन की झलक (Glimpse of Life)-

महान दार्शनिक, राजनीतिज्ञ, गणितज्ञ, समाज सुधारक एवं शिक्षा शास्त्री-प्लेटो का जन्म 427 ई. पू. एथेन्स में हुआ था। ये एथेन्स के एक कुलीन परिवार से सम्बन्ध रखते थे। इनका नाम "एरिस्टोकिल्स" था, बाद में वह अपने प्यार के नाम "प्लेटो" के नाम से विख्यात हुए। वह एक कुशल खिलाड़ी तथा सिपाही थे। साहित्य में भी उनकी पर्याप्त रुचि थी। बचपन में ही इन्होंने ग्रीक साहित्यकारों की कविताओं का अध्ययन कर लिया था और स्वयं भी बहुत सी सुन्दर कवितायें भी लिखीं।

बीस वर्ष की अवस्था में आप सुकरात के सम्पर्क में आये और 8 वर्ष तक उनके सानिध्य में ज्ञानार्जन किया। सुकरात की दर्दनाक हृदय को दहला देने वाली मृत्यु से ये अत्यन्त क्षुब्ध हुए। उनके मित्रों ने उन्हें सलाह दी कि एथेन्स में उनका जीवन सुरक्षित नहीं है तो उन्होंने 399 ई. पू. में एक लम्बी यात्रा करने के लिए अपना देश छोड़ दिया। इस लम्बी अवधि में प्लेटो ने मिस्र, सिसली, मेगारा, इटली आदि देशों की यात्रायें कीं। और इस काल में अध्ययन, मनन, चिन्तन, लेखन जारी रखा। इस यात्रा के बाद आप स्वदेश लौट आये और वहाँ 387 ई. पू. में अकादमी की स्थापना की और यहाँ मृत्युपर्यन्त अध्यापन कार्य करते रहे। अकादमी का द्वार स्त्रीपुरुष सभी के लिए खुला हुआ था। इस संस्था में आपने लेखन कार्य भी किया। 347 ई. पू. में 80 वर्ष की अवस्था में इनकी मृत्यु हो गई।

प्लेटो की रचनायें—

प्लेटो ने अपने जीवन काल में 36 ग्रन्थों की रचना की। उनमें से प्रमुख निम्न हैं:

- | | |
|-----------------|------------|
| 1. एपोलॉजी | 2. क्राइटो |
| 3. सिम्पोजियम | 4. फीडो |
| 5. रिपब्लिक एवं | 6. दी लॉज। |

प्लेटो के शैक्षिक विचार 'रिपब्लिक' तथा 'दी लॉज' नामक ग्रन्थों



में प्राप्त होते हैं। उनके शैक्षिक विचारों पर सुकरात, सोफिस्टों, स्पार्टा की शिक्षा प्रणाली तथा एथेन्स की तत्कालीन परिस्थितियों का विशेष प्रभाव पड़ा।

प्लेटो के दार्शनिक विचार

(The Philosophical Views of Plato)-

प्लेटो के शैक्षिक विचार उनके दार्शनिक विचारों पर आधारित हैं। उनके दार्शनिक विचार निम्नांकित हैं—

1. **प्लेटो का आदर्शवाद** — प्लेटो एक आदर्शवादी दार्शनिक हैं उनके अनुसार — “विचार ही सत्य एवं अन्तिम वास्तविकता है।” उनके अनुसार ‘प्रत्यय’ (Idea) का अर्थ उस विचार से नहीं है जिसका अस्तित्व मस्तिष्क में होता है, क्योंकि इस प्रकार का विचार अस्थायी होता है तथा बाह्य जगत् की किसी भी घटना के समान क्षणभंगुर होता है। उनके अनुसार प्रत्यय (विचार) शाश्वत एवं निरपेक्ष है और वास्तविकता की दैवी व्यवस्था का निर्माण करते हैं। विचार वे स्वरूप है जिनमें “शिव का सर्वोच्च विचार” (Supreme Idea of God) स्वयं को अभिव्यक्त करता है। विचार वे स्वरूप हैं जो किसी सुन्दर वस्तु की सुन्दरता का निर्माण करते हैं, उनको जाना जा सकता है, उनको सोचा जा सकता है उनको अमूर्त अस्तित्व से याद किया जा सकता है, उनको अन्तर्दृष्टि के कार्यों के माध्यम से प्रेम किया जा सकता है। इस प्रकार प्लेटो, सत्यं, शिवं तथा सुन्दरम् को निरपेक्ष विचार मानता है जिनका अस्तित्व स्वयं के लिए है। वह इनको परमात्मा के गुण मानता है। अतः प्लेटो का आदर्शवाद निरपेक्ष विचारों पर आधारित है। जैसा कि मेक्सी लिखते हैं— “प्लेटो आदर्शवादियों, भावुकतावादियों, क्रान्तिकारियों तथा राजनीतिक दर्शन के स्वप्न दर्शी दार्शनिकों का पिता है। जो प्राचीन के लिए नवीन विश्व में आस्था रखते हैं वे समस्त प्लेटो के आदर्शवादी शिष्य हैं।”

2. **प्लेटो के जगत् सम्बन्धी विचार** — प्लेटो के आदर्शवाद की दूसरी विशेषता है— दो जगत् में उसका विश्वास :

प्रथम — विचारों का जगत् तथा

द्वितीय — वस्तुओं का जगत् ।

(i) **विचारों का जगत्** — प्लेटो के अनुसार विचारों का जगत् स्थायी, शाश्वत, स्थान रहित तथा अपरिवर्तित है। यह मन व सूक्ष्म विचार का जगत् है। यही सत्य एवं वास्तविक जगत् है जो पूर्ण एवं भौतिक वस्तुओं से अलग है।

(ii) **वस्तु जगत्** — प्लेटो कहते हैं कि— “वस्तुओं का जगत् अस्थायी, नश्वर एवं परिवर्तनशील होता है।” विचार का आधार पाकर ही पार्थिव या भौतिक जगत् की वस्तुओं का अस्तित्व होता है। प्लेटो इस संसार को जल के समान मानते हैं।

3. **प्लेटो के आत्मा सम्बन्धी विचार** — प्लेटो की आत्मा की अमरता तथा शाश्वतता में आस्था है। उसका मानना है कि आत्मा शरीर में आने से पूर्व भी अपना अस्तित्व रखती है, वह शरीर में आने से पूर्व ज्ञानयुक्त भी होती है। इसीलिए प्लेटो ने शिक्षा का लक्ष्य—नेत्र को उस प्रकाश की ओर घुमा देना बतलाया है जो आत्मा को पहले से ही प्राप्त है। प्लेटो का विचार है कि जो व्यक्ति दुष्कर्म करते हैं वे मृत्यु के बाद कटोर दण्ड भोगते हैं। इस प्रकार प्लेटो पुनर्जन्म के सिद्धान्त में भी विश्वास रखते हैं।

प्लेटो ने आत्मा के तीन रूप बताये हैं— (i) तृष्णा, (ii) संकल्प, एवं (iii) विवेक।

प्लेटो का मत है कि आत्मा के ये तीनों अंग संगठित होकर कार्य करते हैं तब मनुष्य न्याय पूर्ण जीवन व्यतीत करता है। प्लेटो के अनुसार विवेकमय जीवन की मनुष्य के लिए सर्वश्रेष्ठ है और वह इस प्रकार का जीवन व्यतीत करके आदर्श अवस्था की प्राप्ति कर सकता है।

4. **प्लेटो का ज्ञान सिद्धान्त**— प्लेटो ने ज्ञान के तीन रूप बतलाये हैं—

1. वह ज्ञान जो इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होता है, यह ज्ञान सत्य नहीं है क्योंकि इन्द्रियों ही सत्य नहीं है।

2. वह ज्ञान जो वस्तुओं के विषय में मतों या सम्मतियों द्वारा प्राप्त होता है। यह ज्ञान भी सत्य व नैसर्गिक नहीं है।

3. वह ज्ञान जो सत्य व नैसर्गिक है ये मन या विवेक में निहित होता है।

प्लेटो ने इसकी व्याख्या करते हुए बताया कि आत्मा पहले के जीवन में समस्त वस्तुओं को ज्ञात कर चुकी है और जो हम सीखते हैं वह तो केवल उस जीवन का स्मरणमात्र है। वस्तु तो एक संकेत देती है और आत्मा स्वयं उस संकेत के प्रति प्रतिक्रिया करती है।

प्लेटो का शिक्षा दर्शन —

प्लेटो ने शिक्षा को बहुत महत्ता प्रदान की है। इसीलिए उनकी समस्त वृत्तियों में शिक्षा की समस्या महत्वपूर्ण स्थान रखती है। प्लेटो के लिए “शिक्षा एक महान वस्तु थी।” उन्होंने अपने ग्रन्थ ‘दी लॉज’ में लिखा है



— “शिक्षा प्रथम तथा श्रेष्ठ वस्तु है जिसे सर्वोत्तम मनुष्य ही प्राप्त कर सकते हैं।”

शिक्षा का अर्थ —

प्लेटो के अनुसार शिक्षा — नैतिक प्रशिक्षण की एक प्रक्रिया है। शिक्षा द्वारा चार सद्गुणों बुद्धिमत्ता, साहस, संयम तथा न्याय का विकास किया जाता है। प्लेटो ने इन सद्गुणों को प्रकाशित करने की प्रक्रिया को ही शिक्षा माना है। स्वयं उसने अपनी पुस्तक “लॉज” में लिखा है:—

“शिक्षा से मेरा अभिप्राय उस प्रशिक्षण से है जो बालकों में उचित आदतों के निर्माण द्वारा सद्गुण की प्रथम प्रवृत्तियाँ उत्पन्न करता है। यह प्रशिक्षण हमें वह योग्यता प्रदान करता है जिससे हम उस वस्तु से प्रेम करें जिससे वस्तुतः प्रेम करना चाहिए। मेरी दृष्टि से यही सच्ची शिक्षा है।”

प्लेटो ने अपने ग्रन्थ ‘रिपब्लिक’ में लिखा है— “मैं उस शिक्षा के विषय में बता रहा हूँ जो मनुष्य की स्वतः ही नागरिकता के पूर्ण आदर्श को क्रियान्वित करने तथा शासन एवं आज्ञा पालन करने की भावना का विकास करती है। यही वास्तविक शिक्षा है। जो प्रशिक्षण सम्पत्ति या शारीरिक शक्ति या बुद्धिमत्ता एवं न्याय से पृथक केवल चतुराई के संग्रह पर बल देता है वह तुच्छ तथा अनुदार है और उसको किसी भी रूप में शिक्षा नहीं कहा जा सकता है। जो मनुष्य उचित प्रकार से शिक्षित होते हैं, वे अच्छे मनुष्य हो जाते हैं।”

शिक्षा के उद्देश्य तथा कार्य —

प्लेटो का कथन है — “शिक्षा का उद्देश्य — नेत्र को उस ज्योति की ओर घुमा देना है जो आत्मा को पहले से ही प्राप्त है। शिक्षा का सम्पूर्ण कार्य — ज्ञान को आत्मा में नहीं रखना है वरन् उन वस्तुओं को बाहर निकालना है जो आत्मा में अन्तर्निहित है और यह कार्य आत्मा को सही लक्षणों जी ओर निर्देशित करने से हो सकता है।”

प्लेटो ने शिक्षा की असीम शक्ति को स्वीकार किया है। उसने इसके ये उद्देश्य एवं कार्य बताये हैं—

1. राज्य की एकता प्राप्त करना — प्लेटो ने शिक्षा का उद्देश्य सहयोगी तथा सामुदायिक जीवन की भावना का विकास करना माना। क्योंकि वह ऐसे समाज की स्थापना करना चाहता था जिसमें सामुदायिक एवं सहयोगी भावना हो। इसलिए प्रत्येक वर्ग की शिक्षा पर उसने विशेष ध्यान दिया।

2. नागरिक कुशलता का विकास — प्लेटो के शब्दों में “यदि आप पूछें कि सामान्य रूप से अच्छी शिक्षा क्या है? इसका उत्तर सरल है, अच्छी शिक्षा श्रेष्ठ मनुष्य का निर्माण करती है और वे श्रेष्ठ मनुष्य अच्छे ढंग से कार्य करते हैं तथा शत्रुओं को युद्ध में पराजित करते हैं, क्योंकि वे अच्छे होते हैं।” इसलिए प्लेटो के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य नागरिक कुशलता का विकास करना भी है।

3. शारीरिक एवं मानसिक विकास — शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों में शरीर एवं मन के विकास पर बल देते हुए प्लेटो लिखते हैं— “क्या मैं यह कहने में सत्य नहीं हूँ कि उत्तम शिक्षा वह है जो शरीर एवं मन को उन्नत बनाने का सर्वाधिक प्रयास करती है। इससे अधिक स्पष्ट और कोई बात नहीं है कि सबसे सुन्दर शरीर वें हैं जो शैशवावस्था में सर्वोत्तम एवं शुद्धतम ढंग से विकसित होते हैं।”

4. स्वशासित व्यक्ति का निर्माण— शिक्षा का उद्देश्य स्वशासित व्यक्ति का निर्माण करना भी है जैसा कि प्लेटो लिखते हैं— “यदि हमारे नागरिक उचित प्रकार से शिक्षित हैं तो समझदार व्यक्तियों की भाँति विकसित होते हैं तो वे सरलता से अपने जीवन में व्यवस्थित हो जायेंगे और उस सामान्य सिद्धान्त का अनुसरण करेंगे जो यह बताता है कि मित्रगणों की सभी वस्तुयें पारस्परिक या एक होती हैं।”

5. सामंजस्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार करना — प्लेटो के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालको को सामंजस्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार करना है। प्लेटो के शब्दों में — “वास्तविक या सच्ची शिक्षा मनुष्यों को एक दूसरे के साथ अपने सम्बन्धों में सभ्य तथा मानवीय बनाने की प्रवृत्ति रखेगी।”

6. सन्तुलित व्यक्तित्व का निर्माण — प्लेटो ने शिक्षा का एक उद्देश्य — सन्तुलित व्यक्तित्व का निर्माण करना बताया। उनका कथन है— “शरीर व मन, आदतजन्य व विवेक जन्य जीवन, वैयक्तिक व सामूहिक हितों में ‘एकीकृत सम्पूर्ण’ बनाने के लिए सामंजस्य होना परमावश्यक है।”

7. शाश्वत मूल्यों का साक्षात्कार — प्लेटो के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य — बालकों में सत्य, शिवं तथा सुन्दर के लिए प्रेम उत्पन्न करना है जिससे वे उनका साक्षात्कार कर सकें।

8. विवेक का विकास — प्लेटो के विचार में



विवेक ही सामाजिक जीवन की आधारशिला है। यह प्रत्येक बालक में सुप्तावस्था में होता है। अतः शिक्षा का उद्देश्य इस सुप्त विवेक को जाग्रत करना होना चाहिए।

पाठ्यक्रम—

प्लेटो ने पाठ्यक्रम की रूपरेखा निर्धारित करने में बालक की क्रियाओं का ध्यान रखा है। पाश्चात्य शिक्षा जगत के इतिहास में प्लेटों ही प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने पाठ्यक्रम पर कुछ व्यवस्थित विचार प्रकट किये। उनके पाठ्यक्रम को भागों में बाँटा जा सकता है— (i) प्रारम्भिक शिक्षा, (ii) माध्यमिक शिक्षा, (iii) उच्च शिक्षा।

(i) प्रारम्भिक शिक्षा का पाठ्यक्रम — जीवन के प्रथम 10 वर्षों में छात्रों को अंकगणित, रेखागणित, संगीत तथा नक्षत्र विद्या की कुछ बातें सिखानी चाहिए।

(ii) माध्यमिक स्तर — कविता, गणित, खेलकूद, कसरत, सैनिक प्रशिक्षण, शिष्टाचार, संगीत तथा धर्मशास्त्र।

(iii) उच्च शिक्षा — अंकगणित, सम तथा ठोस ज्यामिति, ज्योतिष, संगीतशास्त्र, नीतिशास्त्र, दर्शन, मनोविज्ञान, माध्यात्मकशास्त्र, प्रशासन तथा कानून की शिक्षा।

प्लेटो की शिक्षण विधि—

प्लेटो ने अपने गुरु सुकरात की ही शिक्षा विधि को स्वीकार किया। यह विधि डाइलेक्टिक (दर्शन या सत्य की खोज का अध्ययन) थी। प्लेटो के अनुसार — “शिक्षण विधि ऐसी होनी चाहिए जो बालकों को उनकी रुचियों एवं प्रवृत्तियों के अनुसार शिक्षा प्रदान करे। वह बालकों की इच्छाओं का हनन न करे।” प्लेटो ने अग्रलिखित शिक्षण विधियाँ अपनाई—

1. तर्क या वाद विवाद विधि।
2. प्रश्नोत्तर विधि।
3. व्याख्यान विधि।
4. प्रयोगात्मक विधि।
5. स्वाध्याय विधि।

6. अनुकरण विधिविद्यालय (School)-

प्लेटो अपने गुरु सुकरात की तरह यूनान के युवकों को बाजार में सड़कों पर घूम-घूम कर शिक्षा देने का समर्थक नहीं था। उसने ‘अकादमी’ नामक एक संस्था की स्थापना की और इसी में उसने विद्यार्थियों को शिक्षा देने का कार्य जारी रखा। प्लेटो एक निश्चित स्थान पर शिक्षा देने का पक्षपाती था। उसने विद्यालय को

मानवीकरण तथा समाजीकरण करने वाली संस्था माना जिसका प्रमुख कार्य— “बालकों को सहयोगी एवं सामुदायिक जीवन व्यतीत करने की कला को सिखाना है व उसमें मानवीय गुणों का विकास करना है।” विद्यालय के बारे में प्लेटो के शब्द थे— “विद्यालय मनुष्य की आत्मा को विकसित करने का स्थान है।”

शिक्षक (Teacher)-

प्लेटो के अनुसार शिक्षक को सत्य व ज्ञान की प्रतिमूर्ति होना चाहिए। उसे ईमानदार, अनुभवी एवं आदर्शवादी होना चाहिए तो कर्तव्यनिष्ठ हो जिससे उसकी छाप उसके विद्यार्थियों पर पड़े और वो श्रेष्ठ व कुशल नागरिक बन सकें।

अनुशासन (Discipline)-

प्लेटो शारीरिक, मानसिक आदेशात्मक तथा सामाजिक अनुशासन का समर्थक है। उसने आत्म अनुशासन के लिए शरीर एवं मन दोनों के नियन्त्रण पर बल दिया। शारीरिक नियन्त्रण के लिए उन्होंने खेलकूद, व्यायाम आदि पर बल दिया तथा मानसिक नियन्त्रण हेतु संगीत एवं गणित का समर्थन किया और सामाजिक अनुशासन के लिए उसने सामुदायिक एवं सहयोगी जीवन के साथ आदेशात्मक अनुशासन का भी समर्थन किया। जैसा कि प्लेटो ने ‘लॉज’ में लिखा है— “चाहे युद्ध काल हो या शान्ति काल, प्रत्येक को अपने नेता का अनुगमन करना चाहिए।”

शैक्षिक प्रशासन (Educational Administration)-

स्पार्टा द्वारा एथेंस की पराजय से व्यथित प्लेटो ने कहा— शिक्षा पूर्णतः राज्य के नियन्त्रण में होनी चाहिए। सभी बच्चे राष्ट्र की सम्पत्ति हैं किसी परिवार की नहीं। अतः जन्म के समय शिशुओं को उनके माता-पिता से अलग करके राज्य द्वारा नियन्त्रित किसी शिशुशाला में रखा जाय और बालक एवं बालिकाओं को सार्वजनिक सरकारी स्कूलों में शिक्षा दी जाय। राज्य के सभी बच्चे शिक्षा प्राप्त करने के अधिकारी नहीं है केवल प्रतिभाशाली बालक ही शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। शिक्षा के व्यय का सारा भार राज्य पर होगा।

स्त्री शिक्षा (Women Education)-

प्लेटो ने स्त्री व पुरुषों को समान माना। उनका मानना था कि स्त्रियाँ उन सभी कार्यों को कर सकती हैं जिनको पुरुष कर सकता है। इसीलिए उन्होंने स्त्रियों के लिए संगीत, नृत्य, व्यायाम, सैनिक अभ्यास तथा युद्ध कला



आदि अध्ययन करना निर्धारित किया।

दासों की शिक्षा (Education for Slavis)-

यूनान में दासों की संख्या अधिक थी। प्लेटों ने उनके अस्तित्व को समझा और उनके लिए अनुकरण द्वारा अपने पिता के व्यवसाय को ग्रहण करने की शिक्षा पर बल दिया।

प्लेटो के शिक्षा सिद्धान्त का मूल्यांकन—

दोष — प्लेटो के दर्शन में निम्नांकित दोष पाये हैं—

1. प्लेटो ने कारीगरों के प्रशिक्षण के विषय में कुछ नहीं बताया, इससे स्पष्ट होता है कि वह निर्णय करने में अनुसार एवं शिथिल था।

2. उसकी शिक्षा योजना मुख्यतः शासकों एवं प्रशासकों के लिए ही थी। अतः उसने जनता के एक बड़े भाग को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा से वंचित कर दिया।

3. व्यावहारिक कलाओं और साहित्य की उपेक्षा की और गणित को अनुचित महत्व प्रदान किया।

4. दास प्रथा के लिए कुछ नहीं कहा वरन् उसे यथास्थिति बनाये रखने का समर्थक था।

इन दोषों के होते हुए भी प्लेटो के शिक्षा सिद्धान्त उच्च कोटि के हैं उसके शिक्षा सिद्धान्त आज भी प्रेरक एवं अग्रदूत का कार्य करते हैं।

गुण — प्लेटो के शिक्षा दर्शन के गुण निम्नवत हैं—

1. प्लेटो का शिक्षा सिद्धान्त सब के लिए समान अवसर प्रदान करने के सिद्धान्त पर आधारित है। उसने स्त्री एवं पुरुष को समान शिक्षा का समर्थन करके इस तथ्य की पुष्टि की।

2. व्यक्तित्व के सामंजस्यपूर्ण विकास पर बल। उसकी शिक्षा योजना में शरीर, मन तथा आत्मा के समुचित विकास के लिए स्थान प्राप्त है।

3. शिक्षा को राज्य का प्राथमिक एवं परमावश्यक कर्तव्य माना।

4. वातावरण पर बल देकर आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का पथ प्रदर्शन किया।

5. आधुनिक शिक्षा शास्त्री प्लेटो के शिक्षा सिद्धान्त से विभिन्न क्षेत्रों में प्रेरणा प्राप्त करते हैं। जैसे — बालक को सीखने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भाग लेने के अवसर प्रदान करना, प्रारम्भिक शिक्षा रोचक हो, सरल से कठिन की ओर बढ़ो, शिक्षा में खेल का महत्व, चयन करने की पद्धति (बहिष्करण जांच प्रणाली) आदि।

6. स्त्री शिक्षा को महत्व।

7. शिक्षा को नैतिक प्रशिक्षण की प्रक्रिया माना और उसके आध्यात्मिक पक्ष पर बल दिया।

निष्कर्ष —

कुछ भी हो, प्लेटो के विचारों ने शाताब्दियों तक पाश्चात्य जगत को प्रभावित किया और आज भी उनके विचार प्रेरणा के स्रोत हैं। जैसा कि जाविट लिखते हैं—

“वह दर्शन, राजनीतिशास्त्र तथा शिक्षा में आदर्शवाद का जनक है। आधुनिक विचारों एवं राजनीतिज्ञों की आधुनिकतम धारणायें — ज्ञान की एकता, कानून का शासन, लिंगभेद समानता आदि उसके द्वारा स्वप्न में ही निरूपित की जा चुकी थीं।”

अतः प्लेटो के सिद्धान्त उच्च कोटि के थे। वह प्रथम व्यक्ति था जिसने शिक्षा पर विधिवत विचार किया और शिक्षा की एक योजना प्रस्तुत की। स्त्री शिक्षा के विषय में उनके विचार आज दो हजार तीन सौ वर्ष बाद भी नवीन लगते हैं। उनके सिद्धान्तों में जीवन के शाश्वत मूल्यों की झलक मिलती है। वह अभी भी राजनीति, दर्शन व शिक्षा के क्षेत्र में छाया हुआ है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक — टण्डन, उमा एवं गुप्ता, अरुणा।
2. महान दार्शनिक प्लेटो — सांगवान, बनीता एवं देवी, विमला
3. पाश्चात्य राजनीतिक विचारक — गावा, ओमप्रकाश
4. राजनीतिक विचारक : पाश्चात्य एवं भारतीय — जैन एवं फड़िया।
5. पाश्चात्य विचारक — पाठक, नवराज।



विश्वविद्यालय पुस्तकालयों में सूचना संचार प्रौद्योगिकी (आई.सी.टी.) : चुनौतियाँ



– पूनम द्विवेदी
शोधार्थी – पुस्तकालय एवं
सूचना विज्ञान विभाग,
नेहरू ग्राम भारती डीम्ड
विश्वविद्यालय, प्रयागराज-221505
(उत्तर प्रदेश)

ई-मेल :
poonamdwwivedi686@gmail-com



– डॉ. चिंतामणि गौतम
विभागाध्यक्ष – पुस्तकालय एवं
सूचना विज्ञान विभाग,
नेहरू ग्राम भारती डीम्ड
विश्वविद्यालय, प्रयागराज-221505
(उत्तर प्रदेश)

ई-मेल :
drcmgautam12@gmail-com

सारांश

पुस्तकालय स्वचालन सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों (ICT) के लिए प्रयुक्त सामान्य शब्द है जिसका उपयोग पुस्तकालय में मैन्युअल प्रणालियों के स्थान पर किया जाता है। पुस्तकालय कम्प्यूटरीकरण पुस्तकालय स्वचालन का एक भाग है। वर्तमान में पुस्तकालय के रखरखाव सम्बन्धी कार्यों जैसे- प्रशासनिक कार्य अधिग्रहण सूचीकरण संचलन क्रमिक नियंत्रण OPAC आदि के लिए कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी के उपयोग को पुस्तकालय कम्प्यूटरीकरण के रूप में जाना जाता है। पुस्तकालयों को सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आई.सी.टी.) के उपयोग के माध्यम से अपनी सेवाओं के कुशल और प्रभावी प्रबन्धन हेतु एक कार्यक्रम तैयार करने की आवश्यकता है। यद्यपि भारत में कई पुस्तकालयों में पुस्तकालय स्वचालन कार्यक्रम अस्थायी विकास के रूप में शुरू हुए थे जिन्हें बाद में नियमित किया गया 'पुस्तकालय स्वचालन कार्यक्रम के उद्देश्यों का पूरे देश में व्यापक रूप से सम्मिलित करना अभी भी एक चुनौती है। आई.सी.टी. की मदद से पुस्तकालय सेवाओं में दक्षता और प्रभावशीलता को सामने लाया जा सकता पुस्तकालय स्वचालन एक महंगा काम है, इसमें कम्प्यूटर के पुर्जों (हार्डवेयर) पर एकमुश्त खर्च शामिल हो सकता है लेकिन सॉफ्टवेयर डेटा प्रविष्टि, डेटा संग्रहण रखरखाव आदि जैसी कई अन्य लागतें भी समय-समय पर उन्नयन के लिए करनी पड़ती हैं। प्रस्तुत लेख सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की धारणा को स्पष्ट करना तथा पुस्तकालयों में आई.सी.टी. के अनुप्रयोग से सम्बन्धित चुनौतियों और अवसरों की विश्लेषण करना है।

मुख्य बिन्दु – पुस्तकालय में आई.सी.टी. सूचना प्रौद्योगिकी और पुस्तकालय पुस्तकालय स्वचालन।

पुस्तकालय और आई.सी.टी.–

सूचना क्रांति के इस युग में मानव जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया है। इस सूचना क्रांति के भविष्य में अनेक चुनौतियों, अवसरों और प्रतिस्पर्धाओं का सृजन किया है जिनके साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए सूचना और संचार तकनीकी या प्रौद्योगिकी का अध्ययन करना अनिवार्य हो गया है। सूचना प्रौद्योगिकी को कम्प्यूटर के नित नए विकास ने और अधिक प्रभावी बना दिया है तथा इसे विस्तृत आयाम प्रदान किया है। उभरती सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों ने सूचना



भण्डारण पुनर्प्राप्ति और प्रसार में पुस्तकालय सेवाओं का स्वरूप बदल दिया है। 'पारम्परिक पुस्तकालय, गृह व्यवस्था पद्धतियाँ अब नई प्रौद्योगिकियों का उपयोग करके संचालित की जा रही हैं।

नई प्रौद्योगिकियों ने पुस्तकालय के क्षेत्र में सूचना प्राप्ति संगठन संदर्भ सेवाओं संचालन और ग्रंथ सूची सेवाओं से सम्बन्धित अधिकांश समस्याओं का बेहतर समाधान प्रस्तुत किया है' — **पेरेरा और दिनेश 2010**। पुस्तकालयों में आई.सी.टी. का उपयोग पुस्तकालयों का पूर्ण स्वचालन है। स्वचालन का अर्थ है पुस्तकालयों में सूचना प्राप्ति भण्डारण पुनर्प्राप्ति स्थानान्तरण और प्रसार जैसे विभिन्न कार्यों के लिए कम्प्यूटर अनुप्रयोग दूरसंचार और माइक्रो इलेक्ट्रॉनिक्स आदि का उपयोग। शैक्षणिक पुस्तकालय और सूचना केन्द्र मूल्यवान अभिलेखों के स्रोत के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जो समाज की सूचना आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायक होते हैं। आधुनिक परिवेश में ये केन्द्र अक्सर अत्याधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी (आई.सी.टी.) संसाधनों से सुसज्जित होते हैं ताकि सूचना प्राप्ति प्रसार और दूरस्थ भण्डारों में स्थित संसाधनों तक पहुँच को सुगम बनाया जा सके जो पहले संभव नहीं थे। इस दृष्टि से भारत में शैक्षणिक पुस्तकालयों में सूचना प्रौद्योगिकी (आई.सी.टी.) के प्रभाव को उनके संरक्षकों की शैक्षणिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कम करके नहीं आँका जा सकता। पूर्णतः कार्यात्मक आई.टी. — अनुपालक पुस्तकालयों की स्थापना में जिन कारकों पर विचार किया जाना चाहिए उनमें शामिल हैं। स्थान की उपलब्धता तकनीकी जानकारी प्रशिक्षित आई.टी. जन शक्ति वित्त पोषण और रखरखाव संस्कृति। इन कारकों को रेखांकित करने के बाद आई.टी. संसाधनों के प्रति धारणा और इन संसाधनों के अंतिम उपयोग कर्ताओं के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण की उपलब्धता भी महत्वपूर्ण चुनौतियाँ उत्पन्न कर सकती हैं।

अन्त में यह शोधपत्र कई कारकों को रेखांकित करता है जो शैक्षणिक पुस्तकालयों में आई.टी. सेवाओं के पूर्ण कार्यान्वयन को प्रभावित कर सकते हैं। इसलिए यह अनुशंसा की जाती है कि यह निर्धारित करने के लिए एक शोध किया जाए कि इनमें से कौन से कारक एक कागज आधारित प्रणाली को एक पूर्णतः स्वचालित आई.टी. संचालित शैक्षणिक पुस्तकालय में परिवर्तित करने में सबसे महत्वपूर्ण चुनौतियाँ कौन-कौन सी हैं।

विश्वविद्यालय पुस्तकालयों में सूचना संचार प्रौद्योगिकी की चुनौतियाँ —

विश्वविद्यालय पुस्तकालय विविध ज्ञान के सुरक्षित भण्डारण केन्द्र होता है जिसके माध्यम से विश्वविद्यालय के यू.जी.पी.जी. और शोध छात्रों को उनकी जरूरत के संसाधन मिलते हैं। विश्वविद्यालय पुस्तकालय में पुस्तकों जर्नल सी.डी.डी.वी.डी. थीसिस शोध प्रबन्ध पत्रिकाएं समाचार-पत्र और एक डेटाबेस ई-संसाधन आदि का एक बड़ा संग्रह है। विश्वविद्यालय पुस्तकालय को विश्वविद्यालय का हृदय कहा जाता है। यह विश्वविद्यालय का केन्द्र है जहाँ शैक्षिक संसाधन उपलब्ध हैं। पहले पुस्तकालय का संचालन पारम्परिक तरीके से मैनुअल रूप से किया जाता था। वर्तमान में स्वचालन शुरू हो गया है, पुस्तकालय में उपयोग किया जा रहा है और विभिन्न सॉफ्टवेयर का उपयोग किया जाता है। पुस्तकालय में स्वचालन का उपयोग करके मैनुअल समस्याओं को समाप्त कर दिया गया है। पुस्तकालय स्वचालन से पहले विभिन्न प्रकार की समस्याएं आती थीं। यह एक समय लेने वाली प्रक्रिया थी और काम के दोहराव की संभावना अधिक थी। पुस्तकालय स्वचालन के बाद उपयोगकर्ताओं और पुस्तकालय कर्मचारियों को स्वचालन सॉफ्टवेयर से सम्बन्धित प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। पुस्तकालय स्वचालन (लाइब्रेरी ऑटोमेशन) में कई चुनौतियाँ हैं जिनमें मुख्य रूप से शामिल हैं। लागत तकनीकी बाधाएँ प्रशिक्षण की कमी और डेटा संग्रहण शामिल हैं।

इस प्रकार जहाँ आई.सी.टी. की सहायता से पुस्तकालय प्रबन्धन को सुगम बनाया जा सकता है, वहीं दूसरी ओर आई.सी.टी. से सम्बन्धित विभिन्न बाधाओं जैसे आई.सी.टी. संचालन में दक्षता एवं लागत इनका भी सामना करना पड़ता है। पुस्तकालय स्वचालन पुस्तकालय संचालन जैसे कैटलॉगिंग संचालन अधिग्रहण और उपयोगकर्ता सेवाओं के प्रबन्धन के लिए प्रौद्योगिकी और सॉफ्टवेयर के उपयोग से है। हालाँकि पुस्तकालय स्वचालन दक्षता और उपयोगकर्ता अनुभव को काफी बढ़ा सकता है लेकिन इसमें चुनौतियाँ भी हैं। **राजपूत और गौतम (2010)** ने विशेष पुस्तकालयों पर अध्ययन में पाया कि इन सीमाओं के कारणों में शामिल हैं। संचालन से निपटने के लिए अपर्याप्त स्टाफ प्रशिक्षण और कुशल कर्मचारियों की कमी अपर्याप्त वित्त पुस्तकालय स्वचालन के बाद की समस्याएं प्राधिकरण समर्थन की कमी और



उपयोगकर्ताओं को पुस्तकालय स्वचालन सॉफ्टवेयर के बारे में जानकारी नहीं है। **शकुन्तला सिंह (2022)** के अनुसार कॉलेज पुस्तकालयों में उपयोगकर्ता जागरूकता और संसाधनों की कमी। सफल स्वचालन सुनिश्चित करने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से उपयोगकर्ता जागरूकता बढ़ाने के लिए एक ठोस प्रयास होना चाहिए और साथ ही आवश्यक संसाधनों और बुनियादी ढाँचे में निवेश भी करना चाहिए। **मुल्ला एवं अन्य (2010)** के अनुसार कर्नाटक के अधिकांश इंजीनियरिंग कॉलेज पुस्तकालयों में पर्याप्त कम्प्यूटरों का अभाव है। यह अध्ययन इस तथ्य को उजागर करता है कि कर्नाटक में इंजीनियरिंग कॉलेज पुस्तकालयों में पुस्तकालय सेवाओं को स्वचालित करने में रुचि है कम्प्यूटर और कुशल कर्मचारियों की कमी सहित विभिन्न चुनौतियाँ प्रगति को रोक रही हैं। **थापा और साहू (2007)** पुस्तकालयों को वित्तीय बाधाओं का सामना करना पड़ता है जो आवश्यक स्वचालन उपकरण सॉफ्टवेयर और बुनियादी ढाँचे में निवेश करने की उनकी क्षमता को सीमित करते हैं। अध्ययन के अनुसार पुस्तकालय स्वचालन में प्रशिक्षित कुशल पेशेवरों की कमी एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। अध्ययन में पाया गया है कि भोपाल में कई विशेष पुस्तकालयों में अपेक्षित बुनियादी ढाँचा नहीं है जैसे कि निरन्तर बिजली आपूर्ति कम्प्यूटर या इंटरनेट की उपलब्धता।

1. लागत और बजट की बाधाएँ— लाइब्रेरी ऑटोमेशन सिस्टम को लागू करना और उसका रखरखाव करना महंगा हो सकता है। इसमें हार्डवेयर सॉफ्टवेयर प्रशिक्षण और निरन्तर समर्थन की लागत शामिल है।

2. डेटा माइग्रेशन सम्बन्धी समस्याएँ— पारम्परिक प्रणालियों या पुराने सॉफ्टवेयर से डेटा माइग्रेशन करने से डेटा हानि दोहराव या त्रुटियाँ हो सकती हैं।

3. अनुकूलन सीमाएँ— कई पुस्तकालय स्वचालन प्रणालियों में लचीलेपन का अभाव होता है और वे पुस्तकालय या उसके पाठकों की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाते हैं।

4. प्रशिक्षण और परिवर्तन प्रबन्धन— पुस्तकालय कर्मचारी और उपयोगकर्ता प्रशिक्षण या परिचय की कमी के कारण नई प्रणालियों को अपनाने में प्रतिरोध कर सकते हैं या संघर्ष कर सकते हैं।

5. सुरक्षा सम्बन्धी चिंताएँ— स्वचालित प्रणालियाँ साइबर हमलों डेटा उल्लंघनों या अनधिकृत

पहुँच के प्रति संवेदनशील हो सकती हैं, इन कठिनाइयों के बावजूद अध्ययन बताता है कि पर्याप्त समर्थन बेहतर प्रशिक्षण और बेहतर बुनियादी ढाँचे के साथ इन पुस्तकालयों में स्वचालन के माध्यम से अपनी सेवा वितरण को आधुनिक बनाने और बेहतर बनाने की क्षमताएँ।

पुस्तकालय स्वचालन की मुख्य चुनौतियाँ—

- **लागत —** स्वचालन प्रणाली को स्थापित करना और बनाए रखना महंगा हो सकता है। इसमें सिद्धान्त सॉफ्टवेयर प्रशिक्षण और निरन्तर समर्थन की लागत शामिल है।

- **तकनीकी बाधाएँ—** पुस्तकालयों को बार-बार पुराने पुस्तकालयों के साथ नवीनीकृत करने का अवलोकन करना है। पुरातत्व विद्या के अनुयायी और विभिन्न पुरातत्वविद् भी एक चुनौती है।

- **प्रशिक्षण—** पुस्तकालय कर्मचारियों और पुस्तकालयों को नए संस्थान से प्रभावी ढंग से उपयोग करने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। प्रशिक्षण की कमी से नए तकनीशियनों में प्रतिरोध हो सकता है।

- **डेटामाइग्रेशन—** स्थिर डेटा को पुराने बैस्टलैण्ड से नये बैस्टलैण्ड में स्थानांतरित करना एक जटिल प्रक्रिया हो सकती है। डेटा माइग्रेशन के दौरान डेटा हानि दोहराव या त्रुटि हो सकती है।

- **अनुकूलन—** कई बुनियादी ढाँचे में बुनियादी ढाँचे की कमी होती है और वे पुस्तकालय की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाते हैं।

- **सुरक्षा —** डिजिटल डेटा की सुरक्षा एक महत्वपूर्ण चिंता है। पुस्तकालयों को यह सुनिश्चित करना होगा कि उनकी प्रणालियाँ सुरक्षित हैं और डेटा चोरी या हैकिंग से सुरक्षित है।

- **डिजिटल विभाजन —** सभी मानकों के पास डिजिटल फॉर्मेट तक समान पहुँच नहीं है। पुस्तकालयों को यह सुनिश्चित करना होगा कि सभी स्तरों के लिए स्वचालन आसान हो।

विश्वद्यालय पुस्तकालयों में आई.सी.टी.सम्बन्धित संभावनाएँ—

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आई.सी.टी.) ने वैश्विक स्तर पर पुस्तकालय सेवाओं को पूरी तरह बदल दिया है। अधिकांश वर्तमान जानकारी इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप



में दर्ज की जाती है। आई.सी.टी. ने पुस्तकालयाध्यक्षों के कार्यों जैसे कि सूचीकरण संदर्भ सेवाएँ संचालन प्रबन्धन धारावाहिक नियंत्रण आदि के निष्पादन में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आई.सी.टी. ने पुस्तकालय में निम्नलिखित विशिष्ट तरीकों से योगदान दिया है। पुस्तकालय स्वचालन की समस्याओं के समाधान की संभावनाओं में सुधार के महत्वपूर्ण अवसर तो हैं लेकिन साथ ही मौजूदा चुनौतियाँ भी उजागर होती हैं। जैसे-जैसे तकनीक का विकास जारी है। पुस्तकालय स्वचालन के लाभों को तेजी से पहचान रहे हैं और साथ ही इसकी चुनौतियों से निपटने के लिए भी काम कर रहे हैं। पुस्तकालयों में स्वचालन तकनीकों को अपनाने से परिचालन दक्षता उपयोगकर्ता अनुभव और संसाधन प्रबंधन में सुधार के महत्वपूर्ण लाभ मिलते हैं। हालाँकि कार्यान्वयन के दौरान आने वाली प्रमुख चुनौतियों में से एक है कर्मचारियों का प्रतिरोध। यह प्रतिरोध आमतौर पर नौकरी छूटने की चिंताओं नई तकनीकों से अपरिचितता या कार्यप्रवाह में बदलाव से असहजता के कारण होता है। पुस्तकालयों में स्वचालन प्रणालियों के सफल एकीकरण के लिए इन चिंताओं को समझना और उनका समाधान करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

पुस्तकालय में आई.सी.टी. के लाभ व्यापक और परिवर्तनकारी हैं। सबसे महत्वपूर्ण लाभों में से एक परिचालन दक्षता में वृद्धि है। नियमित कार्यों को स्वचालित करके पुस्तकालय मानवीय त्रुटियों को कम कर सकते हैं और समय बचा सकते हैं जिससे कर्मचारी संदर्भ सेवाओं उपयोगकर्ता जुड़ाव और प्रोग्रामिंग जैसी अधिक मूल्यवर्धित गतिविधियों पर ध्यान केंद्रित कर सकते हैं। आई.सी.टी. पुस्तकालय संसाधनों के आसान प्रबन्धन को भी सुगम बनाता है अधिक सटीक और अद्यतन कैटलॉग प्रदान करता है जिससे उपयोगकर्ता सामग्री का शीघ्रता से पता लगा सकते हैं। इसके अतिरिक्त स्वचालित प्रणालियाँ वस्तुओं को ट्रैक करना और इन्वेंट्री का प्रबन्धन करना आसान बनाती हैं जिससे संचालन प्रक्रिया और संसाधन उपलब्धता दोनों में सुधार होता है।

आई.सी.टी. के अनेक लाभ हैं जिनमें बड़ी हुई दक्षता सटीकता और सुलभता शामिल है। स्वचालन के साथ पुस्तकालयाध्यक्ष मैन्युअल कार्यों पर कम समय व्यतीत कर सकते हैं और पाठकों की सेवा तथा मूल्यवान संसाधन उपलब्ध कराने में अधिक समय लगा सकते हैं।

स्वचालित प्रणालियों का उपयोग करके पुस्तकालय अपने समुदायों की बेहतर सेवा कर सकते हैं और सभी के लिए जानकारी को अधिक आसानी से सुलभ बना सकते हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी से पुस्तकालय स्वचालन प्रणालियों के साथ पुस्तकालयाध्यक्ष समय और प्रयास की बचत करके अपने पाठकों को कुशल सेवा प्रदान कर सकते हैं, साथ ही यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि पुस्तकालय सुचारु रूप से चले।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. परेरा कामानी और दिनेश चन्द्र (2010) – शैक्षणिक पुस्तकालयों में सूचना संचार प्रौद्योगिकियों (आई.सी.टी.) का उपयोग। विद्वानों की दुनिया का प्रवेश द्वार। पुस्तकालयों और सूचना सेवाओं में उभरते रुझान और प्रौद्योगिकियों पर द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी की कार्यवाही। 3-5 जून, 2010।
2. शर्मा पी. सिंह एम. और पंकज कुमार (2011) – लाइब्रेरी प्रशिक्षण शिक्षा और प्रौद्योगिकी में आई.सी.टी. का दृष्टिकोण मुद्दे और चुनौतियाँ, जर्नल ऑफ लाइब्रेरी एण्ड इन्फॉर्मेशन साइंस खण्ड-1, अंक-1, जून, 2011।
3. सिंह योगेन्द्र (2003) – भारत में शैक्षणिक पुस्तकालयों में पुस्तकालय स्वचालन। समस्याएँ और संभावनाएँ - www-Caliberdspace-inflibnet-ac-in.
4. देशमुख विजय एम ((2010) – सामग्री और कॉलेज लाइब्रेरी सूचना, नेटवर्क युग की बिक्री में कॉलेज लाइब्रेरियन की भूमिका, रॉयल स्टेट आर्किवोलॉजी कन्वेंशन, नागपुर वी.एम.वी. कॉमर्शियल जे.एम.टी. कला एवं जे.जे.पी. साइंस कॉलेज, 6 सितम्बर, पृष्ठ 26-27।
5. भारत सरकार राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन- आपदा जोखिम न्यूनीकरण के लिए वैज्ञानिक भारतीय अनुभव (Mu) सन् 20 अगस्त, 2009, प्रा. सं. – 565।
6. फॉक्स टी. एल. ब्लैक – ह्यूजेस सी. इंटरनेट बनाम व्याख्यान के उपयोग की तुलना के लिए सामाजिक कार्य इतिहास विचारधारा सामाजिक कार्य अभ्यास अनुसंधान पर एस. एन. – 2000, पृष्ठ संख्या –10।
7. के. आर. मुल्ला (2010) कर्नाटक के इंजीनियरिंग कॉलेजों में विभिन्न लाइब्रेरी सॉफ्टवेयर मॉड्यूल का उपयोग और प्रदर्शन डेसिडॉक जेलिब्रिन्फ टेक्नोल – 20103031322।
8. एन. थापा के. सी. साहू (2007), स्वचालन की समस्याएँ और संभावनाएँ – भोपाल में विशेष पुस्तकालयों का एक सर्वेक्षण Libr Prog. 20072517183.
9. पी. एस. राजपूत जे. एन. गौतम, (2010) स्वचालन और उनके कार्यान्वयन में समस्याएँ – इंदौर में विशेष पुस्तकालयों की एक जाँच भारत अन्तर्राष्ट्रीय जर्नल ऑफ लाइब्रेरीजइन्फ साइंस – 2010271437।



भारतीय चित्रकला में साहित्य की भूमिका



— सुश्री संध्या जादौन
असिस्टेन्ट प्रोफेसर —
ड्राइंग एण्ड पेंटिंग,
गवर्नमेन्ट कालेज, लाखेरी—
323603, बूँदी, (राजस्थान)

ई. मेल—
sandhyajadon1998@gmail.com

शोध सार

सभी ललित कलाएँ सौन्दर्य की सृजक हैं व स्वाभाविक रूप से मानव को आकर्षित करती हैं। यद्यपि आन्तरिक रूप से सभी ललित कलाएँ एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं किन्तु साहित्य और चित्रकला का सम्बन्ध अत्यधिक गहन है। साहित्यकार अपने अन्तःपटल पर एक चित्र खींचकर उसके अनुसार शब्द-चित्रों का निर्माण करता है तो चित्रकार भी सौन्दर्य को अपनी तूलिका के माध्यम से मूर्त रूप में प्रस्तुत कर देता है। कलाओं के अन्तर्सम्बन्ध मुझे हमेशा आकर्षित करते रहे किन्तु अपने शोध प्रबन्ध में मैंने चित्रकला और साहित्य को प्रमुखता दी। भारतीय चित्रकला में साहित्य के प्रभाव का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। मिर्जापुर, भीमवेदका, अजन्ता, एलौरा की गुफाओं में चित्रित चित्र इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। मध्यकाल में साहित्य और चित्रकला में परस्पर अन्तरावलम्बन के अनेक उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं। राजस्थानी पहाड़ी आदि शैली में बिहारी सतसई, गीत-गोविन्द, रामायण, भागवतपुराण आदि ग्रन्थों ने चित्रकारों को प्रभावित किया।

मध्यकाल के पश्चात् विशेष रूप से उत्तर मध्यकाल के उपरान्त चित्रकला एवं साहित्य के मध्य जो प्रभावपरक परस्परावलम्बता का सम्बन्ध स्थापित हुआ, वह आधुनिक काल में नवीन रूप में विकासोन्मुख है। राजा रवि वर्मा से अवनीन्द्रनाथ, हालदार, एम. एफ. हुसैन, डॉ. प्रेमा मिश्रा, डॉ. राका अग्रवाल, डॉ. अजय पाठक तक साहित्य प्रेरित चित्रों का आधुनिक परम्परा चक्र अबाध गति से निरन्तर प्रगतिसर है।

भारतीय चित्रकला में साहित्य की भूमिका को स्पष्ट करने के लिए प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक दोनों कलाओं (साहित्य और चित्रकला) की सम्मिलित विकास यात्रा का समुचित एवं प्रामाणिक उल्लेख करने का प्रयास किया है।

साहित्य के चित्रण के लिए देश, काल और परिस्थिति के अनुसार कलाकार ने समय-समय पर विभिन्न माध्यम चुने हैं, जो प्रमुखतया भित्ति चित्र, पट चित्र, पोथी चित्र और लघु चित्र के रूप में मिलते हैं, इनमें भित्ति चित्रण चित्रकला की आदिम प्रवृत्ति है। प्रागैतिहासिक गुहा चित्र इस कथ्य के साक्षी हैं। भारतीय चित्रकला में साहित्य की प्रेरकता व उपस्थिति के सर्वश्रेष्ठ प्राचीन उदाहरण अजन्ता के भित्ति चित्रण में प्राप्त होते हैं। अजन्ता के अधिकांश भित्ति चित्रण में प्राप्त होते हैं। अजन्ता के अधिकांश भित्ति चित्र जातक कथाओं पर आधारित हैं। इनके सौन्दर्य ने सम्पूर्ण विश्व को अपनी ओर आकर्षित किया है।



सभी ललित कलाएँ सौन्दर्य की सृजक हैं व स्वाभाविक रूप से मानव को आकर्षित करती हैं। यद्यपि आन्तरिक रूप से सभी ललित कलाएँ एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं किन्तु साहित्य और चित्रकला का सम्बन्ध अत्यधिक गहन है।

साहित्यकार अपने अन्तःपटल पर एक चित्र खींचकर उसके अनुसार शब्द-चित्रों का निर्माण करता है तो चित्रकार भी सौन्दर्य को अपनी तूलिका के माध्यम से मूर्त रूप में प्रस्तुत कर देता है। कलाओं के अन्तर्सम्बन्ध मुझे हमेशा आकर्षित करते रहे किन्तु अपने शोध प्रबन्ध में मैंने चित्रकला और साहित्य को प्रमुखता दी। भारतीय चित्रकला में साहित्य के प्रभाव का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। मिर्जापुर, भीमवेदका, अजन्ता, एलौरा की गुफाओं में चित्रित चित्र इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। मध्यकाल में साहित्य और चित्रकला में परस्पर अन्तरावलम्बन के अनेक उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं। राजस्थानी पहाड़ी आदि शैली में बिहारी सतसई, गीत-गोविन्द, रामायण, भागवतपुराण आदि ग्रन्थों ने चित्रकारों को प्रभावित किया।

मध्यकाल के पश्चात् विशेष रूप से उत्तर मध्यकाल के उपरान्त चित्रकला एवं साहित्य के मध्य जो प्रभावपरक परस्परावलम्बता का सम्बन्ध स्थापित हुआ, वह आधुनिक काल में नवीन रूप में विकासोन्मुख है। राजा रवि वर्मा से अवनीन्द्रनाथ, हाल्दार, एम. एफ. हुसैन, डॉ. प्रेमा मिश्रा, डॉ. राका अग्रवाल, डॉ. अजय पाठक तक साहित्य प्रेरित चित्रों का आधुनिक परम्परा चक्र अबाध गति से निरन्तर प्रगतिसर है।

तथागत (बुद्ध) के चेहरे पर अभय व शान्ति के भाव को तथा डरावनी आकृतियों व सुन्दरियों के चंचल आकर्षण को चित्रकारों ने बड़े ही सहज ढंग से अजन्ता की भित्ति पर उतारा है। कहा जा सकता है, कि कथा के जिस भाव को हम चित्र देखकर इतनी सरलता से समक्ष व आत्मसात् कर पाते हैं, वह केवल पढ़कर हम अपने नेत्रों से देखते हैं, वह सीधे हृदय को स्पर्श करता है और जो बात हृदय तक पहुँच जाय, उसका प्रभाव चिरकाल तक रहता है। यही कारण है कि कवि और लेखक भी अपनी रचना में शब्द चित्र प्रस्तुत करने में तत्पर रहते हैं।

अजन्ता आदि गुफाओं में जब बौद्ध धर्म विषयक चित्र मालाओं का चित्रण हुआ, तब उसके ही समानान्तर एलौरा में रामकथा चित्र माला का प्रस्तर पर उद्वेखण हुआ और फिर चित्रकला में भी श्री रामकथा का चित्रण हुआ है। सुरवाया के

एक प्रस्तर चित्र में राम-कथा पंचवटी से लेकर संपाती मिलन तक की उद्वेखित है। राम की कथा का यह स्वरूप दक्षिण के मन्दिरों में मिलता है। खजुराहो में राम की मूर्ति संस्थापित भी है तथा राम के अनेक रूपों को प्रस्तुत भी किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय चित्रकला में साहित्य की भूमिका और प्रेरकता आदि काल से दृष्टिगोचर होती हैं।

भारत में सचित्र पुस्तकों की परम्परा प्राचीन है। भोजपत्र, ताड़पत्र और पटके के अतिरिक्त कागज पर जब से लेखन एवं चित्रण होने लगा है, तभी से सचित्र पुस्तकें अधिक बनने लगी हैं। सचित्र पुस्तकों की परम्परा का प्रारम्भ कब से हुआ, यह बता पाना कठिन है, किन्तु पाल शैली से सचित्र ग्रन्थों के उदाहरण प्रमाणतः प्राप्त होते हैं।

सम्पूर्ण कला जगत के विभिन्न रूपों की धूप-छाँव से आच्छादित है। कला किसी न किसी रूप में प्रत्येक को आकर्षित करती है। संसार में शायद ही कोई ऐसा मनुष्य हो जो किसी सुन्दर कृति को देखकर प्रसन्न व आकर्षित न हो। कला के अनगिनत माध्यमों या रूपों में एक चित्रकला है। यह कला का वह रूप है, जिसके माध्यम से भावों और विचारों को रंग तथा आकार प्राप्त होते हैं। चित्रकला द्वारा एक साथ कई भावों व आयामों को प्रकट किया जा सकता है। इसी कारण चित्रकला को सभी शिल्पों में प्रमुख और लोक जन को आनन्दित करने का भी विषय माना गया है।

‘चित्रं ही सर्वशिल्पानां मुखं लोकस्य च प्रियम।’

साहित्य और चित्रकला -

अपनी संरचना में सारी कलाएँ एक दूसरे से सम्बद्ध ही नहीं होती वरन् एक दूसरे की उपस्थिति का बोध भी कराती हैं। इस सम्बद्धता में ललित कला और काव्य का सम्बन्ध चिर प्रसिद्ध है। पाश्चात्य और भारतीय सौन्दर्य शास्त्र में वही कविता उत्कृष्ट मानी जाती रही है, जिसमें चित्रमयता रही है और वही चित्र भी उत्कृष्ट माना गया है, जिसमें कविता जैसी सूक्ष्म अर्थ छवियों को खोलने की शक्ति हो। सम्पूर्ण विश्व में काव्य और चित्रकला के आपसा सम्बन्ध के अनेकों उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं, जो एक दूसरे के पूरक बनकर अपने आपको प्रतिष्ठित करते रहे हैं।

कवि और चित्रकार दोनों ही सृजन प्रतिभा के धनी सहृदय कलाकार होते हैं। अपनी सृजनात्मक शक्ति के द्वारा कवि काव्य रचकर अपने पाठकों तथा श्रोताओं को प्रभावित



करता है, तो चित्रकार चित्र निर्माण करके सुधी दर्शकों और कला-प्रेमियों को आनन्द विभोर करता है। चित्रकला और साहित्य दोनों कलाओं का परस्पर सम्बन्ध बाह्य जगत से नहीं अन्तर्जगत और हृदय से जुड़ा हुआ है।

साहित्य और चित्रकला के सम्बन्ध को सृजन प्रक्रिया के अध्ययन के द्वारा स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। सृजन प्रक्रिया के समय कलाएँ एक-दूसरे को प्रभावित ही नहीं करती, योगदान भी देती हैं। काव्य की भाँति चित्रकला में भी नौ रसों की अभिव्यक्ति मानी गयी है। अतः जिस प्रकार काव्य ने रस सिद्धान्त को महत्व दिया है, उसी प्रकार अन्य ललित कलाओं ने भी रस को महत्वपूर्ण माना है। साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है लय। इसी प्रकार एक श्रेष्ठ चित्र में लयात्मकता की उपस्थिति आवश्यक है।

भाव ललित कलाओं का आधारभूत तत्व है। भाव के बिना तो किसी भी कला की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। काव्य के आधार पर यदि चित्र बनता है तो चित्र के अध्ययन में भी सुविधा रहती है। चित्र के प्रेक्षण से काव्य का भाव तो सहज ही हो जाता है।

सारांशतः भाव दोनों कलाओं (चित्रकला और साहित्य) के सम्बन्ध का पोषक है। चित्रकला का साहित्य से व साहित्य का चित्रकला से आन्तरिक सम्बन्ध है। उदाहरणार्थ- जब भी हम कोई कहानी या घटना पढ़ते या सुनते हैं तो उसके साथ ही साथ उस घटना अथवा कहानी का क्रमबद्ध चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित होता जाता है और हम अपने अन्तःचक्षुओं द्वारा उन सभी दृश्यों को प्रत्यक्ष देख लेते हैं। इस प्रकार हम जान सकते हैं कि दोनों (चित्रकला और साहित्य) एक दूसरे के अस्तित्व के प्रेरक व पोषक हैं। जीवन के किसी भी क्षण हम चित्रकला और साहित्य की उपस्थिति को नकार नहीं सकते। जीवन का हर पल यदि चित्रकला के रंग से सराबोर है, तो साहित्य के सुवर्णों से सुसज्जित-

‘कल्पना का नीर लेके, भावों के मेघ उड़े।

अनुभवों की तूलिका से, जीवन का हर चित्र बने।।’

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- 1- डॉ. अविनाश बहादुर वर्मा - भारतीय चित्रकला का इतिहास, प्रकाश बुक डिपो, बरेली।
- 2- डॉ. गोपाल चन्द्र मधुकर चतुर्वेदी - भारतीय चित्रकला, ऐतिहासिक सन्दर्भ, साहित्य संगम, इलाहाबाद।
- 3- डॉ. गिराज किशोर अग्रवाल - कला और कलम, अशोक प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़।

- 4- जय शंकर प्रसाद - काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, प्रसाद प्रकाशन।
- 5- डॉ. जयसिंह नीरज - राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- 6- डॉ. प्रेमा मिश्रा - भारतीय सौन्दर्य शास्त्र एवं ललित कलाएँ, परा प्रकाशन, कानपुर।
- 7- नीहारंजन राय - भारतीय कला का अध्ययन।
- 8- आर. ए. अग्रवाल - कला विलास : भारतीय चित्रकला का विवेचन।



भारतीय ग्रामीण विकास में सूचना एवं संचार तकनीकी का योगदान



— सागर सोनी
असिस्टेंट प्रोफेसर —
राजनीति विज्ञान विभाग,
गवर्नमेन्ट कालेज, लाखेरी—
323603, बूँदी, (राजस्थान)

ई. मेल—
ssagarsoni18507@gmail.com

सारांश

वर्तमान में भारतीय ग्रामीण विकास में सूचना एवं संचार तकनीकी का प्रमुख योगदान है। आज आम बोलचाल में भी कुछ न कुछ राजनीतिक व अन्य गतिविधियों से सम्बन्धित बातचीत होती रहती है। सही जन प्रतिनिधियों का चयन मतदान व्यवहार त्रुटिपूर्ण न हो इसके लिए सूचना एवं संचार तकनीकी में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। रेडियो, टी.वी., कम्प्यूटर, मोबाइल, नेट समाचार पत्र—पत्रिकाओं इत्यादि में लोगों में राजनीतिक जागरुकता लाते हैं। साथ ही ई. वी. एम. मशीन नवीन प्रकार के संचार साधनों का प्रयोग कर राजनीति जागरुकता उत्पन्न करने में सहायक है।

आज के भारतीय ग्रामीण विकास के उभरते हुये स्वरूप में सूचना एवं संचार तकनीकी का महत्वपूर्ण स्थान है। कुछ दशकों से प्रौद्योगिकी ने हरसंभव मार्ग से हमारे जीवन को पूरी तरह बदल दिया है। भारत एक सफल सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी से सज्जित राष्ट्र होने के नाते सदैव सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के अत्यधिक उपयोग पर बल देता रहा है। न केवल अच्छे शासन के लिए बल्कि अर्थव्यवस्था के विविध क्षेत्रों जैसे स्वास्थ्य, कृषि और शिक्षा आदि के लिए भी।

(1) स्वास्थ्य के क्षेत्र में योगदान — सूचना एवं संचार तकनीकी ने स्वास्थ्य के क्षेत्र में अति महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वर्तमान समय में जैसे— ई—एम्बुलेंस सेवा, ई—मेडिसिन एवं आधुनिकतम पैथोलॉजी की मशीनें तथा आपरेशन की नवीन आधुनिक विधियाँ इत्यादि आज वर्तमान समय में स्वास्थ्य हित लाभ के लिए मानव इन समस्त सुविधाओं को प्राप्त कर रहा है। आज मोबाइल सेवा के द्वारा ही इलाज की सुविधा हेतु डाक्टरों से सम्पर्क करके दवाओं की जानकारी प्राप्त कर सकता है।

(2) शिक्षा के क्षेत्र में योगदान— सरकारी एवं गैर सरकारी क्षेत्रों में हाल के वर्षों में इस बात में काफी रुचि रही है कि सूचना और संचार प्रौद्योगिकी को शिक्षा के क्षेत्र में कैसे उपयोग किया जा सकता है। शिक्षा के क्षेत्र में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदानों में से एक है संसाधनों की सार्वभौमिक पहुँच। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की सहायता से छात्र अब ई—पुस्तकें, परीक्षा के नमूने वाले प्रश्न पत्र, पिछले वर्षों के प्रश्न पत्र आदि देखने के साथ संसाधन व्यक्तियों, मेंटोर, विशेषज्ञों, शोधकर्ताओं, व्यावसायिकों और साथियों से



दुनिया के किसी भी कोने पर आसानी से संपर्क कर सकते हैं।

किसी भी समय—कहीं भी, सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की सर्वाधिक अनोखी विशेषता यह है कि इसे समय और स्थान में समायोजित किया जा सकता है। इसे ध्यान में रखते हुए सूचना और संचार प्रौद्योगिकी ने असमामेलित अधिगम्यता (डिजिटल अभिगम्यता) को संभव बनाया है। अब छात्र किसी भी समय अपनी सुविधानुसार ऑनलाइन अध्ययन पाठ्यक्रम सामग्री को पढ़ सकते हैं। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी आधारित शिक्षा आपूर्ति (रेडियो और टेलिविजन पर शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रसारण) से सभी सीखने वाले और अनुदेशक को एक भौतिक स्थान पर होने की आवश्यकता समाप्त हो जाती है।

जब से सूचना और संचार प्रौद्योगिकी को एक शिक्षण माध्यम के रूप में उपयोग किया गया है, इसने एक त्रुटिहीन प्रेरक साधन के रूप में कार्य किया है, इसमें वीडियो, टेलिविजन, मल्टीमीडिया कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर का उपयोग शामिल है जिसमें, ध्वनि और रंग निहित हैं। इससे छात्र सीखने की प्रक्रिया में गहराई से जुड़ते हैं। बाल जगत—मल्टीमीडिया सामग्री के विभिन्न भाग विज्ञान खण्ड आदि रचनात्मक सोच और सीखने की प्रक्रिया में बच्चों में सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित करते हैं। इसी तरह के अन्य उदाहरणों को इस भाग में प्रस्तुत किया गया है।

(3) सड़कों के सुधार में योगदान— सड़कें एक शहर को दूसरे शहर से जोड़ने का सफल माध्यम है और इस प्रकार एक शहर से दूसरे शहर के जुड़ने से आयात निर्यात, आवागमन सुलभ हो जाता है। सूचना एवं संचार तकनीक ने इसमें अहम भूमिका निभायी है। इसके माध्यम से प्रमुख राष्ट्रीय राजमार्गों के रखरखाव के लिए टोल टैक्स प्रणाली लागू की गयी। सड़कों के निर्माण के लिए नई तकनीक की आधुनिक मशीनों का उपयोग किया जा रहा है साथ ही उनके नवीनीकरण में उत्कृष्टता का ध्यान रखा जा रहा है।

(4) बिजली संरक्षण में योगदान— गाँधी जी ने कहा था कि पृथ्वी हर आदमी की जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त प्रदान करती है, लेकिन हर आदमी के लालच को पूरा करने के लिए नहीं। ऊर्जा संरक्षण की आवश्यकता को नीचे दिये गये तथ्यों द्वारा उल्लिखित किया गया है—

हम ऊर्जा का उपयोग उसके उत्पादन करने से ज्यादा तेजी से करते हैं— कोयला, तेल और प्राकृतिक

गैस—सबसे अधिक उपयोग में आने वाले हैं जिनका वर्तमान स्वरूप हजारों सालों के बाद विकसित हुआ है। ऊर्जा संसाधन सीमित हैं— भारत में दुनिया की आबादी 16% है और दुनिया के ऊर्जा संसाधनों का लगभग 1% भाग पाया जाता है।

अधिकतर ऊर्जा स्रोतों को न तो पुनः उपयोग में लाया जा सकता है और न नवीनीकृत किया जा सकता है। गैर अक्षय ऊर्जा स्रोतों का ईंधन उपयोग में हिस्सा 80% हैं। इसीलिए ऐसा कहा गया है कि अगले 40 सालों में हमारे ऊर्जा के सभी स्रोत समाप्त हो सकते हैं।

हम ऊर्जा की बचत करके अपने देश की बहुमूल्य मुद्रा की बचत करते हैं। लगभग 75 प्रतिशत अपनी जरूरतों का कच्चे तेल आयात से पूरा करते हैं। इस आयात की कुल मूल्य प्रति वर्ष भारतीय रुपयों में लगभग 50,000 करोड़ रुपये तक होता है।

सामान्यतौर पर भारत में उपयोग में लाये जा रहे लैंप, बल्ब एवं अन्य उपकरणों द्वारा अधिक ऊर्जा खपत करने के कारण, आज लगभग 80 प्रतिशत बिजली बेकार चली जाती है। कॉम्पैक्ट फ्लूरोसेन्ट लाइट (सी.एफ.एल.) बल्ब का उपयोग कर हम बिजली की लागत में बचत कर सकते हैं। सीएफएल साथ ही, परम्परागत बल्ब की तुलना में पाँच गुणा अधिक प्रकाश देता है। इस प्रकार, ऊर्जा संरक्षण कर एवं बिजली खपत में बचत कर, हम उन गाँवों तक बिजली पहुँचाने में मदद कर सकते हैं। जहाँ आज तक बिजली नहीं पहुँची है।

(5) जल संरक्षण में योगदान — प्रधानमंत्री ने अपने रेडियो कार्यक्रम मन की बात में बढ़ते सूखे के बीच जल और जलाशय संरक्षण की बात कही है। इसके लिये उन्होंने मीडिया से भी सहयोग मांगा। इसी प्रकार मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री ने भी दिल्ली में चौथे जल सप्ताह कार्यक्रम को सम्बोधित करते हुए कहा कि जलसंरक्षण और संवर्धन की दिशा में बेहतर परिणामों के लिये बच्चों को शुरू से ही इस विषय में शिक्षित और जागरूक करने की जरूरत है।

संचार और जल दोनों ही की अनिवार्य आवश्यकताएं हैं। सतही जल की अल्पमात्रा के बावजूद पौने सहित तमाम घरेलू उपयोग, खेती, औद्योगिक इस्तेमाल और अन्य उपयोग के लिये मनुष्य इसी जल पर निर्भर है। संचार माध्यमों की पहुँच और प्रभाव क्षमता असीमित हैं। इसका उपयोग नकारात्मक और सकारात्मक दोनों



उद्देश्यों के लिये किया जाता है। सामान्यतः संचार माध्यमों का उपयोग सूचना, शिक्षा और मनोरंजन के लिए किया जाता है। मीडिया के कारण व्यक्ति की आदतों, इच्छाओं, व्यवहारों और आकांक्षाओं, सामाजिक रूपों तथा विभिन्न संस्थाओं की नीतियों में तेजी से परिवर्तन दिखाई दे रहा है।

संचार माध्यमों के जरिये इतनी अधिक सामग्री होने के बावजूद जल से जुड़ी समस्याएँ विकराल रूप ले रही हैं। जल से जुड़ी प्रचार सामग्री बढ़ रही है, किन्तु मनुष्य के उपयोग के लिये जल लगातार कम हो रहा है। जल से जुड़े भारतीय मूल्यों की स्थापना और शिक्षा की बजाये मीडिया पश्चिमी मूल्य और व्यापारिक हितों की शिक्षा दे रहा है। मीडिया सामाजिक समस्याओं का निदान न देकर, बाजार और मनोरंजन उद्योग का साधन बन रहा है। यह सब राष्ट्रीय योजना समिति (1948) की उन सिफारिशों के खिलाफ है, जिसके तहत विकासमूलक संचार की अवधारणा प्रस्तुत की गई थी। भारत में इसी अवधारणा के तहत आकाशवाणी और दूरदर्शन को विकासमूलक संचार माध्यम के तौर पर विस्तार दिया गया था। लेकिन आज ये माध्यम अपने दायित्वों से विमुख हो गये प्रतीत होते हैं। संचार माध्यम भारत की अर्थव्यवस्था और सामाजिक विकास की नहीं, अपितु बाजार और मनोरंजन उद्योग की रीढ़ बन गये हैं। जन माध्यम का उपयोग लोगों की जीवन शैली और जीवन मूल्य बदलने के लिये हो रहा है।

(6) सांस्कृतिक विकास में योगदान— औद्योगिक क्रांति के साथ समाज में जन-उत्पादन, जन-सेवा, जनसंचार, जन-परिवाहन और बाजार के नए रूपों का जन्म हुआ। उत्पादन का क्षेत्र फैक्ट्री थी। उसमें अवस्थित मशीन और उपकरण ही सामाजिक उत्पादन के केन्द्र बिन्दु थे। औद्योगिक क्रांति से उपजी आकांक्षाओं ने उपनिवेशों को जन्म दिया। नए महाद्वीपों की खोज को सम्भव बनाया। श्रम विभाजन का विस्तार किया। विशेषीकरण को जन्म दिया। सार्वभौम उत्पादन पर बल दिया। सार्वभौमत्व को अनिवार्य फिनोमिना बना दिया। निजी व्यापार, निजी पूंजी और निजी सम्पत्ति पर बल दिया।

संचार क्रांति और साहित्य के अन्तःसम्बन्ध पर विचार करते समय यह बात ध्यान रखें कि संचार का आदिमरूप स्वयं साहित्य है। संचार क्रांति का अर्थ मात्र

सूचनाओं का संचार करना नहीं है। संचार का अर्थ मानवीय हाव-भाव का संचार करना भी नहीं है। संचार का मतलब है मनुष्य के भावों, विचारों, संवेदनाओं और मानवीय क्रियाओं का व्यक्ति से व्यक्ति की तरफ संचार, यही संचार सम्बन्ध हैं।

संचार क्रांति के वर्तमान दौर में कम्प्यूटर, स्वचालितकरण, सूचना प्रौद्योगिकी, उपग्रह प्रौद्योगिकी और संस्कृति उद्योग का वर्चस्व हैं। साथ ही साहित्य में उत्तर-आधुनिकतावाद इस युग का प्रमुख फिनोमिना हैं।

(7) कृषि विकास में योगदान— कृषि क्षेत्र में उत्पादन वृद्धि के लिए प्रौद्योगिकी हस्तांतरण महत्वपूर्ण है और इस क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी की महत्वपूर्ण भूमिका है। सूचना प्रौद्योगिकी न केवल प्रौद्योगिकी के तेजी से विस्तार के लिए आवश्यक है बल्कि इसके उपयोग से विभिन्न कृषि कार्यों को जल्दी से और आसान तरीके से किया जा सकता है। विश्व बैंक और अन्य शोध संस्थानों के अनुसंधानों ने यह सिद्ध कर दिया कि ऑनलाइन शिक्षा, रेडियो, उपग्रह और दूरदर्शन जैसे आधुनिक सूचना माध्यमों द्वारा कृषि प्रौद्योगिकी का विस्तार करके किसानों की जागरूकता, दक्षता या उत्पादकता में कई गुणा वृद्धि की जा सकती है। आज सूचना प्रौद्योगिकी ने कृषि के हर काम को आसान बना दिया है।

किसान अपने घर बैठे किसान कॉल सेन्टर में 1551 या 18001801551 पर निःशुल्क फोन करके अपनी कृषि समस्या का समाधान पा सकता है। हमारे देश के अधिकतर कृषि व बागवानी विश्वविद्यालयों ने अपने क्षेत्र विशेष की फलों व अन्य फसलों की उत्पादन से संबंधित सभी जानकारियां अपने वेबसाइट पर डाल रखी हैं। जिन्हे किसान इन्टरनेट के माध्यम से घर बैठे अपने कम्प्यूटर पर प्राप्त कर सकते हैं। इन विश्वविद्यालयों के इन वेबसाइटों पर भविष्य में कृषि कार्यों की जानकारी तथा मौसम की जानकारी भी समय समय पर किसानों को नियमित रूप से दी जाती है।

सूचना प्रौद्योगिकी व संचार माध्यमों द्वारा हम कृषि में उल्लेखनीय वृद्धि प्राप्त कर सकते हैं। ये जानकारियाँ हम रेडियो, दूरदर्शन, केबल नेटवर्क, इन्टरनेट, टेलीफोन, मोबाइल फोन व कम्प्यूटर पर चलने वाले विभिन्न 'साफ्टवेयरों' के माध्यम से हम आसानी से व तेजी से प्राप्त कर सकते हैं। रेडियो व दूरदर्शन केन्द्रों में बैठे हुए कृषि विशेषज्ञों से सीधे बात कर सकते हैं और अपनी कृषि



सम्बन्धी समस्याओं का समाधान पा सकते हैं। टेलीफोन से हम किसान कॉल सेंटर पर 1551 नम्बर पर तथा मोबाइल से हम सेंटर के 18001801551 नम्बर पर फोन करके कृषि सम्बन्धी जानकारी मुफ्त प्राप्त कर सकते हैं।

आज कम्प्यूटर द्वारा नियंत्रित मशीनों द्वारा बड़े-बड़े खेतों की जुताई व उन्हे समतल करना, बुवाई करना, निराई-गुड़ाई करना, खाद देना, सिंचाई करना, कीटनाशी व रोगनाशी रसायनों के छिड़काव जैसे कार्य सफलतापूर्वक किये जा रहे हैं। इसके साथ कम्प्यूटर कृषि उत्पादों को डिब्बाबंद करने, बेचने के लिए उपयुक्त मंडियों का चयन करने और मूल्यों का निर्धारण करने में भी सहायता करते हैं। कम्प्यूटर नियंत्रित मशीनों का सब्जियों, फलों व फलों की पॉलीहाऊस के अन्दर होने वाली संरक्षित खेती में महत्वपूर्ण योगदान है। संरक्षित खेती में जहाँ फसलों को पानी, खाद और नमी इत्यादि की मात्रा और समय कम्प्यूटर ही निर्धारित करता है।

(8) पर्यावरण संरक्षण में योगदान— जीवन को निर्मित करने में पर्यावरण मानव अहम भूमिका निभाता है। पर्यावरण मानव-जीवन को आधार प्रदान करता है। पर्यावरण के तत्वों की विद्यमानता से ही पृथ्वी पर जीवन संभव हुआ है। मानव के चारों ओर का वह क्षेत्र, जो उसे घेरे रहता है, उसके जीवन तथा क्रियाओं को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है, पर्यावरण कहलाता है। आधुनिक युग में पर्यावरण के अध्ययन के बढ़ते महत्व को कई बिन्दुओं के परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट किया जा सकता है। जैसे नवीनतम आधुनिक का प्रयोग, अधिक संसाधनों संदोहन, बढ़ती जनसंख्या का भार, नगरीकरण एवं औद्योगीकरण के दोष आदि के कारण, परिणाम एवं निवारण के उपाय खोजने के लिए पर्यावरण का अध्ययन आवश्यक है। प्रकृति स्वतः पर्यावरणीय घटकों में निश्चित अनुपात सदैव बनाए रखने का प्रयास करती है, किन्तु मानव की प्रकृतिरोधी गतिविधियों से इसकी मूल-संरचना में अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ है। फलस्वरूप पर्यावरण की बिगड़ती स्थिति को देखकर समस्त पर्यावरणीय, पर्यावरणविद् तथा अन्य ज्ञानी समाज इसके प्रति चिंतन मनन कर रहे हैं।

आधुनिक सूचना तकनीक ने फ्रेंसिस बेकन के कथन 'Knowledge is power' को सच साबित कर दिखाया। सूचना तकनीक एक ऐसी तकनीक है, जो दुनिया में किसी भी व्यक्ति को किसी भी समय, कहीं भी घटने वाली घटना या प्रसंग के बारे में सम्पूर्ण जानकारी

उपलब्ध कराती है। सूचना तकनीक के जरिए घर बैठे ही पर्यावरण से सम्बन्धित सभी जानकारियाँ आज जैसे किस क्षेत्र में कितना प्रदूषण है, वन्य जीवों की सुरक्षा के क्या इंतजाम हैं।

पर्यावरण सूचना तंत्र के द्वारा पर्यावरण सम्बन्धी सभी जानकारियाँ जैसे- प्रदूषण के उपाय, नवीनीकरण ऊर्जा, मरुस्थलीकरण, जैव विविधता आदि के बारे में जानकारियों को हमेशा के लिए कम्प्यूटर में संग्रहित किया जा सकता है। अतः वर्तमान युग में सूचना तकनीक इतनी विकसित हो गई है कि मानव जीवन का कोई पहलू अब सूचना तकनीक से पृथक नहीं है। सूचना तकनीक आधुनिक युग की सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

(9) राजनीतिक जागरुकता उत्पन्न करने में योगदान— मानव के सार्वभौमिक विकास में राजनीति एक अहम पहलू है और इस पहलू से कोई भी मानव अछूता नहीं है। आज आम बोलचाल में भी कुछ न कुछ राजनीतिक गतिविधियों से सम्बन्धित बातचीत होती रहती है। सही जन प्रतिनिधियों का चयन मतदान व्यवहार त्रुटिपूर्ण न हो इसके लिए सूचना एवं संचार तकनीक में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। रेडियो, टी.वी., कम्प्यूटर, मोबाइल, नेट समाचार पत्र-पत्रिकाओं इत्यादि में लोगों में राजनीतिक जागरुकता लाते हैं। साथ ही ई. वी. एम. मशीन नवीन प्रकार के संचार साधनों का प्रयोग कर राजनीति जागरुकता उत्पन्न करने में सहायक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हाशमी, ए. एच., संचार पुस्तक महल, दिल्ली, पृष्ठ संख्या-7, 1996।
2. वही, दीनोदय, जनवरी, 1981
3. वही, स्नेह, अक्टूबर, 2001
4. पटैरिया, मनोज कुमार, तरंग, माह अक्टूबर, 1997
5. भानावत, डा. संजीव, विकास एवं विज्ञान संचार, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ संख्या-160, 2010
6. Bharat Ki Sampada Science Encyclopedia, Vol. 1, Publications and Information Directorate CSIR, New Delhi.



वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में धर्म—दर्शन एवं सर्वधर्म समत्व की महत्ता



— डॉ. संतोष कुमार सिंह
पूर्व रिसर्च स्कॉलर —
दर्शन शास्त्र विभाग,
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी-221002 (उत्तर प्रदेश)

ई. मेल—
sks8858472381@gmail.com

सारांश

महात्मा गांधी स्पष्ट रूप से कहना चाहते हैं कि किसी व्यक्ति का जन्म तो आकस्मिकता है, किन्तु इस आकस्मिकता के साथ जो परम्पराएं एवं संस्कार जीवन के साथ सम्बद्ध होते हैं, वे जीवन के लिए सार्थक बनते हैं और इन्हें नकारना ठीक नहीं है। अतः अपने संस्कार, अपने जीवन के अनुरूप धर्म के प्रति श्रद्धा और आदर का भाव होना चाहिए। गांधी ने उसी रूप में हिन्दू धर्म का चयन किया और अन्य धर्मों के प्रति सम्मान और सहिष्णुता रखी। विश्लेषण से उन सभी बिन्दुओं एवं अवधारणाओं को रेखांकित किया जा सकता है जो सर्वधर्म समत्व को जाग्रत करने में प्रभावी हो सकते हैं और मानवमात्र को संकीर्ण धार्मिक साम्प्रदायिक सोच से मुक्त कर एक ऐसे विश्व के निर्माण में अग्रसरित हो सकते हैं जिसका मूलाधार परम सत्, प्रेम, करुणा, दया और मैत्री हों। सामान्यतयः इस प्रकार के अवधारणा की आलोचना इसके आदर्श स्वरूप को लेकर होती है और कहा जाता है कि इसकी व्यवहार में कोई प्रासंगिकता नहीं है। किन्तु मेरा मत है कि कोई विचार आदर्श है इसका अभिप्राय यह है कि हमारा प्रयास उस आदर्श की प्राप्ति के लिए व्यावहारिक रूप से सदैव प्रयासरत रहने में है, क्योंकि इसी प्रयास में वस्तुतः सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यावहारिक अवधारणाएं विकसित होती हैं जो आदर्श विचार को ध्यान में रखकर सर्जित होती हैं।

‘धर्म’ आरम्भ से ही मानव सभ्यता का एक अनिवार्य पक्ष रहा है और यह कहना भी अतिशयोक्ति न होगा कि मानवीय जीवन को प्रभावित करने वाले सभी वैश्विक संदर्भों में ‘धर्म’ का स्थान केन्द्रित है। सदियों से मनुष्य धर्म के लक्षण, स्वरूप आदि का निर्धारण विभिन्न दृष्टिकोणों से करता रहा है और इस संदर्भ में अपने विचारों को परिष्कृत एवं परिवर्धित भी करता रहा है, किन्तु वह किसी सर्वमान्य निष्कर्ष पर पहुँच गया हो, ऐसा कहना ठीक नहीं होगा। सामान्यतयः ‘धर्म’ से अभिप्राय संस्थागत धर्म से लिया जाता है, किन्तु यह धर्म की एक संकीर्ण एवं संकुचित व्याख्या है, वस्तुतः ‘धर्म’ हमारे नैतिक आचरण एवं कर्तव्य से सम्बद्ध है और यही व्याख्या व्यापक स्वरूप की कही जा सकती है।

वर्तमान कालखण्ड में धार्मिक सम्प्रदायों की धर्म सम्बन्धी संकीर्ण व्याख्याओं ने विश्व में एक संघर्ष एवं असहिष्णुता के वातावरण का निर्माण कर दिया है। यही वर्तमान परिस्थिति धर्म—दर्शन के उपादेयता को अत्यन्त महत्वपूर्ण बना देती है और ऐसा प्रतीत होता है कि धर्म—दर्शन की



शिक्षा एवं चर्चा प्रत्येक शैक्षणिक स्तर पर की जानी चाहिए क्योंकि ऐसी चर्चा एवं चिंतन से युवा संकीर्ण धार्मिक साम्प्रदायिक विचारों से सावधान रह सकते हैं और सही अर्थों में धार्मिक मूल्यों को आत्मसात् कर सकने की स्थिति में आ सकते हैं। धर्म-दर्शन का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि यह विभिन्न धार्मिक मूल्यों का तटस्थ विश्लेषण एवं विवेचन कर सभी धर्मों में एक समन्वय स्थापित करने का प्रयास करता है, वह अपने विश्लेषण से यह स्पष्ट कर देता है कि वस्तुतः सभी धर्मों का लक्ष्य एक ही है, अन्तर मात्र साधना पक्ष एवं क्रिया पद्धति को लेकर है। स्पष्ट है कि धर्म-दर्शन विभिन्न धर्मों के मध्य पार्थक्य को समाप्त कर सर्व-धर्म समत्व का मार्ग प्रशस्त करता है। इसकी उपादेयता इस सन्दर्भ में भी है कि वर्तमान युग विज्ञान का युग है और आज प्रत्येक मनुष्य सभी संदर्भों एवं तथ्यों का बौद्धिक एवं तार्किक विवेचना करना चाहता है और धर्म-दर्शन सहजता से इसे कर सकने में समर्थ है।

जैसा कि पूर्व में भी स्पष्ट किया जा चुका है कि वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में धार्मिक विवाद और संघर्ष अपने चरम पर है। अभी हाल में ही इजराइल पर हुए अतितादियों के अमानवीय हमले एवं इजराइल के प्रतिक्रिया से सम्पूर्ण गाजा क्षेत्र में मानवीय क्रूरता का वीभत्स रूप सम्पूर्ण विश्व ने देखा हैं। पुनः इजराइल द्वारा ईरान पर किया गया व्यापक आक्रमण और ईरान का इजराइल पर प्रति-उत्तर के रूप में प्रतिक्रिया एकदम जीवन्त उदाहरण है। यह सभी चर्चित घटनाक्रम के मूल में 'धर्म' सम्बन्धी विवाद है। इसी प्रकार 22 अप्रैल, 2025 को कश्मीर के पहलगाम में हुआ आतंकी घटनाक्रम भी, जहाँ लोगों को उनका धर्म पूछकर मौत के घाट उतार दिया गया, इसका जीवन्त उदाहरण है। ऐसे धार्मिक साम्प्रदायिक उन्मादी वातावरण में धर्म-दर्शन की महत्ता स्पष्ट प्रतीत होती है क्योंकि धर्म-दर्शन एक महत्वपूर्ण कार्य करता है जिससे सभी धर्मों में पारस्परिक समभाव एवं समन्वय का मार्ग प्रशस्त होता है और वह है, सभी धर्मों के समान तत्वों का विवेचन। यदि इन समान तत्वों का विश्लेषण एवं व्याख्या स्पष्ट रूप से हो तो अत्यन्त सहजता से धार्मिक उन्माद एवं संघर्ष सम्बन्धी समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है। यही प्रयास इस आलेख के माध्यम से किया जा रहा है।

धर्म चेतना और इसका विषय सभी प्रकार के अन्य चेतनाओं से भिन्न एवं विलक्षण होता है। यही कारण है कि

यदि मनुष्य इस विलक्षण धर्म-चेतना तक स्वयं को सीमित रखे और इसके विषय परम सत् पर ध्यान केन्द्रित करें तो विभिन्न धर्मों के नानात्व का आधार समाप्त हो जाएगा। किन्तु वस्तुस्थिति यह होती है कि सभी संस्थागत धर्म परम सत् के प्राप्ति के स्थान पर उनके स्वरूप के विभिन्न चित्रण अथवा प्रतीकों की आराधना एवं पूजा में लगे रहते हैं और इसी आधार पर विभिन्न धर्मों का अस्तित्व सम्भव हो पाता है। यही यह महत्वपूर्ण प्रश्न हमारे समक्ष आता है कि विभिन्न धर्मों के समान तत्व क्या हैं? इस प्रश्न पर गहन विश्लेषण एवं चिंतन से स्पष्ट होता है कि सभी धर्मों के समान तत्वों में से एक सामान्य विषय तो परम ही है। जिसके संदर्भ में यही कहा जा सकता है कि वह है, परन्तु उसका स्वरूप एवं गुण क्या है, इस संदर्भ में स्पष्ट रूप से कुछ भी कहना सम्भव नहीं हैं। उदाहरण स्वरूप इसाई धर्म के मूल ग्रन्थ बाइबिल में परम सत् के विषय में लिखा गया है कि 'मैं जो हूँ सो हूँ', अर्थात् मेरा स्वरूप वर्णनातीत है। भारतीय परम्परा के अनुसार भी ब्रह्म परम सत् है और यह अनिवचनीय एवं वर्णनातीत है। ब्रह्म का साक्षात्कार ब्रह्मविद् होकर ही हो सकता है।¹ जिस प्रकार एक गूंगा व्यक्ति मिष्ठान का स्वादन कर उसके स्वाद का वर्णन नहीं कर पाता है, ठीक उसी प्रकार ब्रह्मविद् होकर भी उसका वर्णन वाणी द्वारा करना सम्भव नहीं। इसी प्रकार का मत परम सत् के विषय में बौद्धमत का भी है। नागसेन ने राजा मिलिन्द को बताया कि 'निर्वाण' के संदर्भ में भाषा मौन हो जाती है। जब राजा मिलिन्द ने बहुत अनुरोध किया तो नागसेन ने उपामय भाषा का प्रयोग करते हुए कहा कि निर्वाण आकाश के समान विशाल, समुद्र के समान गहरा और मधु के समान मीठा है।²

इसी परमतत्व के आधार पर विश्व-धर्म स्थापित हो सकता है, किन्तु आवश्यकता है कि परम सत् के मूल स्वरूप की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित कराया जाए। किन्तु ऐसा प्रयास नहीं किया जा रहा है। यह तथ्य भी यहाँ रखना आवश्यक है कि सत्यता एवं असत्यता का प्रश्न यहाँ प्रासंगिक नहीं है, क्योंकि यह प्रश्न तो ऐसे तथ्य के संदर्भ में प्रासंगिक होता है जो इन्द्रियग्राह्य हो। अतः धार्मिक सम्प्रत्यय न सत्य है और न असत्य। व्यक्तिगत रूप से धर्म शान्तिदायक होते हैं, व्यक्ति को पूर्ण तथा नैतिक बनाने में सहायक होते हैं और यही कारण है कि धर्म विहिन व्यक्ति सामान्य रूप से व्याकुल, संकीर्ण, कठोर और अनुदार हो जाता है।



पुनः इसी प्रकार प्रेम, करुणा, दया, मैत्री भी सभी धर्मों के समान तत्व के रूप में अनेक समकालीन दार्शनिकों द्वारा रेखांकित किए गये हैं। यथा— डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गांधी, डॉ. भगवान दास आदि। ये सभी सम्प्रत्यय (दया, करुणा, प्रेम) मानवीय आचरण को गहन रूप से प्रभावित करते हैं और इसमें कोई संदेह नहीं है कि सम्पूर्ण मानव जाति का निर्माण इन्हीं सम्प्रत्ययों से हुआ है। यद्यपि यह सत्य है कि घृणा और क्रोध आदि नकारात्मक सम्प्रत्ययों की तीव्रता अत्यधिक होती है? इसलिए ये प्रभावी दिखाई देते हैं, किन्तु सम्पूर्ण मानव जाति दया, करुणा और प्रेम के भाव से ही संचालित हो रही है और इसका जीवन्त प्रमाण है कि इतनी घृणा और संघर्ष के उपरान्त भी यह मानव सभ्यता सदियों से चली आ रही है और आगे भी चलती रहेगी। इस व्याख्यायित संदर्भ का स्पष्ट व्यावहारिक उदाहरण अभी हाल के वर्षों में स्पष्ट रूप से रेखांकित किया जा सकता है। अभी पिछले कुछ वर्ष पूर्व जब 'कोरोना' महामारी ने मानव जाति पर संकट उत्पन्न किया तब सम्पूर्ण मानव जाति दया, करुणा और प्रेम से ही संचालित हुई और बिना किसी भेदभाव के मानव मात्र की रक्षा के लिए सम्पूर्ण विश्व एकजुट होकर अपने कर्तव्य पालन में लग गया तथा इस संकट का साहस के साथ सफलतापूर्वक सामना किया। इसी प्रकार विश्व के किसी देश पर जब कोई प्राकृतिक संकट आता है तो भी यही भाव हमें मानव मात्र की सेवा के लिए प्रेरित करता है।

अब यदि धर्म के इन तत्वों की विवेचना समकालीन दार्शनिकों के परिप्रेक्ष्य में किया जाए तो स्वामी विवेकानन्द का यह विचार महत्वपूर्ण हो जाता है जहाँ वे मानव के आध्यात्मिक पक्ष को उसका केन्द्रिय पक्ष स्वीकार करते हैं और 'प्रेम' को ईश्वर का तात्त्विक लक्षण मानते हैं। उनका कहना है कि 'प्रेम' द्वारा ही मानव को पारस्परिक लगाव (तात्त्विक) की अनुभूति होती है और यही मानव जाति के एकत्व भाव के मूल में है।¹ इसी प्रकार महात्मा गांधी ने 'ईश्वर' को 'प्रेमरूप' कहते हैं वे स्पष्ट कहते हैं कि प्रेम के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा मार्ग नहीं है जिससे ईश्वरत्व की अनुभूति हो सके। गांधी के अनुसार— प्रत्येक व्यक्ति में ईश्वरत्व का अंश है और इसी कारण प्रत्येक व्यक्ति प्रेम की शक्ति से युक्त है तथा यही पारस्परिक मानवीय लगाव का भी आधार है। वे स्पष्ट कहते हैं कि प्रेमशक्ति को विकसित कर अन्य की प्रेम शक्ति को स्पर्श

किया जा सकता है।

इसी प्रकार डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने 'गहन प्रेम' की अवधारणा की स्पष्ट किया है।¹ उनके अनुसार— इस प्रकार के प्रेमानुभूति में हम अपने से या अपने वातावरण से ऊपर उठ जाते हैं और उसमें एक प्रकार से खो जाते हैं। जब भी मनुष्य कोई श्रेष्ठ कार्य करता है तो उसे कुछ इस प्रकार की अनुभूति होती है। माँ के वक्षस्थल से लगे शिशु, अनपढ़ व्यक्ति का सितारों को देखना, एकान्त शान्त वातावरण इन सभी में शाश्वत प्रेम की रहस्यानुभूति होती है। पुनः इस प्रकार के अनुभूति में एक प्रकार के शान्ति का अनुभव होता है। इस प्रकार के शान्त प्रेमानुभूति को स्पष्ट करते हुए राधाकृष्णन कहते हैं कि "It is a positive feeling of calm and confidence Joy and strength in the midst of outward pain and defeat."⁵

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि 'प्रेम' उन सम्प्रत्ययों में सर्व प्रमुख है जो सर्वधर्म समभाव एवं समत्व के अवधारणा को सर्जित करता है और सामान्य विवेचना से भी यह संदर्भ अविवादित और सर्वमान्य प्रतीत होता है। यह सभी संस्थागत और गैर संस्थागत धर्म के मूल में स्थित भाव है, यह भाव इतना वृहद् और व्यापक है कि यह मानव सीमा के परे प्रत्येक जीव के प्रति दया और करुणा का भाव रखने के लिए प्रेरित करता है। सनातन धर्म को विशेष रूप से इस संदर्भ में महत्ता दी जा सकती है जो कहता है कि इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सभी जीव सुखी और निरोगी रहें। (सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयः)। यह 'प्रेम' का परमरूप है जो सभी जीवों के प्रति कल्याण और करुणा का भाव रखती है। बिना 'प्रेम' के सम्प्रत्यय के सर्वधर्म समभाव की कल्पना करना सम्भव नहीं है। इसी सन्दर्भ में विवेकानन्द द्वारा उल्लेखित 'स्वीकृति' का संदर्भ भी महत्वपूर्ण है, जैसा कि सामान्यरूप से सर्वधर्म समभाव के संदर्भ में 'सहिष्णुता' की अवधारणा को महत्व दिया जाता है, किन्तु यह अवधारणा एक निषेधात्मक सन्दर्भ प्रस्तुत करती है और यही कारण है कि विवेकानन्द ने सर्वधर्म सम भाव एवं सार्वभौम धर्म के संदर्भ में 'स्वीकृति' को महत्व दिया है जो एक स्वीकारात्मक अवधारणा है और यह अवधारणा यह स्पष्ट करती है कि 'प्रेम' ही 'स्वीकृति' के भाव को उत्पन्न कर सकती है न कि कोई अन्य सप्रत्यय।⁶

इसी प्रकार 'दया' और 'करुणा' भी धर्म का मूल लक्षण है और 'प्रेम' से ही अन्तः सम्बन्धित है क्योंकि 'प्रेम' भाव के बिना 'दया' और 'करुणा' का भाव नहीं हो सकता



है। सभी धर्मों के मूल में 'दया' और 'करुणा' का भाव अवस्थित है, वस्तुतः यही वे भाव हैं जो सर्वधर्म समभाव एवं समत्व के अवधारणा को सुदृढ़ करता है और एक ऐसे विश्व और समाज की कल्पना करता है जहाँ किसी भी प्रकार के संघर्ष, हिंसा, वैमनस्य और क्रूरता का कोई स्थान न हो और सभी एक दूसरे से प्रेमपूर्वक बिना किसी कटुता के सह अस्तित्ववान होते हुए अपने-अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने का अवसर प्राप्त कर सकें।

विवेकानन्द से इतर महात्मा गांधी ने स्पष्ट रूप से सहिष्णुता को सर्वधर्म समत्व के मूल में स्वीकार किया है। उनका स्पष्ट मत है कि 'धर्म' हमें जीने का मार्ग देते हैं और हम अपने जीने के मार्ग को चुनने के लिए स्वतंत्र हैं। स्पष्ट है कि हमारी स्वतंत्रता की सीमा वही समाप्त होती है जहाँ से अन्य के स्वतंत्रता की सीमा आरम्भ होती है। यहाँ कहने का तात्पर्य है कि हमें दूसरे धर्म के प्रति सहिष्णु एवं आदर का भाव होना चाहिए। इसी संदर्भ में महात्मा गांधी 'विवेकपूर्ण औचित्य' की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं जिसका अभिप्राय है कि विभिन्न धर्मों को अपने आचरण में विवेकपूर्ण औचित्य की सीमा का पालन करना चाहिए। उन्हें इसका पूर्ण विश्वास है कि विभिन्न धर्मों में स्वतः तय किया हुआ यह विवेकपूर्ण नियंत्रण धार्मिक व्यवहारों के अंधानुकरण पर रोक लगा पाएगा और यही विभिन्न धर्मों के प्रति सहिष्णुता, सहयोग तथा आदर के लिए स्थान बन सकेगा। वे यहाँ तक कहते हैं कि विभिन्न धर्मों का इस प्रकार का सहअस्तित्व ही 'ईश्वरीय राज्य' की स्थापना कर पाएगा। महात्मा गाँधी अपने विचारों में स्पष्ट रूप से 'धर्म' और 'सम्प्रदाय' का भेद करते हैं। उनका मत है कि धार्मिक संस्था तथा सम्प्रदाय में धर्म की विशिष्टता के स्थान पर कुछ ऐसे सन्दर्भों पर महत्व दिया जाता है जो उस 'धर्म' के व्यक्ति संगत मान्य संदर्भों को भी अंधविश्वास में बदल देते हैं। एक उदाहरण द्वारा इसे समझने का प्रयत्न करते हैं। ईसाई धार्मिक सम्प्रदाय ने 'ईसा' के चरित्र को ऐसे व्याख्यायित किया है कि वे एक ऐतिहासिक व्यक्ति मात्र रह जाते हैं। किन्तु उनके मतानुसार 'ईसा' के जीवन की धार्मिक विशिष्टता यह है कि 'सलीब पर टंग' जाने वाले ईसा की हम स्पष्ट अनुभूति कर सकें। इसी संदर्भ में उनका वक्तव्य है कि— 'God did not bear the cross only 1900 years ago, but he bears it today, and he dies and is resurrected from day to day. It would be poor comfort to the world if had to depend upon a

historical god who died 2000 years ago. Do not then preach the god of history, but show him as he lives today through you.'⁷

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि महात्मा गांधी स्पष्ट रूप से कहना चाहते हैं कि किसी व्यक्ति का जन्म तो आकस्मिकता है, किन्तु इस आकस्मिकता के साथ जो परम्पराएं एवं संस्कार जीवन के साथ सम्बद्ध होते हैं, वे जीवन के लिए सार्थक बनते हैं और इन्हें नकारना ठीक नहीं है। अतः अपने संस्कार, अपने जीवन के अनुरूप धर्म के प्रति श्रद्धा और आदर का भाव होना चाहिए। गाँधी जी ने उसी रूप में हिन्दू धर्म का चयन किया और अन्य धर्मों के प्रति सम्मान और सहिष्णुता रखी।

अन्ततः स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि विश्लेषण से उन सभी बिन्दुओं एवं अवधारणाओं को रेखांकित किया जा सकता है जो सर्वधर्म समत्व को जाग्रत करने में प्रभावी हो सकते हैं और मानव मात्र को संकीर्ण धार्मिक साम्प्रदायिक सोच से मुक्त कर एक ऐसे विश्व के निर्माण में अग्रसारित हो सकते हैं जिसका मूलाधार परम सत्, प्रेम, करुणा, दया और मैत्री हो। सामान्यतया इस प्रकार के अवधारणा की आलोचना इसके आदर्श स्वरूप को लेकर होती है और कहा जाता है कि इसकी व्यवहार में कोई प्रासंगिकता नहीं है। किन्तु मेरा मत है कि कोई विचार आदर्श है इसका अभिप्राय यह है कि हमारा प्रयास उस आदर्श की प्राप्ति के लिए व्यावहारिक रूप से सदैव प्रयासरत रहने में है, क्योंकि इसी प्रयास में वस्तुतः सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यावहारिक अवधारणाएं विकसित होती हैं जो आदर्श विचार को ध्यान में रखकर सर्जित होती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शारीरिक भाष्य, 2, 1, 14।
2. मिलिन्दपंथो, 4, 67 से 83 तक।
3. Complete Works, Vol-I, Page- 141.
4. An idealist view of life, Page- 93.
5. An idealist view of life, Page- 92-93.
6. Jnana yoga, p 379
7. Young India, 11-8-1927.



पुरुष सत्ता के आइने में 'वराह मिहिर' (नेपथ्य राग के विशेष सन्दर्भ में)



— लिजी जोसेफ टी.
शोथार्थी – हिन्दी विभाग,
महाराजास कॉलेज,
एर्णाकुलम-682011 (केरल)

ई. मेल—
lijitony80@gmail.com

सारांश

पुरुष वर्चस्व का मूर्तव्य भाव 'वराह मिहिर' के ऊपर डालकर नाटककार नाटक समाप्त करती है। सच में पुरुष वर्चस्व के कारण औरतें सदियों से उत्पीडन का शिकार होती जा रही है। अतः स्त्री सदियों से अपनी अस्मिता को खोजकर इधर-उधर घूम रही है। मीरा कांत के 'नेपथ्य राग' के जरिए पुरुष वर्चस्व के प्रत्यक्ष भाव के रूप में वराह मिहिर की प्रस्तुति बहुत प्रशंसनीय है।

मीरा कांत समकालीन हिन्दी साहित्य की सशक्त महिला रचनाकारों में एक हैं। उनकी कृतियों में 'नेपथ्य राग' एक गहन और प्रभावशाली नाटक के रूप में उभरता है। यह नाटक स्त्री विमर्श के उस ऐतिहासिक परिदृश्य को उजागर करता है, जिसमें पितृसत्तात्मक सोच और मूल्यों की जड़ें गहराई तक फैली हुई हैं। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को हर कदम पर शोषण और असमानता का सामना करना पड़ता है।

'नेपथ्य राग' का एक केन्द्र पुरुष पात्र है 'वराह मिहिर'। चौथी-पाँचवीं शताब्दी के समृद्ध सांस्कृतिक परिवेश में, मालवगण नायक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के नवरत्नों में एक प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य 'वराह मिहिर' पुरुष वर्चस्वी विचार धारा से युक्त एक घने पात्र की तरह नाटक में झलकते हैं। अपने काका सुबन्धु भट्ट की सहायता से नाटक की नायिका 'खना' वराह मिहिर को अपने गुरु के रूप में प्राप्त करने की कोशिश करती है। उसकी विलक्षण बुद्धि और एकनिष्ठ जिज्ञासा को जानकर भी वे अपने पुरुष मेधावी विचार से भरकर कहते हैं— '(अचम्भित होकर) ज्ञान मार्गी! उनके लिए सामान्य जीवन का त्याग करना पड़ता है। नहीं ज्ञान के साथ निभ नहीं पाता है सामान्य जीवन।'¹

यानि इनके ये कहने का मतलब यह है कि एक स्त्री के लिए सामान्य जीवन ही काफी है। एक ज्ञानमार्गी जीवन जीना नारी के लिए अप्राप्य है। ऐसा ही विचार से भरा वराह मिहिर बाद में उनकी दक्षता को जानकर खना को आशीर्वाद देने तैयार भी होते हैं — 'पुत्री, तुम्हारे ललाट की रेखाओं को जितना पढ़ पाया हूँ.... वे कहती हैं कि तुम्हारी वाणी कहावतों की तरह मौखिक कविता बन जाएगी। जनमानस में फैलकर अमर हो जाएगी। जब तक पृथ्वी पर सूर्य रहेगा, तुम पर गुरु की अक्षय



अनुकम्पा रहेगी।² लेकिन पुत्रवधु के रूप में स्वीकार करने का अवसर मिला तो उनके अंदर का पुरुष वर्चस्व विचार उभरकर आता है। इसलिए वे अपने पुत्र पृथुयशस से कहते हैं – 'गृहस्थ शास्त्रार्थ न भी सही परन्तु... तुम दोनों एक ही मार्ग के पथिक हो। उसे उसी मार्ग पर अपने से आगे निकलना देखने का साहस जुट पाओगे? जानते हो उसके ग्रह.....।'³

इन शब्दों में साफ रूप से यह सत्य खोलता है 'वराह मिहिर' काफी चिंतित है कि आगे चलकर खना अपने पुत्र से बहुत आगे पहुँचेगी। इस डर से ही वे अपने पुत्र से इस तरह कहकर समझाने की कोशिश करते हैं। मीरा कांत इसके द्वारा समाज के पुरुष मानसिकता ही खोलकर दिखाती है। परिवार में हमेशा पुरुष ही नियंत्रक बनना चाहता है। पुरुष के ऊँचे स्थान पर स्त्री का पहुँचना तो पुरुष समाज के लिए स्वीकार्य नहीं। इसलिए उनके प्रतिनिधि के रूप में 'वराह मिहिर' को नाटककार ने प्रस्तुत किया।

सत्य की बात यह है कि परिवार के हर महत्वपूर्ण फैसला पुरुष ही लेते हैं। स्त्री तो बस उनके अनुगामी बनती है। यह समाज भी यही चाहता है। सदा एक स्त्री का ज्ञान एवं शिक्षा को घरेलू अलंकार बनाकर रखना ही मर्द चाहता है। वराह मिहिर का वचन भी इसके लिए साक्षी है – नाटक में अपनी पुत्रवधु से वराह मिहिर इस तरह कहते हैं – 'देखता हूँ घरेलू दायित्यों और स्वाध्याय का अच्छा संतुलन है यह खना।'⁴ यहाँ प्रशंसन के जरिए औरत को सीमित परिधि में रखने के पुरुष षड्यंत्र का परिचय मिलता है।

जब खना को उनके ससुर का साथ चाहिए था तब अपने पुरुष वर्चस्व भावना ही उन्हें पीछे हटा दिया। यानि 'वराह मिहिर' भी विक्रमादित्य के नवरत्नों के साथ एकजुट होकर सत्ता में स्त्री के प्रवेश पर बंदिश डाला। इस तरह वराह मिहिर स्वयं ही तटस्थता के साथ, इस षड्यंत्र का एक सक्रिय कारण बनते हैं। यह करते समय उनको आत्मग्लानी का अनुभव होता है। लेकिन अपने मन को ही वंचित करके पुत्रवधु के विरुद्ध निर्णय लेने में उनका पुरुष मेधावी भाव ही साथ दिया। नाटक के अन्त में वराह मिहिर के जरिए ही नाटककार सम्पूर्ण पुरुष कुल के विचार का निर्यण सुना दिया – 'विक्रमादित्य के नवरत्नों को सभा में जिह्वाविहीन स्त्री सभासद चाहिए।'⁵ एक औरत का इस

रूप से तिरस्कार वास्तव में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में, पहले से आज तक सहती आ रही शाश्वत सत्य की ओर हमें पहुँचाती है। सदियों से यह ही होती आ रही है।

'वराह मिहिर' का किरदार अन्त में दादी के मुँह से सुनने पर आधुनिक पात्र मेधा और माँ अचंभित हो जाती हैं। इसी तरह पुरुष वर्चस्व का सशक्त मूर्ति के रूप में 'वराह मिहिर' को देखकर पाठक भी किंकर्तव्यविमूढ हो गए। 'दादी: यही कि खना की जबान वो खुद वराह ने ही काट थी!'⁶ वास्तविकता यह है कि आज पुरुष वर्ग को स्त्री की स्वतंत्र और सशक्त पहचान से सर्वाधिक असुरक्षा महसूस होती है। क्योंकि स्त्री अब न केवल उसकी बराबरी पर खड़ी है, बल्कि आत्मविश्वास के साथ अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है। यही कारण है कि पुरुष उसमें चुनौती देख आक्रामक हो उठा है। इस तरह पुरुष वर्चस्व का मूर्तव्य भाव 'वराह मिहिर' के ऊपर डालकर नाटककार नाटक समाप्त करती है।

निष्कर्ष –

सच में पुरुष वर्चस्व के कारण औरतें सदियों से उत्पीडन का शिकार होती जा रही है। अतः स्त्री सदियों से अपनी अस्मिता को खोजकर इधर-उधर घूम रही है। मीरा कांत के 'नेपथ्य राग' के जरिए पुरुष वर्चस्व के प्रत्यक्ष भाव के रूप में वराह मिहिर की प्रस्तुति बहुत प्रशंसनीय है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मीरा कांत, नेपथ्य राग, पृष्ठ संख्या – 16।
2. मीरा कांत, नेपथ्य राग, पृष्ठ संख्या – 17।
3. मीरा कांत, नेपथ्य राग, पृष्ठ संख्या – 21।
4. मीरा कांत, नेपथ्य राग, पृष्ठ संख्या – 37।
5. मीरा कांत, नेपथ्य राग, पृष्ठ संख्या – 61।
6. मीरा कांत, नेपथ्य राग, पृष्ठ संख्या – 64।



भारतीय उपमहाद्वीप के समीपवर्ती देशों से भू-आर्थिक सम्बन्ध



— राधेश्याम कुम्हार
असिस्टेन्ट प्रोफेसर—भूगोल विभाग,
गवर्नमेन्ट कालेज, लाखेरी—323603
बूँदी (राजस्थान)

ई. मेल—
radheyshyamkumhar86@gmail.com

अध्ययन क्षेत्र का परिचय —

भारत का अर्थ केवल उसकी सीमाओं में बंधी भौतिक आकृति नहीं, वह समग्र, स्वाभाविक फैलता हुआ प्रभाव क्षेत्र है जो उसे विश्व के मानचित्र पर प्रभावी अस्तित्व के रूप में स्थापित करता है। हिन्दमहासागर व हिन्दमहासागर में बैठता हुआ, धंसता हुआ, उसका स्वरूप तो है ही; हिन्दमहासागर के तट पर पूर्व व पश्चिम की ओर तथा उसमें फैले हुए वे देश भी हैं, जो स्वाभाविक ही भारत की पहुँच में हैं और व्यापारिक दृष्टि से निर्बाध सहज सम्बन्ध भी हैं। यह भारत का व्यापारिक और सामाजिक अस्तित्व का प्रसार है जिसे विश्व का कोई देश नहीं पा सका। वर्तमान में सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप की स्थिति केन्द्रीय रूप लेती चली जा रही है। विश्व के मध्य में भूमध्य रेखा पर सबल बना खड़ा, अफ्रीका, एशिया और आस्ट्रेलिया के मध्य में पूरे विश्व को आसानी से अपने प्रभाव में समेटता हुआ नजर आता है।

अतीत में व्यापारिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्धों के बल पर भारत सोने की चिड़िया कहलाता था, जिसके आकर्षण में बंधा ब्रिटेन दौड़ता चला आया और हिन्दमहासागर की व्यापारिक स्थिति का लाभ लेता हुआ विश्व का सिरमौर बन बैठा—

☛ भारत भौगोलिक संरचना और अवस्थिति के आधार पर, विदेश व्यापार के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। भारत पश्चात्य औद्योगिक राज्यों एवं दक्षिण-पूर्व के कृषि उत्पादन में अग्रणी राज्यों के मध्य स्थित है। “इन दोनों क्षेत्रों के मध्य व्यापारिक सम्बन्ध बनना स्वाभाविक है। ऐसी दशा में यह स्थलमार्ग, जलमार्ग व वायुमार्ग भारत होकर ही सम्पन्न हो सकता है। जिसमें भारत की भूमिका प्रभावी रहेगी। इन पश्चिमी एवं पूर्वी देशों के मध्य भारत एक महत्वपूर्ण भूमिका रहेगी।”

☛ भारत की विशाल खनिज-सम्पत्ति और उपज इसे अन्य देशों से सम्बन्ध बनाने के लिए प्रेरित करती है। (सारणी—1 व 2 देखें)।

☛ औद्योगीकरण में भी पीछे नहीं है, यहाँ की बनी वस्तुएं विदेश जाने के लिए तैयार रहती हैं। यहाँ के आवागमन के मार्ग केवल एशिया व अफ्रीका के लिए ही नहीं, बल्कि विश्व भर के लिए निमन्त्रण देते हुए प्रतीत होते हैं।

☛ सागर की तट रेखा अच्छे से अच्छे बन्दरगाह देती है, जिनमें सामान भेजने व मंगाने में अत्यन्त सुविधा होती है।

भारत के बहुत पीछे चले जाने पर भी स्वतन्त्रता के पश्चात उसका सम्भलना सम्भव हुआ और 2016-2017 में 274 बिलियन डालर का निर्यात भारत से किया गया,² जो 1951-1955 के बीच में मात्र 1268.7 करोड़³ था। हाल के ही वर्षों में भारत की सहभागिता एशिया,



अफ्रीका, आदि से सम्बन्धित देशों से बढ़ी है।

भारत व उसके निकटवर्ती देश, उनका आर्थिक बाजार व सम्बन्धों की प्रगाढ़ता—

भारतीय उपमहाद्वीप विश्व में महत्वपूर्ण जगह पर स्थित है, जिस कारण इस क्षेत्र का प्रमुख केन्द्र भारत अपने आस-पास के क्षेत्रों में ही नहीं, वरन् पूरे विश्व भर में अपने आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक सम्बन्धों को प्रगाढ़ता से बनाया है। भारत से सम्बन्धों की दृष्टि से इस क्षेत्र को हम चार भागों में बांट सकते हैं—

1. अफ्रीका के देश, 2. पश्चिम एशिया के देश, 3. दक्षिण एशिया के देश, 4. दक्षिण-पूर्व एशिया के देश।

अफ्रीका के देश —

प्राचीन समय से ही भारत अफ्रीकन देशों से आसानी से सम्बन्ध बनाता आया है। वर्तमान में भी भारत और अफ्रीका के सम्बन्ध काफी मजबूत हैं। अफ्रीका महाद्वीप के देश भारत के लिए न केवल आर्थिक बल्कि सामरिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है—

☛ बहुमूल्य खनिजों एवं धातुओं से समृद्ध

अफ्रीका महाद्वीप आज भी अर्द्धविकसित व विकासशील देशों का समूह है; इस कारण यह भारत के लिए एक महत्वपूर्ण निवेश का केन्द्र है।

☛ अफ्रीका में पर्याप्त कृषि भूमि है, जो भारत की खाद्य सुरक्षा से जुड़े समस्याओं को दूर कर सकती है।

☛ दक्षिणी अफ्रीका की कृषि विविधता यहाँ की खनिज सम्पदा के समान ही महत्वपूर्ण है। मध्य अफ्रीका के देश भी महत्वपूर्ण हैं। जिनमें गोर्शवाना, जिम्बामें, नामीबिया और उत्तरी क्षेत्र में अंगोला, मोजाम्बिक आदि देश महत्व रखते हैं। पूर्वी अफ्रीका क्षेत्र में कीनिया, इथीओपिया, यूगाण्डा तन्जानियाँ, सोमालिया, महत्वपूर्ण देश हैं।

☛ पड़ोस में हिन्द महासागर में मेडागास्कर का द्वीप सामरिक और व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थल है।

अफ्रीकी देशों से भारत के सम्बन्ध वैदिक काल से है। अफ्रीका हिन्दसागर के भारत का निकटतम पड़ोसी है। पिछले कुछ दशकों में भारत और अफ्रीका उपनिवेशवाद, रंगभेद और जातिवाद के विरुद्ध निकट सहयोगी रहे हैं। वर्तमान में भारत अफ्रीका शिखर सम्मेलन

सारणी संख्या – 1			
भारत की विशाल खनिज-सम्पत्ति			
क्रम सं	खनिज	भण्डार	उत्पादन
1.	कोयला	611444.40 करोड़ टन	201953.70 करोड़ टन
2.	तल	70.9 करोड़ टन	600 करोड़ टन
3.	गस	735 अरब घन मीटर	735 अरब घन मीटर
4.	ताँबा	537.80 लाख टन	41.68 करोड़ टन
5.	लोहा	ज्ञात नहीं	12749 करोड़ टन
6.	मैग्नीशियम	167.00 लाख टन	1670 लाख टन
7.	बक्साइट	2462.00 लाख टन	3037 मिलियन टन
8.	क्रोमाइट	90.20 लाख टन	ज्ञात नहीं
9.	इन्मेनाइट	90.15 लाख टन	150 हजार टन
10.	यूरेनियम	ज्ञात नहीं	115 हजार टन

Source- 1. India - 2016 2017

2. Internet - wikipedia (Natural resources in India)



एक ऐसा अधिकारिक मंच है जो दोनो के सम्बन्धों को नया आयाम दे रहा है। इसकी तीसरी बैठक प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के तत्वाधन में 26 अक्टूबर 2015 में सम्पन्न हुई। सरकारी आंकड़ों के अनुसार "पिछले 15 सालों में

भारत-अफ्रीकी व्यापार 20 गुना बढ़ कर आज 70 बिलियन डालर हो गया है।⁴ यहाँ का दक्षिणी अफ्रीका भारत के लिए बेहद महत्वपूर्ण देश है। "Southern Africa is the continent's richest region materially. Africa is the

सारणी संख्या - 2	
भारत में खाद्यान्न सम्पन्नता	
खाद्यान्न फसलें (Food Grains) 2016-2017	
गेहूँ	93500 हजार टन
चावल	93880 हजार टन
मोटे अनाज (Coarse Grains)	
ज्वार	2420 हजार टन
बाजरा	8550 हजार टन
मक्का	19300 हजार टन
दलहनी फसलें (Pulses)	
मूंगफली	6498 हजार बेल
चना	7170 हजार टन
रेणुदार फसलें (Fibre Crops)	
कपास	32123 हजार बेल
जूट	9905 हजार बेल
बागाती फसलें (Plantation Crops)	
चाय	1233 लाख किलोग्राम
कहवा	320 लाख टन
रबड़	622 हजार टन
अन्य फसलें (Other Crops)	
गन्ना	362333 हजार टन, (2015)
नरियल	14154 हजार टन, (2015)

Source- 1. Directorate of Economics and statistic, Ministry of Agriculture

2. Tea, Coffie, Rubber Board, Ministry of Commerce and Industry

largest recipient of India's technical and economic cooperation programme with an outlay of over a billion dollars. The Pan African e-network, being funded and built by India has further helped to improve trade among 53 countries of the African continent."⁵

बोत्सवाना दक्षिणी अफ्रीका में व्यापारिक केन्द्र के रूप में उभर रहा है। कम्प्यूटर के क्षेत्र में अनेक कम्पनियाँ अफ्रीका के बाजार में दौड़ लगा रही हैं। भारत इसमें अग्रणी है। "Indian car giant Mahindra & Mahindra, have made inroads into the South African motor industry with the recent launch of new vehicles. Tata Africa Holdings, a subsidiary of the Tata Group, is vying for a controlling stake in South Africa's second telephone network operator worth more than Rands 4 billion. Total bilateral trade between India and South Africa is approaching Rand 6.5 billion, with imports from India at Rand 3.12 billion and exports to India at Rand 3.35 billion. Indian investment in South Africa is estimated at \$100 million."⁶ भारत में व्यापार बढ़ाने के लिए अफ्रीका से आने वाले सामान पर ड्यूटी चार्ज छोड़ने की बात की है, जिसके परिणाम स्वरूप दोनों देशों के मध्य व्यापार भी बढ़ा है। भारत की आन्ध्र प्रदेश सरकार ने "कीनिया व यूगाण्डा से एक समझौता किया है कि वह पाँच सौ कृषक वहाँ कृषि करने के लिए भेजेगें।"⁷

भारत सरकार ने अफ्रीका देश से व्यापार बढ़ाने के लिए डरबन में एक व्यापारिक केन्द्र खोला है। इथीओपिया से व्यापारिक सम्बन्ध पहले से बढ़े हैं। भारत



का इथीओपिया के लिए निर्यात लगातार बढ़ता जा रहा है और इथीओपिया का भी निर्यात भारत में बढ़ा है। इथीओपिया भारत को कृषि प्रधान वस्तुएं भेजता है व औषधियाँ निर्यात करता है। इथीओपिया को भारत का निर्यात पहले से कई गुना बढ़ा है। बोत्सवाना दुनियाँ का बड़ा डायमंड सेन्टर है और यह विदेश के लोगों को अपनी ओर खींचता रहा है। “अप्रैल 2005 से फरवरी 2006 के बीच भारत ने अफ्रीकी देशों को 21,296.41 करोड़ रुपये का निर्यात व आयात 15,764.21 करोड़ रुपये”⁸ का किया, 2015 तक यह काफी बढ़ गया। विभिन्न अफ्रीकी देशों से भारत का आयात-निर्यात निम्नवत है— **(सारणी संख्या-3 देखें)**

पश्चिम एशिया के देश—

आर्थिक और सामरिक दोनों रूप से पश्चिम एशिया के देश भारत के लिए महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र से भारत के प्राचीनकाल से ही सम्बन्ध रहे हैं। भारत और पश्चिम एशिया के आपसी सम्बन्धों की महत्वा को निम्न बिन्दुओं से समझा जा सकता है—

☛ पश्चिम एशिया के साथ भारत के गहन ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और सभ्यतागत सम्बन्ध रहे हैं।

☛ भारत के लिए पश्चिम एशिया उसके विस्तारित पड़ोसी देशों का एक महत्वपूर्ण अंग है।

☛ भारत की लगभग 70 प्रतिशत ऊर्जा जरूरतें पश्चिमी एशिया से ही पूरी होती है।

☛ इस क्षेत्र में स्थिरता भारत के लिए बेहद महत्वपूर्ण है क्योंकि “भारत के लगभग 7 मिलियन लोग इस क्षेत्र में रह रहे हैं, जो हर साल धन-प्रेषण के रूप में लगभग 40 मिलियन अमेरिकी डालर का योगदान करते हैं।”⁹

☛ चीन वन वे वन रोड प्रोजैक्ट के माध्यम से पश्चिम एशिया तक आसानी से सम्बन्ध बनाने की दिशा में अग्रसर है; ऐसे में भारत के लिए सुरक्षात्मक और सामरिक दोनों दृष्टि से जरूरी है कि वह इस क्षेत्र से जुड़ा रहे।

पश्चिमी एशिया के देश भारत के लिए व्यापारिक दृष्टि से बेहद महत्वपूर्ण हैं। इराक, ईरान, सउदी अरब, यमन, ओमान, जार्डन, सीरिया टर्की, इजराइल आदि देश यहा के महत्वपूर्ण है। इनका बाजार स्वाभाविक रूप से भारत को सरलता से उपलब्ध हो सकता है। इरान दक्षिणी पश्चिमी एशिया का मुख्य देश है। यहाँ खजूर, गेहूँ, जौ, मुख्य रूप से पैदा होता है। परन्तु सर्वाधिक महत्व का शक्ति संसाधन खनिज तेल व प्राकृतिक गैस यहाँ प्रमुख मात्रा में उपलब्ध हैं। ईराक के तेल लगभग 12.2 प्रतिशत भाग भारत के लिए होता है। यहाँ से भारत को आयात “1960-61 में 2 करोड़, 1980-81 में 753 करोड़ तथा 1999-2000 में 865 करोड़ रुपये हुआ। वही भारत ने ईराक को निर्यात 1960-61 में 3 करोड़, 1980-81 में 52 करोड़ तथा 1999-2000 में 214 करोड़ रुपये का किया।”¹⁰ ईरान पश्चिमी दुनियाँ का महत्वपूर्ण देश है। कृषि और खनिज दोनों की दृष्टि से यह सम्पन्न राष्ट्र है। भारत

सारणी संख्या – 3			
भारत द्वारा विभिन्न अफ्रीकी देशों को किया गया निर्यात व आयात			
देश	भारत को किया गया निर्यात	देश	भारत द्वारा किया गया आयात
दक्षिणी अफ्रीका	5,722 मिलियन यूएसडी	दक्षिणी अफ्रीका	59994 मिलियन यूएसडी
केन्या	4,405 मिलियन यूएसडी	बोत्सवाना	1,046 मिलियन यूएसडी
नाइजीरिया	2,872 मिलियन यूएसडी	नाइजीरिया	15,663 मिलियन यूएसडी
तन्जानिया	3,714 मिलियन यूएसडी	टंगोला	5,642 मिलियन यूएसडी
इजिप्ट	3,136 मिलियन यूएसडी	इजिप्ट	1,873 मिलियन यूएसडी

Source : Africa and India Fact and Figures, 2015



ईरान से पाइप लाइन के द्वारा गैस लेने की योजना बना रहा है जो पाकिस्तान होकर भारत आने वाली है।¹¹ व्यापारिक क्षेत्र और आयात-निर्यात की स्थिति ईरान के साथ बढ़ती रही है। इसके साथ ही ईरान के चाबाहार बन्दरगाह का निर्माण भारत की मदद से हो रहा है, जिसका पहला चरण पूरा हो चुका है। “इस बन्दरगाह के जरिये भारत-ईरान-अफगानिस्तान के बीच नए रणनीतिक ट्रांजिट रूट की शुरुआत हो रही है।¹² सउदी अरब यह अनेक विशिष्टताओं का भूखण्ड है। यहाँ कृषि नाम मात्र की होती है। भारत के साथ स्वाभाविक निकटता है। दोनों देशों के बीच व्यापार तेजी से बढ़ रहा है। “Bilateral trade between India and Saudi Arabia is expected to more than double and touch a figure of US\$ 7 billion.”¹³ भविष्य में भारत व साउदी अरब के सम्बन्ध बढ़ने के आसार हैं। पश्चिमी एशिया के अन्य देशों के साथ जैसे कुवैत, कतार, बहरीन, यू. ए. ई., यमन आदि छोटे-छोटे देशों से भी भारत के व्यापारिक सम्बन्ध बने हैं और यह भविष्य के सम्भावित अच्छे बाजार हैं। फारस की खाड़ी के ये देश बड़ी सरलता से भारत के साथ जुड़ जाते हैं।

दक्षिण एशिया के देश –

दक्षिण एशियाई देश सम्बन्धों की दृष्टि से भारत के लिए बहुत महत्वपूर्ण रहे हैं। अफगानिस्तान, भूटान, म्यानमार, श्रीलंका आदि इस क्षेत्र के महत्वपूर्ण देश हैं। अफगानिस्तान, एशिया के मध्य भाग का वह देश है, जो पश्चिमी एशिया, उत्तरी एशिया, पूर्वी एशिया तथा दक्षिणी एशिया के बीच स्थित है। आज भी भू-राजनीतिक स्थिति में अत्याधिक महत्व का देश है। इसलिए रूस, अमेरिका

और पाकिस्तान इस पर प्रभुत्व रखने के लिए पूरी शक्ति लगाये हैं। अति प्राचीनकाल में यह भारत का अंग था। अब संयुक्त राज्य अमेरिका, पाकिस्तान, ईरान, रूस के जबड़ों में फंसा है। गेंहू, बाजरा, धान, जौ, मक्का व ज्वार यहाँ की प्रमुख फसलें हैं। अंगूर, खुबानी, अंजीर, सन्तरा, नारंगी, अनार, सेब, नाशपाती व बादाम अच्छे स्तर पर पैदा किये जाते हैं। बड़ी मात्रा में फलों व मेवा का निर्यात भी किया जाता है।

अफगानिस्तान एक अच्छा बाजार और एशिया के मध्यवर्ती देशों के बाजार के लिए अच्छा सम्पर्क बन सकता है। इस पर नियन्त्रण और इससे मित्रता व्यापार के लिए अत्याधिक महत्वपूर्ण है। इस समय यह भंयकर संघर्ष में फंसा है। भारत परिस्थिति का लाभ लेते हुए अपना सम्बन्ध सुदृढ़ कर सकता है। इसी बात की पुष्टि करते हुए गौरी राजहंस 6 अक्टूबर, 2011, दैनिक जागरण में छपे अपने एक लेख में लिखते हैं कि बदली हुई परिस्थितियों में अमेरिका और अफगानिस्तान के नेता यही चाहते हैं कि भारत अफगानिस्तान में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायें **नेपाल** हिमालय क्षेत्र के दक्षिणी ढालों पर भारत का पड़ोसी स्वतन्त्र देश है। भारत ने 1972 में व्यापार एवं ट्रांजिट संधि के अनुसार नेपाल को अन्य देशों से यथा – बांग्लादेश से 7 व्यापार मार्ग दिये हैं जिनकी संख्या अब बढ़ाकर 13 हो गई है तथा भारत से 19 मार्ग प्रदान किये हैं। नेपाल के सहायको में भारत का सबसे बड़ा योगदान है। भारत में करोड़ों रुपये का विदेशी समान नेपाल से आता है। नेपाल के लोग बड़ी संख्या में भारत में बसते हैं। **श्रीलंका** श्रीलंका भारत का पड़ोसी व मित्र देश है। आरम्भ से ही भारत इसकी आर्थिक उन्नति व राजनीतिक स्थिरता के

सारणी संख्या- 4			
भारत द्वारा विभिन्न पश्चिमी एशियाई देशों को किया गया आयात-निर्यात			
क्रम संख्या	देश	आयात(यूएसडी मिलियन)	निर्यात(यूएसडी मिलियन)
1	ठरान	8,955.02	2,411.33
2	ठरान	14,247.66	7,63.97
3	सउदी अरब	28,107.56	5,683.29
4	ठजराइल	2,328.04	4,040.52
5	जर्डन	39.74	821.08

Source-India Export import trade continental statistics-2013-2015



विकास के लिए प्रयत्न करता रहा है। कोलम्बो योजना के अन्तर्गत दोनों राष्ट्रों के मध्य आर्थिक, व्यापारिक व औद्योगिक सहयोग बढ़ा है। सामुद्रिक एवं हवाईमार्गों की दृष्टि से इसकी स्थिति श्रेयस्कर है। यूरोपीय व्यापारी इसे पूर्व का मोती कहते थे। श्रीलंका रामयणकाल से लेकर भारत का सहोदर देश रहा है। भारत के लोग श्रीलंका में बसे हैं। “The Great majority of Sri lanka's people are descended from migrants who came to this island from northwest India.”¹⁴ सिंहली भी मिश्रित रक्त हैं। सिंहली भाषा भारतीय शब्दों और प्रथाओं से प्रभावित हैं। श्रीलंका स्वाभाविक भारत की पहुँच में है। श्रीलंका को दक्षिण एशिया का प्रवेश द्वार कहा जाता है और व्यापार की दृष्टि से भारत के लिए अत्यन्त महत्व का है। **मालदीव** मालदीव हिन्दमहासागर में 2000 प्रवाल द्वीपों का क्षेत्र है। भारत के साथ इसके राजनीतिक सम्बन्ध अधिक हैं। भारत यहाँ के विकास में पर्याप्त सहयोग दे रहा है। दक्षिणी एशिया सहयोग संगठन देशों की बैठक में मालदीव सक्रिय रहता है। सामरिक दृष्टि में महत्वपूर्ण होने के कारण, विश्व के अनेक देश इसमें अपनी रुचि रखते हैं। भारत मालदीव को व्यापारिक सम्बंधों से जोड़े है। “India's exports to Maldives during 2006 were worth Rs. 384 crores, imports were worth less than Rs. 6 crores.”¹⁵ स्टेट बैंक ऑफ इन्डिया ने मालदीव को सहायता दी है। मालदीव में इन्दिरा गांधी मेमोरियल हास्पिटल बनाया गया है। यहाँ अनेक सहयोग के कार्य भारत द्वारा हुए व हो रहे हैं। भारत यहाँ से दो हेलीकोप्टर सर्वेक्षण की दृष्टि से सदैव प्रस्तुत रखेगा। भारत व्यापार के

क्षेत्र में अनेक रियायतें मालदीव को दे रहा है। भारत, मालदीव में रडार्स भी लगायेगा। भारत का मालदीव के साथ जुड़ा रहना अत्याधिक जरूरी है। (सारणी-5 देखें)

दक्षिण-पूर्व एशिया के देश –

दक्षिण-पूर्व एशिया भारत से सांस्कृतिक, सामाजिक सम्बन्धों से तो जुड़ा हुआ है ही, आर्थिक दृष्टि से भी जुड़ा रहा है। इस प्रदेश में म्यांमार, थाईलैण्ड, लाओस, कम्प्यूजिया, वियतनाम, मलेशिया, ब्रुनेई, हिन्देशिया, सिंगापुर तथा फिलीपीन्स सम्मिलित हैं। भारत के साथ व्यापार की दृष्टि से म्यांमार, हिन्देशिया, मलेशिया व सिंगापुर बेहद महत्वपूर्ण हैं। म्यांमार से भारत के सम्बन्ध हजारो वर्ष पुराने हैं। ब्रिटिश शासनकाल में भारत का अंग रहा। भारत से आज भी प्राकृतिक दृष्टि से अति निकट जुड़ा है। यहाँ का मुख्य उत्पादन चावल है। खनिजों में मुख्य रूप से पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस व टिन पैदा होता है। इराबदी डेल्टा तथा मध्य म्यान्मार के ओडवी क्षेत्र में पेट्रोलियम प्राप्त होने की सम्भावनायें हैं। टिन के उत्पादन में यह विश्व में पाँचवा स्थान रखता है। यहाँ बहुमूल्य रत्न जैसे – लाल मणि, जिसे रूबी कहते हैं, मिटकाना हीरा, मोबोक हीरा आदि निकाले जाते हैं। भारत और एशियन देशों के बीच व्यापार के लिए फ्रीट्रेड एग्रीमेन्ट सन् 2009 में सम्पन्न हुआ। परिणामस्वरूप “The bilateral trade between India and Myanmar is likely to clock \$1 billion in 2009-10, up from \$951 million in 2008-09.”¹⁶ म्यान्मार से मुख्य रूप से भारत सफेद टीक, टिम्बर, मक्का, दालें मंगाता है। स्टील, सीमेन्ट, खाद तथा औषधियाँ म्यान्मार भेजता है। भारत से निकटता व म्यान्मार

सारणी संख्या-5

भारत द्वारा विभिन्न दक्षिण एशियाई देशों को किया गया आयात-निर्यात

क्रम संख्या	देश	आयात (यूएसडी मिलियन)	निर्यात (यूएसडी मिलियन)
1	अफगानिस्तान	2,61.91	4,22.56
2	बांग्लादेश	6,21.37	6,451.47
3	भूटान	1,49.87	333.94
4	श्रीलंका	756.17	6,703.72
5	मलदीव	4.32	1,52.38
6.	नेपाल	639.91	4,558.77

Sours-India Export import trade continental statistics-2016-2017



की सागर सम्पन्नता देखते हुए, म्यान्मार भारत के लिए भविष्य का अच्छा बाजार है। मलेशिया एशिया तथा पूर्वी द्वीप समूह के बीच महत्वपूर्ण सांस्कृतिक कड़ी है। भारत से इसके पुराने सम्बन्ध रहें हैं। रबड़ उत्पादन के लिए यह विश्वविख्यात है। नारियल, रबड़ व टिन इस देश की आर्थिक धुरी बनाते हैं। इन्हीं के बल पर यह धनाढ्य देश बन चुका है। “India-Malaysia trade relations have witnessed exponential growth since 1991. Malaysia's largest trading partner is India, while Malaysia is India's second largest trading partner in the Association of South East Asian Nations (ASEAN).”¹⁷ भारत मुख्य रूप से मलेशिया को शक्कर, चावल, गेहूँ, सब्जी, फल, कपास, धागा, कपास से बनी विभिन्न वस्तुएँ, लोहा, ईस्पात व उससे बनी वस्तुएँ, मशीनरी, अन्य यन्त्र, बिजली का सामान आदि भेजता है। मलेशिया से मंगाया जाने वाले सामान में कच्चा पेट्रोल, पाम आयल, बिजली का सामान, केमिकल्स तथा पेट्रोल के बने पदार्थ हैं। इन्डोनेशिया दक्षिण-पूर्वी एशिया का यह सबसे बड़ा देश है। इसके अन्तर्गत जावा, सुमात्रा, बोर्नियो तथा सुलाबेसी चार बड़े द्वीप और 1 दर्जन से अधिक साधारण आकार के द्वीप तथा 3000 छोटे द्वीप आते हैं। प्रथम शताब्दी में हिन्दू व्यापारी, पुरोहित व पुजारी यहाँ पहुँचे व हिन्दू राज्य स्थापित हुआ। सुमात्रा में श्रीविजय साम्राज्य स्थापित हुआ। यह संसाधन सम्पन्न देश है। हाल के ही वर्षों में भारत व इन्डोनेशिया के बीच कई नये समझौते हुए हैं। यहाँ से रबड़ व टिन का निर्यात महत्वपूर्ण है। 1950 ई० में इन्डोनेशिया व भारत व्यापारिक समझौते में बंधे। तब से आज तक यह सम्बन्ध नित नई ऊँचाईया छू रहा है। सिंगापुर दक्षिण-पूर्व एशिया का अनेक दृष्टिकोण से एक विशिष्ट देश है। इसका महत्व अन्तर्राष्ट्रीय है। मलक्का जलडमरूमध्य अन्तर्राष्ट्रीय सामुद्रिक मार्ग पर स्थिति होने के कारण, सिंगापुर एक विशाल बन्दरगाह बन गया है। रबड़ व टिन का यह विश्व प्रसिद्ध व्यापार केन्द्र है। भारत व सिंगापुर एशियन देशों में सार्वधिक महत्वपूर्ण व्यापारिक सम्बन्ध वाला देश है। **भारत सिंगापुर** को विभिन्न प्रकार के सामान जैसे काफी, चाय, मसाले, रूई आदि निर्यात करता है। कम्बोडिया से भी भारत का व्यापार स्थापित हुआ। “In the year 2010-11 (April to September) it was US\$ 31.43 million (Indian export of US\$ 28.08 million and import of US\$ 3.35 million)..”¹⁸ **थाईलैण्ड** से भी भारत का व्यापारिक

सम्बन्ध बना। “Mutual trade between the two countries clock US\$4.11 billion in 2007-2009. India exported goods worth US\$ 1.44 billion to Thailand.”¹⁹ यह देश जूट, रबड़, टिन, आदि वस्तुएँ निर्यात करता है।

फिलीपीन्स से भी भारत के सम्बन्ध है। भारत और फिलीपीन्स ने 11 जुलाई 1952 को एक मित्रता संधि पर हस्ताक्षर किये थे, जिसका निर्वहन आज तक हो रहा है। इन्हीं सम्बन्धों को और अधिक मजबूत बनाने के लिए दोनों देशों के राजनायिकों का समय-समय पर आना-जाना लगा रहता है। 2007 में फिलीपीन्स के प्रधानमंत्री ग्लोरिया मैकपगल अरोया इन्हीं रिश्तों को मजबूती प्रदान करने भारत आये थे। इस यात्रा का मुख्य उद्देश्य आईटी, दुग्ध उद्योग, पर्यटन आदि क्षेत्रों में एक दूसरे का सहयोग करना था। जनवरी 2007 में डा. मनमोहन सिंह भी एशियन समिट में भाग लेने फिलीपीन्स गये। भारत और फिलीपीन्स के मध्य व्यापार लगातार बढ़ता जा रहा है। भारत ने फिलीपीन्स से 2008 में 207.4 करोड़ आयात किया व 751.6 करोड़ निर्यात किया।

वियतनाम से भी सम्बन्ध जुड़े। सन् 2009 में ही वियतनाम के रक्षा मंत्री जनरल प्लंग थयान भारत यात्रा पर आये थे। जिसका मुख्य उद्देश्य दोनों देशों के सम्बन्धों बेहतर बनाना और व्यापारिक रिश्तों को तेजी से बढ़ाना था। दोनों देशों के बीच व्यापार बढ़ा है। भारत वियतनाम से रबड़, कम्प्यूटर, हार्डवेयर, बिजली का सामान, कपड़े, वस्त्र, आदि मंगाता है। भारत का ताइवान से भी विभिन्न क्षेत्रों में सम्बन्ध बना है। भारत और ताइवान के बीच भी व्यापारिक सम्बन्ध मजबूत हुए हैं। “Relation between the two countries have always been in the right direction. The partners are expected to increase bilateral trade to the tune off \$10 billion by 2015.”²⁰ चीन भारत का महत्वपूर्ण ट्रेड पार्टनर बनता जा रहा है। चीन भारत को बिजली का सामान, औजार, सीमेन्ट, आरगैनिक कैमिकल्स, मशीनरी, आदि निर्यात करता है।

निष्कर्ष –

भारत दक्षिणी गोलार्द्ध में हिन्द महासागर के उत्तर में कुछ इस तरह स्थित है कि उसका अपने चारों तरफ के देशों से सम्बन्ध बनाना आसान हो जाता है। न केवल अफ्रीकी, बल्कि पश्चिम एशिया, दक्षिण एशिया व दक्षिण-पूर्व एशियाई आदि देशों से उसके सम्बन्ध स्वाभिक और सहज है। प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान तक भारत ने



सारणी संख्या – 6			
भारत द्वारा विभिन्न दक्षिण पूर्व एशियाई देशों को किया गया आयात-निर्यात			
क्रम संख्या	देश	आयात(यूएसडी मिलियन)	निर्यात(यूएसडी मिलियन)
1	इन्डोनेशिया	15,004.64	4,043.32
2	मलेशिया	11,117.74	5,816.55
3	म्यानमार	1,231.54	773.24
4	फिलीपीन्स	423,04	1,395.58
5	सिंगापुर	7,124.47	9,809.36
6.	वियतनाम	3,003.35	6,257.88

Sours-India Export import trade continental statistics-2016-2017

अपनी स्थिति का लाभ उठाते हुए अपने चारों तरफ स्थित देशों से अपने महत्वपूर्ण सम्बन्ध बनाये हैं। प्रत्येक क्षेत्र से भारत के अलग अलग हित और लाभ है। ऐसे में जरूरी है कि भारत अपनी नीति को इस तरह आगे बढ़ाये कि वह अपने पड़ोसी क्षेत्रों का पूर्ण सामरिक लाभ ले एक शक्ति के रूप में विकसित हो। उदाहरणस्वरूप पश्चिम एशिया भारत के लिए महत्वपूर्ण संसाधन क्षेत्र है, लेकिन इस क्षेत्र में खतरा और सम्भावना दोनों हैं। इसको देखते सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि कैसे भारत पश्चिम एशिया से वह निकाल सकता है जो उसके लाभ में है। पश्चिम एशिया को छोड़कर सभी क्षेत्रों—दक्षिण, दक्षिण-पूर्व एशिया में उसके हित सुरक्षित नजर आते हैं। चीन से चिन्ता अवश्य है। लेकिन वर्तमान विदेश नीति को देखते हुए यह चिन्ता काफी हद तक कम दिखाई देती है। लगातार बढ़ते परस्पर व्यापार, सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों और ग्लोब पर अपनी महत्वपूर्ण सामरिक स्थिति रखने के कारण इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि आज भारत न केवल पश्चिमी एशिया, बल्कि दक्षिणी व पूर्वी एशिया के देशों से अपने व्यापारिक सम्बन्धों को मजबूती के साथ बढ़ाता चला जा रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दीक्षित, श्रीकान्त, 2006, राजनीतिक भूगोल एवं भूराजनीति, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ संख्या –195।
2. ई स्रोत – हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, संजीव के अहूजा व कुमार राय, 13 अप्रैल, 2017।
3. ई स्रोत - http://commerce.nic.in/tradestats/indiatrade_press.asp.
4. ई स्रोत - एन एनालिसिस आफ इन्डिया-अफ्रीका रिलेशन

शिपस्, गड़पति राजेन्द्र कुमार, 29 मई 2017।

5. Mular, A. L., Geography of the world – page number-210.
- 6 & E.- http://www.africa-business.com/features/india_africa2.html.
7. E. source - http://www.dubai-business-pages.com/features/india_africa.html.
8. ई स्रोत – मीडिया सेंटर, विदेश मंत्रालय, आलेख, 22 जनवरी, 2016 “पश्चिम एशिया के साथ भारत के सम्बन्ध : नीति, परिप्रेक्ष्य और चुनौतियां” से साभार।
9. चौहान, पी. आर., 2009, भारत का वृहद भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, पृष्ठ संख्या-607, 609।
10. <http://www.hindustantimes.com/Iran-gives-up-on-India-pursues-gas-pipeline-withPak/Article1-710320.aspx>.
11. पंजाब केसरी, ई न्यूज पेपर, 3 दिसंबर, 2017।
12. E. source http://www.google.com/publicdata?ds=wb-wdi&met_y=sp_pop_totl&idim=country:SAU&dl=en&hl=en&q=population+of+saudi+arabia.
13. ई. मूलर, ज्योग्राफी आफ द वर्ल्ड, पृष्ठ संख्या – 233।
14. E. source http://en.wikipedia.org/wiki/India%E2%80%93Maldives_relations.
15. E. source <http://www.buinessstoolchest.com/articles/data/20100122230806.shtml>.
16. Net source <http://indiatravelingtrip.blogspot.com/2011/07/india-import-and-export-part-i.html>.
17. E. isource-<http://www.gagrp.com/Handbook%20SYBP.pdf>.
18. E. source-<http://meaindia.nic.in/mystart.php?id=50042447>.
19. E. Source - <http://www.biztechreport.com/story/1107-India-taiwan-trade-andtechnologycollaboration>.



डॉ. सुमन राजे की कविताओं में समकालीन हिन्दी कवयित्रियों की कविता : व्यष्टि—समष्टि की यात्रा



— प्रो. अलका द्विवेदी
प्रोफेसर — हिन्दी विभाग,
जुहारी देवी गर्ल्स (पी.जी.)
कालेज, कानपुर-208004
(उत्तर प्रदेश)

ई. मेल—
alkadwivedi844@gmail.com

सारांश

व्यष्टि की लघु परिधि से प्रारम्भ हुई अधिकांश समकालीन कवयित्रियों की कविता—यात्रा समष्टि की विस्तृत परिधि तक जा पहुँची है, जहाँ निजी सुख—दुख ही नहीं, समाज और राष्ट्र के उन विद्रूप चित्रों को भी उकेरा गया है, जिनमें सुव्यवस्था, सुशासन और मानवीय संवेदना के रंग—बिरंगे चटख रंग भरने की पुरजोर कोशिश और तड़प है। इयत्ता बोध, प्रेम, मानवीय सम्बन्ध, प्राकृतिक सौन्दर्य, जीवन के प्रति आस्था ईमानदारी से अपने अनुभवों की अभिव्यक्ति करती हुई क्रमशः व्यष्टि से समष्टि की ओर चली यात्रा है, जिसमें अपने साथ जगत के सुखे—दुख संजोए है।

प्रत्येक युग अपने युग में समकालीन रहता है, क्योंकि हर युग में नई—नई समस्याओं का जन्म होता रहा है। आज सामाजिक सम्बन्धों और मूल्यों में तीव्र परिवर्तन आया है। समकालीन “कठिन समय में जब समय से स्थान, देह से मन, समष्टि से व्यष्टि विच्छिन्न हो चला है, उनकी आपसी पकड़ छूट गयी है और ‘आकाश की धरती से बन्द है बातचीत’ कविता चाहती है संवाद—आत्मा का आत्मा से, प्रिय का प्रिय से, कटु का मधु से, कल्पना का यथार्थ से, शिल्प का कथ्य से, इन्द्रियों का इन्द्रियों से, सुख का दुख से, रूप का अरूप से, भाव का रस से, अतीत का वर्तमान से, परम्परा का प्रयोग से, मनुष्य का मनुष्य से।”¹

समकालीन कविता में सबसे संवाद की आकांक्षा है। यद्यपि समकालीन कवयित्रियों पर वैयक्तिक अनुभूतियों तक केन्द्रित रहने का आरोप लगता है किन्तु यह अब किंचित सत्य ही है। अब इनकी स्व—परिधि का विस्तार हुआ है, समाज और राष्ट्र के दुःख भी इन्हें व्यापते हैं। “हिन्दी कविता के समकालीन परिदृश्य में अनामिका, गगन गिल, तेजी ग्रोवर, कात्यायनी, निर्मला गर्ग आदि की कविताएं नारी जीवन की विविध नई संवेदनाओं से जुड़ी हैं।” स्नेहमयी चौधरी, कीर्ति चौधरी, प्रेमलता वर्मा, शकुन्त माथुर, सुमन राजे, क्षमा कौल, सविता सिंह, अनीता वर्मा, मधु शर्मा ने नारी जीवन के साथ ही विविध संवेदनाओं से जुड़ी कविताएं लिखी हैं। समकालीन कवयित्रियां अपनी अस्मिता और स्वतन्त्रता को लेकर सजग है। वस्तुतः “स्वतंत्रता और अस्मिता की जरूरत को यदि मुख्य माना जाएगा तो स्वतंत्रता की पहली अनिवार्यता होगी आत्म—सम्पन्नता और दायित्व बोध, स्वतन्त्रता जीवन में मिले या



पन्नों पर उसका एहसास जगाया जाए इसका एक यही अर्थ निकलता है, आत्म सम्पन्न व्यक्ति अपना अधिकार स्वयं कमा लेता है और दायित्व के प्रति सजग है।³ “विचारशील प्राणी किसी प्रकार की दासता को सहन नहीं कर सकते, चाहे वह विचारों की हो या परम्परा की।”

दूसरे काव्य सप्तक की कवयित्री शकुन्त माथुर स्वयं ही अपनी कविताओं को अपने पति गिरजा कुमार माथुर की अपेक्षा कमतर आंकती है और अपने रचना संसार को सीमित मानती हैं— “जब भी मैं कविता लिखती, इनकी कोई न कोई रचना सामने आकर खड़ी हो जाती है और मेरी कविता शर्मिन्दा हो जाती।”⁴ निजी जीवन से लेकर सार्वजनिक जीवन के चित्र इनकी कविताओं में मिलते हैं। सम्पन्न और विपन्न वर्ग के सुख-दुख तक इनकी दृष्टि फैली है— “गर्मी की दोपहरी में/..... एक ग्रामीण धरे कन्धे पर लाठी/सुख-दुख की मोटी सी गठरी/लिये पीठ पर बड़े घरों के श्वान पालतू/बाथरूम में पानी की हल्की ठण्डक में/नैन मूंद कर लेट गये थे।”⁵ सम्पन्न वर्ग की निर्धन के प्रति हेय दृष्टि क्षोभ उपजाती है— “रेल के डिब्बे में/छोटे में छोटा/बड़े में बड़ा है। मानवों में भेद/..... छोटे से कहता/गेट डाउन डैम”⁶ ‘चांदनी चूनर’ तथा अभी और कुछ” उनके चर्चित काव्य संग्रह हैं, पर अनुभव संसार सीमित बन पड़ा है।

कीर्ति चौधरी साहित्यिक परिवेश में पली-बढ़ी कवयित्री हैं” तीसरा सप्तक” उनकी काव्य यात्रा का प्रस्थान बिन्दु है, जो लघु-वय की रोमांटिक कविताओं से अधिक सम्बन्धित है। कथन भंगिमा में सपाट बयानी है, तथापि प्रकृति उन्हें बेहद आकर्षित करती है। तीसरे सप्तक में ‘बदली का दिन’ ‘बरसते हैं मेघ झर-झर’, ‘एक सांझ’, ‘कम्पनी बाग’, ‘कुहू’, ‘पंख फैलाये’ कविताएं इसका प्रमाण हैं। निजी सुख-दुख भी प्रकृति के उपमानों के माध्यम से व्यक्त किये हैं— यह कैसा वक्त है/कि किसी को कड़ी बात कहो/तो भी वह बुरा नहीं मानता खूब खिले हुए फूल को देखकर/अचानक खुश हो जाना/..... सब भूल गये/ यह कैसी लाचारी है/कि हमने अपनी सहजता ही/एकदम बिसारी है। ‘खुले आसमान के नीचे’ कविता संग्रह में तीसरा सप्तक की भी कविताएं संकलित हैं।

वादों के घेरे में न बंधकर प्रखरता से अपनी बात बेवाकी से कहने के लिये प्रतिबद्ध दिखती रमा सिंह ‘स्त्री’

होने की सहानुभूति और सुविधाओं की आकांक्षी नहीं रहीं। ‘समुद्रफेन’ कविता संग्रह में व्यंग्य के चुटीलेपन के साथ भावाभिव्यक्ति है। पैनी दृष्टि की परिधि में छोटी-छोटी बातें भी विस्तार पाई हैं।

‘चौथा तार सप्तक’ की चर्चित कवयित्री डा. सुमन राजे कविता रचना की आकुलता को रेखांकित करती लिखती हैं— “जो जीवन हमें जीने के लिये मिला है, उसकी अनिवार्य नियति है— निरन्तर चुभती हुई जूते की कील। हर कदम उस जूते को और जर्जर करता है और जख्म को गहराता जाता है, लेकिन चलना ही तो हमारा अस्तित्व है। पैरों और पैरों में कोई भेद नहीं होता इसीलिये सबके जख्म भी एक जैसे होते हैं। उन जख्मों के आस-पास पकती और फूटती रहती है कविता।” डा. सुमन राजे की यह कविता यात्रा जीवन-जगत के अनगिनत पड़ावों को पैनी दृष्टि से निहारती हुई संवेदना के तारों को हस्तगत किये हुए सम्पन्न हुई है, और सफलता पूर्वक यश-शिकार तक पहुंची है। ‘चौथा तार सप्तक’ के अतिरिक्त ‘सपना और लाशघर’, में कोमल अनुभूतियाँ सशक्त रूप से व्यक्त हुई हैं। “अक्सर मैं एक सपना देखती हूँ/..... मेरी बीमार चेतना/..... एक कोठरी में बंद है एक बेकफन लाश/..... कुछ लाशें हैं मेरी कुआंरी साधनाओं की/.....”⁹ ‘उगे हुए हाथों के जंगल’ में महानगरीय जीवन के श्वेत-स्याह पक्ष उद्घाटित हुए हैं। ‘यात्रा दंश’ में जीवन यात्रा के तिवक्त अनुभव हैं। संस्कृति की विरूपता से आक्रोशित है— “अब आजाद हैं सारे पुरुष/जुलूसों में करने के लिये भड़ैती/और आजाद हैं सारी औरतें/सड़कों पर करने के लिये नकटौरे।”¹⁰

‘एरका’ महाभारतकालीन पात्रों चारवाक् शिखंडी, बर्बरीक बाल खिल्यादि पर केन्द्रित महाकाव्यात्मक प्रभाव वाली रचना है जिसमें गहरी करुणा है। युद्ध की विभीषिका के प्रति गहरी व्यथा है— “औरतें चीखती रही/घसीटी जाती रहीं/चिथड़ों में लिथड़ती/पुकारती हुई उन नामों को/जो कभी थे/तुम्हारे।”¹¹ ‘इक्कीसवीं सदी का गीत’ अभावग्रस्त बच्चों का गीत है, जिनका बचपन कहीं खो गया है, “मैंने देखा/पहुंच गया हूँ मैं इक्कीसवीं सदी में/... मैंने देखा/चूल्हा-जल रहा है/खाना पक रहा है/... मैंने नई स्कूल ड्रेस/पहन रखी हैं।”¹² सुमन राजे का अन्तिम कविता संकलन ‘युद्ध’ है। जिसमें अव्यवस्था के प्रति विद्रोह है, और आवाज उठाने की प्रतीक बनी चिड़िया स्वयं कवयित्री ही



है।

गगन गिल लगभग तीन दशकों से हिन्दी कविता में चर्चित नाम है। गगन गिल की कविताओं ने आधुनिक हिन्दी कविता को अभिव्यक्ति का नया तेवर दिया है। 'एक दिन लौटेगी लड़की', 'अंधेरे में बुद्ध', 'यह आकांक्षा समय नहीं' और 'थपक-थपक दिल थपक-थपक' में केन्द्रीय सरोकार मानवीय स्थिति का दुख रहा है। गगन गिल प्रेम को ससम्मान कविता में वापस लाने के लिये भी जानी जाती है। कहीं-कहीं पर इन प्रेम-सम्बन्धों में हल्कापन भी दृष्टिगत होता है, पर ऐसा सर्वत्र नहीं है। 'आधे रास्ते तुम चलते हो' कविता में सहयात्री के प्रति उनकी प्रतिक्रिया कुछ इस प्रकार है— "आधे रास्ते तुम चलते हो/उसके संग/फिर लौटा ले जाता है/ईश्वर बेचैन/..... आधी काया रहती है/चिमटी संग तुम्हारे/लौट आता है आधा शव/घर अपने।" 'जोगी जी ये जियड़ा' कविता: अतृप्त इच्छा की छटपटाहट व्यक्त करने के साथ, इच्छापूर्ति की संभावना के प्रति आशान्वित है, यह सकारात्मकता जीने की तमन्ना बनाये हुए है— "जोगी जी/ये जियड़ा हर पल भटके/ये जियड़ा ले/वन-न डोली/ले गयी बीच पहाड़/..... बीत बात/आस नहीं बीती।....."¹⁴

"वर्तिका नंदा कवयित्री के साथ मीडिया यात्री भी हैं। अनेक विचारोत्तेजक विषयों पर लिखी गयी उनकी टिप्पणियों ने नये मुद्दे उठाये हैं।" विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष कर विजयी होती लड़कियाँ और उन लड़कियों को संघर्षपूर्ण स्थितियों में टेलने वालों के प्रति गहरा आक्रोश उनके मन में व्याप्त है, जो कविता में मुखरित हुआ है— "ये लड़किया बड़ी आगे चली जाती हैं/..... ये खिलती ही तब हैं/जब जमाना इन्हें कूड़ेदान के पास फेंक आता है।"¹⁵ स्त्री के दुखों की आन्तरिक एकता को उद्घाटित करती उनकी 'बहूरानी' कविता वस्तुतः व्यष्टि से समष्टि की ओर प्रस्थान करती है— "बड़े घर की बहू को कार से उतरते देखा/और फिर देखी अपनी/पांव की बिवाइयां/फटी जुराब से ढकी हुई/एक बात तो मिलती थी फिर भी उन दोनों में/दोनों की आँखों के पोर गीले थे।"¹⁶

निर्मला गर्ग लगभग तीन दशकों से कविता क्षेत्र में चर्चित हैं उनके कविता संग्रह 'यह हरा बगीचा', 'कबाड़ी का तराजू' स्त्री जीवन के विविध रूपों को आकार देते हैं। मनःस्थिति बदलने पर वातावरण भी बदला हुआ लगता है।

'उदास दिन' कविता इसी मनोवैज्ञानिक सत्य से अवगत कराती है— "उदास दिन हमसे क्या मांगते हैं कुछ पता नहीं चलता।..... परिचितों से मिलने की इच्छा अक्सर नहीं होती।"¹⁷ जबकि प्रसन्नचित्त होने पर 'सुबह' कविता उल्लास प्रकट करती है— 'कल सुबह साफ थी और ताजा/होती है जैसे नींबू की फाँक।'¹⁸

सुनीता जैन के कई काव्य संग्रह प्रकाशित हुए 'हो जाने दो मुक्त', 'कौन सा आकाश', 'एक और दिन', 'रंगरति', 'कितना जल', 'कहाँ मिलेगी कविता', 'सुनो मधुकिश्वर', 'कातर बेला', 'इस अकेले तार पर', 'सूत्रधार सोते हैं', 'सच कहती हूँ', 'लेकिन अब', 'मूक करोति वाचाल', 'सीधी कलम सधे न', इन्होंने अपने को कविता आन्दोलन से दूर रखा है, किन्तु 'सुनीता जैन की कविताओं में आधुनिक बोध है, पर आधुनिकता को ढोने की प्रवृत्ति नहीं है।'¹⁹ अकेलापन, रिक्तता बोध, माँ, बच्चों तथा अपनी अस्मिता बोध पर अधिकांश कविताएं "मैं अब दिन को नहीं करती/दिन मुझको करता है।"²⁰ "बच्चों के कुसबुसाते शरीर में/उनके टूटते मन क्या चाहते हैं। रविवार की प्रतीक्षा में पूरा सप्ताह बीत जाता है।" पुरुष को चेतावनी देती हुई कविता— "वही मेरा सबसे कहना है/उसे पूरे मौन में/तुम्हारे 'समूचे' होने को ही/उलांघ जाना है।"

'समकालीन कवयित्रियों में कुसुम अंसल की अपनी अलग पहचान है। दाम्पत्य जीवन, आपसी सम्बन्ध, रिश्ते नाते, प्यार-स्नेह तथा समाज से टकराव महिला लेखकों के परिचित विषय हैं।" इनके काव्य संग्रह 'मौन के दो पल' (75) धुएं का सच, 'विरूपीकरण', 'मेरा होना', है। "जीवन धुआं/और हुए में जीवन/की पहली सुलझाती हुई/पहुंच गयी हूँ उस बिंदू तक/जहां लगता है जीवन और मरण के बीच/सिर्फ चिंताएं है/ धूं-धूं कर जलती हुई।"²¹

डॉ. सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कविता जीवन में दुख के शिशिर से गायब होती हरियाली (प्रसन्नता) को रेखांकित करती है। 'हूक' कविता में गहरी वेदना है— 'रात के पिछले/पहर नहीं/जिन्दगी के/पिछले पहर/एक हूक/सी/उठती है..../कैसे झर/गये सारे/ तने टहनियां/ ठूठ भी न/बचा/शिशिर के बाद/ कहाँ लिपटें/तना टहनियां/ किसे लगाये/गले/और पहुंच उस/ पार/तुम से/गलबहियां डालने..../²²

वृद्धजनों के हाथों से छिनता अधिकार, उपेक्षा,



प्रताड़ना और अपमान का शिकार होती पिछली पीढ़ी, बलात सत्ता हस्तान्तरण करती नई पीढ़ी के प्रति आक्रोश व्यक्त करती सुबोध चतुर्वेदी की कविता 'सत्ता परिवर्तन', 'कुछ भी पता नहीं चलता / सत्ता कैसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में / हो जाती है / हस्तान्तरित / सब कुछ होता है गुपचुप इतना / कहीं भी नहीं छूटता है कोई प्रमाण / न सत्ता परिवर्तन का कोई दस्तावेज / धीरे-धीरे अगली पीढ़ी संभाल लेती है सारे दायित्व / चुक रही पीढ़ी के हिस्से आता है, घर का एक कोना।'²³

इस प्रकार व्यष्टि की लघु परिधि से प्रारम्भ हुई अधिकांश समकालीन कवयित्रियों की कविता-यात्रा समष्टि की विस्तृत परिधि तक जा पहुँची है, जहाँ निजी सुख-दुख ही नहीं, समाज और राष्ट्र के उन विद्रूप चित्रों को भी उकेरा गया है, जिनमें सुव्यवस्था, सुशासन और मानवीय संवेदना के रंग-बिरंगे चटख रंग भरने की पुरजोर कोशिश और तड़प है। इयत्ता बोध, प्रेम, मानवीय सम्बन्ध, प्राकृतिक सौन्दर्य, जीवन के प्रति आस्था ईमानदारी से अपने अनुभवों की अभिव्यक्ति करती हुई क्रमशः व्यष्टि से समष्टि की ओर चली यात्रा है, जिसमें अपने साथ जगत के सुखे-दुख संजोए है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अनामिका, कविता क्या चाहती है, वागर्थ, मार्च 1998।
2. रवीन्द्र नाथ मिश्र, इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता, हिन्दी अनुशीलन पृष्ठ संख्या - 109, जून 2005।
3. राजी सेठ, स्त्री सृजन और अस्मिता बोध, हिन्दी अनुशीलन, पृष्ठ संख्या - 28-29, जून 2009।
4. शकुन्त माथुर, दूसरा सप्तक, पृष्ठ संख्या - 44।
5. शकुन्त माथुर, दूसरा सप्तक, पृष्ठ संख्या - 46-47।
6. शकुन्त माथुर, दूसरा सप्तक, पृष्ठ संख्या - 54-55।
7. कीर्ति चौधरी, तीसरा सप्तक, पृष्ठ संख्या - 70-71।
8. सुमन राजे, 'चौथा सप्तक', पृष्ठ संख्या - 185।
9. सुमन राजे, 'सपना और लाशघर', पृष्ठ संख्या - 15।
10. सुमन राजे, 'यात्रा दंश', पृष्ठ संख्या - 28।
11. सुमन राजे, 'एरका', पृष्ठ संख्या - 88।
12. सुमन राजे, 'इक्कीसवीं सदी का गीत', पृष्ठ संख्या - 41।
13. गगन गिल, विपासा पृष्ठ संख्या - 133, सितम्बर फरवरी 2003।
14. गगन गिल, विपासा पृष्ठ संख्या - 135, सितम्बर - फरवरी 2003।
15. वर्तिका नंदा - तद्भव, पृष्ठ संख्या - 132, जुलाई 2009।
16. वर्तिका नंदा - तद्भव, पृष्ठ संख्या - 132, जुलाई 2009।
17. निर्मला गर्ग, विपासा, पृष्ठ संख्या - 144, सितम्बर-फरवरी 2003।

18. निर्मला गर्ग, विपासा, पृष्ठ संख्या - 146, सितम्बर-फरवरी 2003।
19. गुरुचरण सिंह, समकालीन कविता के सरोकार, पृष्ठ संख्या-137।
20. गुरुचरण सिंह, समकालीन कविता के सरोकार, पृष्ठ संख्या - 126।
21. कुसुम - 'धुएं का सच'।
22. सुदर्शन प्रियदर्शिनी, कथा क्रम, पृष्ठ संख्या - 83, जुलाई सितम्बर, 2010।
23. सुबोध चतुर्वेदी, कथा क्रम, जुलाई सितम्बर 2010।



बालकों के शारीरिक एवं मानसिक विकास में योग की भूमिका



— कल्पना चौधरी

शोधार्थी – चित्रकला विभाग,
महिला महाविद्यालय, किदवई नगर
कानपुर-208011 (उत्तर प्रदेश)

ई-मेल:

chaudharikalpana9876@gmail.com



— शोध निर्देशिका

प्रोफेसर वंदना शर्मा
विभागाध्यक्ष – चित्रकला विभाग,
महिला महाविद्यालय, किदवई नगर
कानपुर-208011 (उत्तर प्रदेश)

ई-मेल:

vandana.sharma474@gmail.com

मनुष्य जीवन की सभी अवस्थाओं में (बाल्यावस्था, युवावस्था, वयस्क एवं वृद्ध) शारीरिक एवं मानसिक विकास के विभिन्न चरण होते हैं। इसके समुचित विकास हेतु योगाभ्यास का सहारा लिया जा सकता है। इसके लिए सर्वप्रथम यह आवश्यक है हम समझे योग क्या है? और यह कहा से आया? योग को भारत में 5000 साल पहले शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक आदि सभी पहलुओं को सुव्यवस्थित करने हेतु एक व्यापक प्रणाली के रूप में विकसित किया गया था। यह व्यायाम का एक वर्षी पुराना रूप है जो शारीरिक एवं मानसिक खुशहाली हेतु शक्ति, स्फूर्ति, लचीलेपन और सांस पर ध्यान केंद्रित करता है। योग के मुख्य घटक “आसन और श्वास” है।

“माना जाता है कि योग का अभ्यास सभ्यता के आरम्भ से ही शुरू हो गया था। योग विज्ञान की उत्पत्ति हजारों साल पहले हुई थी, पहले धर्मों या विश्वास प्रणालियों के जन्म से बहुत पहले। योग विद्या में, शिव को पहले योगी या आदियोगी और पहले गुरु या आदिगुरु के रूप में देखा जाता है। कई हजार वर्ष पूर्व, हिमालय में कांतिसरोवर झील के तट पर, आदियोगी ने अपने गहन ज्ञान को पौराणिक सप्तर्षियों को दिया था। ऋषियों ने इस शक्तिशाली योग विज्ञान को एशिया मध्य-पूर्व उत्तरी अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका सहित दुनिया के विभिन्न हिस्सों में पहुँचा।” दिलचस्प बात यह है कि आधुनिक विद्वानों ने दुनिया भर में प्राचीन संस्कृतियों के बीच पाई जाने वाली करीबी समानताओं पर ध्यान दिया और आश्चर्यचकित हुए। हालांकि यह भारत ही था जहाँ योग प्रणाली को अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति मिली।

‘योग के द्वारा विभिन्न दशाओं को पार करता हुआ व्यक्ति मन और आत्मशक्ति का विकास करता हुआ आत्मज्ञान को प्राप्त होता है। हमारे ऋषि-मुनियों ने योग के द्वारा शरीर मन और प्राण की शुद्धि तथा परमात्मा की प्राप्ति के लिए आठ प्राकर के साधन बतलाए हैं, जिसे अष्टांग योग कहते हैं। ये हैं—

1. **यम**— सामाजिक व्यवहार में आने वाले को यम कहते हैं। जैसे किसी को न सताना, यातना न देना, लोभ लालच न करना, चोरी, डकैती न करना अर्थात् कोई ऐसा कार्य न करना जिससे मानव समाज के किसी भी अंग का अहित होता है।

2. **नियम**— इसका सम्बन्ध आपके अपने चरित्र से है। व्यक्तिगत चरित्र स्वच्छ और उत्तम होना चाहिये। जब आपका अपना चरित्र ठीक होगा तो आप समाज के एक श्रेष्ठ अंग बन जायेंगे। श्रेष्ठ समाज उत्तम व्यक्तियों से ही मिलकर बनता है।

3. **आसन**— शरीर के विभिन्न अंगों के विकास के लिये



और आत्मिक लाभ प्रदान कर रहा है। योग एक आध्यात्मिक अनुशासन है। यह मन एवं शरीर के बीच संतुलन एवं सामंजस्य स्थापित करने में मददगार है। जीवन के हर पड़ाव पर मस्तिष्क एवं शरीर के बीच सामंजस्य होना अति आवश्यक है। इसी कारण आधुनिक समय में बाल्यावस्था से ही बालकों को योगाभ्यास करना अति आवश्यक क्रियाओं में से एक माना जाने लगा है। बढ़ते हुए बैग का बोझ, मानसिक तनाव, असंतुलित भोजन एवं असंतुलित जीवन शैली हमारे आने वाली युवा पीढ़ी को प्रभावित कर रही है। अगर बच्चे कम आयु में ही अपने तनाव को प्रबन्धन एवं नियंत्रित करना नहीं सीख पाते हैं, तो इससे आने वाले भविष्य में मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। इसके अलावा योग बच्चों के लिए शान्त और स्थिर महसूस करने के लिए एक सकारात्मक वातावरण बनाने में भी सहायक है। जब बच्चों में योगाभ्यास की आदत विकसित होती है तो वे अपने शरीर के साथ एक मजबूत सम्बन्ध बनाने में सक्षम होते हैं। उदाहरण हेतु बहुत सारे योगासन आपके शरीर को मजबूत बनाने के साथ-साथ संतुलन और लचीलेपन को बेहतर बनाने में मदद करते हैं। बढ़ती उम्र के साथ बच्चों को उनके रास्ते में आने वाली विभिन्न चुनौतियों से तनाव का भी सामना करना पड़ सकता है। तनाव शरीर को कई तरह से प्रभावित कर सकता है और कभी-कभी बच्चों को निष्क्रिय भी बन सकता है। इसीलिए योगाभ्यास स्वस्थ दिनचर्या को बनाए रखने में मददगार हो सकता है। (चित्र-1 पिछले पृष्ठ पर देखिये)

इस तथ्य को हम दो भागों में विभक्त कर साविस्तार समझ सकते हैं—

1. शारीरिक विकास में योग की भूमिका।
2. मानसिक विकास में योग की भूमिका।

शारीरिक विकास में योग की भूमिका—

‘हमें बचपन से सिखाया जाता है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का वास होता है और यह एकदम सत्य भी है, क्योंकि हमारा शरीर एक मशीन के समान ही कार्य करता है। किसी हिस्से में खराबी आ जाने पर शरीर की कार्य क्षमता में कमी आना स्वाभाविक है। इसीलिए शरीर सुचारु रूप से काम करता रहे इसके लिए उसके हर अंग का स्वस्थ होना अति आवश्यक है और योग ऐसा करने में सक्षम है। आधुनिक समय में वयस्कों का योग करना सामान्य सी बात हो गई है। परन्तु अब बालकों के लिए भी योग अति आवश्यक बताया जा रहा है, क्योंकि आधुनिक जीवन शैली की बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा के साथ-साथ बच्चों को तमाम गतिविधियों में प्रतिभा करना पड़ता है। साथ ही अभिभावक एवं शिक्षकों की अपेक्षाओं की पूर्ति करना अति आवश्यक हो गया है। ऐसे में मानसिक एवं शारीरिक दोनों ही प्रकार के तनाव का सामना बच्चों को करना पड़ता है। योग शारीरिक विकास में अहम भूमिका का निर्वाह करता है, क्योंकि यह शरीर में लचीलापन स्फूर्ति शक्ति एवं संतुलन को कायम करता है। जिससे समग्र स्वास्थ्य में सुधार होता है एवं भिन्न-भिन्न प्रकार की बीमारियों से भी बचाव में कारगर है।’

➤ योगाभ्यास में विभिन्न प्रकार के आसन एवं

मानसिक विकास में योग की भूमिका





मुद्राओं को शामिल किया जाता है। जिससे शरीर में लचीलापन बढ़ता है और शरीर का समग्र संरेखण बेहतर होता है। जिससे उनकी लम्बाई का विकास होता है।

☛ योगाभ्यास बच्चों में शारीरिक जागरुकता का विकास करता है, जिससे वे शरीर की गतिविधियों को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।

☛ प्रतिदिन योगाभ्यास प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत कर रोग प्रतिरोध क्षमता का विकास करता है।

☛ योग ध्यान एवं एकाग्रता की क्षमता का भी विकास करने में सहायक है, जिससे बालक को मानसिक एवं शारीरिक रूप से स्वस्थ रहने में मदद मिलती है एवं हृदय विकारों से भी बचता है। (चित्र-2 पिछले पृष्ठ पर

देखिये)

मानसिक विकास में योग की भूमिका—

‘वर्तमान समय में हुए अध्ययनों से यह भी पता चला है कि योग और तनाव हार्मोन के स्तर में कमी के बीच सम्बन्ध है। साथ ही स्वस्थ व्यक्तियों में प्रतिरक्षा कार्य में भी वृद्धि होती है। तनाव को कम करने के अलावा योग अभ्यास विश्राम की भावना को बढ़ावा देता है योग के शारीरिक आसन और स्वास अभ्यास मांसपेशियों की ताकत लचीलापन रक्त परिसंचरण और ऑक्सीजन अवशोषण में सुधार करते हैं जो न केवल सामान्य शारीरिक स्वास्थ्य बल्कि मानसिक स्वास्थ्य को भी लाभ पहुँचाते हैं साथ ही अभ्यास करने वाले को तनाव के प्रति अधिक लचीला बनने

बच्चों के मानसिक योग के अभ्यास

KIDS YOGA



TREE POSE



CAMEL POSE



LORD OF THE DANCE POSE



CHAIR POSE



BIG TOE POSE



TRIANGLE POSE



BOW POSE



BOAT POSE



SCORPION POSE



DOWN DOG POSE



WARRIOR POSE



PLANK POSE



COW POSE



SEATED SIDE POSE



WARRIOR 2 POSE



LUNGE POSE



में भी मदद करते हैं।'

डॉ नेविंस कहते हैं— "नियमित योग अभ्यास से मानसिक स्पष्टता और शांति आती है। शरीर के प्रति जागरूकता बढ़ती है। पुराने तनाव से राहत मिलती है। मन शान्त होता है। ध्यान केंद्रित होता है और एकाग्रता बढ़ती है।'

शारीरिक विकास के साथ-साथ योग मानसिक विकास में भी अहम भूमिका का निर्वाह करता है, क्योंकि यह तनाव को काम करता है एवं एकाग्रता को बढ़ाता है। आत्म-नियंत्रण एवं मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में मदद करता है।

नियमित योग अभ्यास से ध्यान केंद्रित करने की क्षमता का विकास होता है और सोच भी स्पष्ट होती है।

☛ योग अपने शांति दायक प्रभावों के लिए जाना जाता है जो अवसाद तनाव और चिंता को प्रबन्ध प्रतिबंधित करने में मदद करता है।

☛ योग रोजमर्रा की जिन्दगी में मानसिक ध्यान बनाए रखने में मदद करता है जिसे ध्यान अवधि में बढ़ोतरी और एकाग्रता में सुधार होता है।

☛ योग बालकों को शरीर और मन की बात सुनने के लिए प्रोत्साहित करता है आत्म जागरूकता बढ़ता है एवं भावनाओं और विचारों की गहरी समझ को बढ़ाने में मदद करता है।

☛ योगाभ्यास से व्यक्ति को बेहतर नींद आती है जिससे वह तरोताजा महसूस करता है एवं मानसिक कार्य क्षमता का भी विकास होता है।

☛ प्रतिदिन योगाभ्यास के द्वारा बालकों में सकारात्मक ऊर्जा का प्रभाव होता है, जिससे उनका आत्म सम्मान बल बढ़ाने में मदद मिलती है। **(चित्र-3 पिछले पृष्ठ पर देखिये)**

मानसिक योग के अभ्यास—

ध्यान — ध्यान एक ऐसा अभ्यास है जिसमें मन को एक बिन्दु पर केंद्रित किया जाता है, जैसे कि सांस, मंत्र, या कोई दृश्य। ध्यान नियमित रूप से करने से मन को शांत और केंद्रित करने में मदद मिलती है।

प्राणायाम — प्राणायाम सांस के माध्यम से ऊर्जा को नियंत्रित करने की एक तकनीक है। कुछ प्राणायाम, जैसे कि अनुलोम-विलोम और भ्रामरी तनाव को कम करने और मन को शान्त करने में मदद करते हैं।

माइण्डफुलनेस — माइण्डफुलनेस एक ऐसी तकनीक है जिसमें अपने विचारों और भावनाओं को बिना

किसी निर्णय के ध्यान से देखने और स्वीकार करने की प्रक्रिया शामिल होती है।

योगासन— कुछ योगासन, जैसे कि बालासन, उत्तानासन, और वीरासन तनाव को कम करने और मन को शान्त करने में मदद करते हैं।

मानसिक योग एक शक्तिशाली उपकरण है जो मन को शान्त, केंद्रित और तनावमुक्त बनाने में मदद करता है। नियमित रूप से योग के अभ्यास से मानसिक स्वास्थ्य में सुधार होता है और व्यक्ति को बेहतर महसूस होता है।

मानसिक योग के प्रकार — मानसिक योग के कई प्रकार हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं—

1. ध्यान योग— ध्यान योग मानसिक योग का एक प्रमुख प्रकार है, जिसमें ध्यान के माध्यम से मानसिक शान्ति और एकाग्रता प्राप्त की जाती है।

2. प्राणायाम योग — प्राणायाम योग मानसिक योग का एक अन्य प्रमुख प्रकार है, जिसमें श्वास को नियंत्रित करने के माध्यम से मानसिक शांति और संतुलन प्राप्त किया जाता है।

3. राज योग — राज योग मानसिक योग का एक उच्च स्तरीय प्रकार है, जिसमें ध्यान, प्राणायाम, और अन्य तकनीकों के माध्यम से मानसिक शांति और संतुलन प्राप्त किया जाता है।

4. भक्ति योग — भक्ति योग मानसिक योग का एक प्रकार है, जिसमें भक्ति और प्रेम के माध्यम से मानसिक शांति और संतुलन प्राप्त किया जाता है।

5. ज्ञान योग — ज्ञान योग मानसिक योग का एक प्रकार है, जिसमें ज्ञान और बुद्धिमत्ता के माध्यम से मानसिक शांति और संतुलन प्राप्त किया जाता है।

6. कर्म योग — कर्म योग मानसिक योग का एक प्रकार है, जिसमें कर्म और सेवा के माध्यम से मानसिक शांति और संतुलन प्राप्त किया जाता है।

7. मंत्र योग— मंत्र योग मानसिक योग का एक प्रकार है, जिसमें मंत्रों के माध्यम से मानसिक शांति और संतुलन प्राप्त किया जाता है।

8. तन्त्र योग— तन्त्र योग मानसिक योग का एक प्रकार है, जिसमें तन्त्र के सिद्धांतों के माध्यम से मानसिक शांति और संतुलन प्राप्त किया जाता है।

इन सभी प्रकारों के अलावा, मानसिक योग के कई अन्य प्रकार भी हैं, जिनमें से प्रत्येक के अपने विशिष्ट लाभ और तकनीकें हैं।



बालकों को योग सिखाने से पूर्व ध्यान रखने योग्य प्रमुख बातें –

वयस्क व्यक्तियों को योग एवं योग का महत्व समझाना अत्यन्त सरल है किन्तु विकसित हो रहे बालकों को योग सिखाने में कुछ समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है। इसीलिए योग सिखाने वाले शिक्षकों को योग सिखाने का पर्याप्त ज्ञान एवं अनुभव होना चाहिए और बालकों को योग का महत्व बताने के लिए प्रभावी संचार कौशल होना चाहिए।

निम्नलिखित बिन्दुओं का यदि ध्यान रखा जाए तो बालकों को योग बेहतर तरीके से सिखाया जा सकता है—

(1) प्रशिक्षक पूर्ण प्रशिक्षित हो— योग प्रशिक्षक बनने से पूर्व व्यक्ति को योग शिक्षा में पूरी तरह से प्रशिक्षित होना चाहिए। योग के विभिन्न पहलुओं को जानना चाहिए जैसे— आसन, प्राणायाम इत्यादि। जब एक योग प्रशिक्षक पूर्ण रूप से प्रशिक्षित होता है। तभी वह छात्रों के लिए बेहतर प्रशिक्षण पद्धति अपना सकता है।

(2) बालकों की जरूरत का आकलन— बालकों की जरूरत का आकलन फिटनेस एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी विचारों के बीच अलग-अलग होता है। बालकों के योग अनुभव और सीमाओं का विश्लेषण करके योग शिक्षक व्यक्तिगत जरूरत के हिसाब से योगाभ्यास को अनुकूलित कर सकता है।

(3) छात्रों को मूल बातें सिखाएं— सर्वप्रथम अलग-अलग आसन एवं प्राणायाम सीखने से पूर्व छात्रों को योग के महत्व और अहम पहलुओं पर प्रशिक्षित करना जरूरी है। प्रशिक्षकों को एक सकारात्मक माहौल बनाना चाहिए एवं योग से सम्बन्धित सभी प्रकार की जिज्ञासा को उपयुक्त उत्तर द्वारा संतुष्ट करना चाहिए।

(4) प्रदर्शन द्वारा समझाएं— बच्चों में अनुकरण करने की अपार क्षमता होती है, इसीलिए एक प्रशिक्षक का यह कर्तव्य बनता है, कि वह सर्वप्रथम स्वयं उदाहरण प्रस्तुत करें एवं छात्रों को उसका अनुसरण करने को कहे। जिससे बालक उचित प्रकार से योगाभ्यास कर सके।

(5) बालकों के आसनों को सही करें— प्रशिक्षक प्रशिक्षण के दौरान सजग रहे की बच्चे योगाभ्यास उपयुक्त प्रकार से कर रहे हों। ताकि यदि आवश्यकता हो तो उन्हें सही परामर्श भी दिया जा सके।

बालकों को इस बात से भी अवगत कराना चाहिए कि किस प्रकार योग उनकी पढ़ाई पर बेहतर ध्यान केन्द्रित करने में मदद कर सकता है एवं उनके शरीर की

माँसपेशियों को मजबूत कर उनके शरीर को सुदृढ़ बना सकता है।

निष्कर्ष –

इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि वर्तमान परिदृश्य में जहाँ समाज में विकास की गति तेज होती जा रही है। जिस कारण मनुष्य का रहन-सहन, सोच विचार, खान-पान इत्यादि में बहुत तेजी से बदलाव आ रहे हैं। जहाँ एक तरफ मनुष्य के जीवन में आरामदायक स्थिति बढ़ है। वहीं दूसरी तरफ शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों की बढ़ोतरी हुई है।

इस असंतोषजनक दैनिक जीवन में अपने आने वाली पीढ़ियों की शारीरिक एवं मानसिक विकास के गुणवत्ता पूर्ण विकास हेतु योग एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकने में सक्षम है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- योग "स्वस्थ जीवन जीने का तरीका" – NCERT।
- योग दर्शन का परिचय – स्वामी कृष्णानन्द।
- योग सूत्र – स्वामी जनेश्वर भारती।
- योग माला – श्री के. पृथ्वी जोशी।
- योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ. अपर्णा शर्मा।
- योग विज्ञान एवं निसर्गोपचार – डॉ. वाई. डी. गहराना।
- योग शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता भावात्मक शिक्षा (भाग-1)- NCEERT।
- योग पर प्रकाश – बी. के. एस. अयंगर।
- स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा – NCERT।
- स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र - NCERT।
- <https://www.bhaskar.com/har-amb-omc-mat-latest-ambala-news-030510-763100-nor.html>।
- https://www.mea.gov.in/search-result.htm?25096/Yoga:_su_origen,_historia_y_desarrollo।
- https://www.mea.gov.in/search-result.htm?25096/Yoga:_su_origen,_historia_y_desarrollo।
- योग शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता भावात्मक शिक्षा (भाग-1) SCERT (इकाई- 5 (अ) योग शिक्षा, पृष्ठ संख्या-50।
- <https://www.bhaskar.com/har-amb-omc-mat-latest-ambala-news-030510-763100-nor.html>।
- स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा – NCERT पृष्ठ संख्या-14।
- योग "स्वस्थ जीवन जीने का तरीका" – NCERT (पृष्ठ संख्या – 86)।
- https://osteopathic-org.translate.google/what-is-osteopathic-medicine/benefits-of-yoga/?_x_tr_sl=en&_x_tr_tl=hi&_x_tr_hl=hi&_x_tr_pto=sge।
- स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र – NCERT (पृष्ठ संख्या – 21-22)।

पंचायतीराज की अवधारणा एवं विकास : एक अध्ययन

सारांश



— शिव नारायण यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर —
राजनीति विज्ञान विभाग,
रामस्वरूप ग्रामोद्योग महाविद्यालय,
पुखरायाँ, कानपुर देहात-209111
(उत्तर प्रदेश)

ई-मेल:

shivnarayanyadav8889@gmail.com

ग्रामीण जनक्रान्ति ने अंग्रेजों को चौंका दिया था। अब वह बड़ी गम्भीरता से इस घटना की समीक्षा में जुट गये। उन्होंने पाया कि इस आन्दोलन में जनता की जो बड़े पैमाने पर हिस्सेदारी थी, उसकी प्रेरणा भारत के गाँव समाज की स्वतः स्फूर्ति ऊर्जा से ही मिली थी। जैसे तो उन्होंने भारत के गाँव समाज को पिछले कुछ वर्षों में काफी क्षत-विक्षत कर दिया था, लेकिन उसकी मूल चेतना को छू भी नहीं सके थे, इसीलिए परस्पर सम्बन्धों की सघनता और उसकी ऊर्जा का अन्तर्प्रवाह जारी था। इसमें पंचायत व्यवस्था अत्यधिक सहायक थी। धीरे-धीरे पंचायती राज के प्रति जागरूकता हुई और भारत की ग्रामीण संस्थाएँ विशेष कर पंचायती राज की याद बार-बार आई और स्थानीय स्वशासन के पुनरुत्थान के लिए अलग से प्रयास प्रारम्भ किया गया।

प्रस्तावना -

पंचायती राज की अवधारणा अति प्राचीन है। प्राचीन विचारधारा के अनुसार पंचायती राज की अवधारणा गाँव जीवन से थी। गाँव जीवन के पत्रक जब भी जहाँ भी किसी समस्या के समाधान या किसी विवाद के निपटारे अथवा किसी चुनौती का सामना करने के लिए परस्पर जुट जाते थे तो उसे पंचायत की संज्ञा से विभूषित कर दिया जाता था। पंचायत सिर्फ पाँच लोगों के जुटने का नाम नहीं थी बल्कि इस जीवन शैली के आधार पर जीवन के नियम का प्रयास थी।¹ पंचायती राज के विषय में सर्वप्रथम महात्मा गाँधी ने लिखा है। उन्होंने अपने एक लेख 29 जनवरी, 1948 में प्रकाशित किया जिसमें लिखा है कि ग्राम स्वयं पूर्णतः अतीत कालीन भारतीय समाज की बुनियाद थे और विराट भारतीय समाज का निर्माण 7 लाख गाँव समाज के समुच्चय से बनता था।² उनके अनुसार भारत का गाँव समाज उतना ही पुराना है जितना कि भारत। भारत का स्वत्व और उसकी आत्मा गाँवों में बसती है। यह कथन वर्षों से एक सहज और सामान्य कथन के रूप में सदैव माना जाता रहा है और लगभग सभी ने किसी न किसी रूप में इस सच्चाई को समझा भी है। महात्मा गांधी जी के अनुसार अगर गाँव नष्ट हो जाएं तो हिन्दुस्तान भी नष्ट हो जायेगा। वह हिन्दुस्तान ही नहीं रह जायेगा। दुनिया में उसका अपना निशान ही खत्म हो जायेगा।'

गाँधी ने दूसरे कथन में भी कहा है कि मेरा विश्वास है कि आजाद भारत दुःख से कराहती हुई दुनिया के प्रति अपना कर्तव्य अपने लाखों गाँवों का विकास करके, दुनिया के प्रति मित्रता का व्यवहार करके और सादा परन्तु



उदात्त जीवन अपनाकर ही पूरा कर सकता है।'

लार्ड मेटकाकू ने पंचायती राज के विषय में कहते हैं कि भारत का गाँव समाज दुनिया के लोकतन्त्र का सबसे बेहतर नमूना है, इसी जीवन शैली की आधुनिकता दृष्टि से व्याख्या है। पंचायती राज की जीवन शैली को यदि संवाद, सहमति, सहयोग, सहभाग और सहकार जैसे पाँच तत्वों से चिन्हित करें तो लोक तान्त्रिक जीवन का उच्चतम आदर्श बड़ी सरलता के साथ निरूपित किया जाता है।

कुछ विद्वानों ने पंचायती राज व्यवस्था को एक सांस्कृतिक इकाई माना है। जो परिवार और पड़ोस से मिलकर बनती है। भारतीय संस्कृति के दो मूलाधार तत्व हैं - सहजीवन और सह अस्तित्व।³ ये दोनों तत्व क्रमशः गाँव के परिवार और पड़ोस में शताब्दियों से प्रवाहमान रहे हैं। जब किभी भी परिवार में विघटन या पड़ोस के साथ विवाद के रूप में इन मूल तत्वों पर संकट आया तब आपस में बैठकर संवाद, सहमति, सहयोग, सहभाग और अहंकार के आधार पर गाँव समाज ने सहजीवन और सह अस्तित्व के भाव पर आये हुए संकट को हल कर लिया था और पूरे प्रयास को बड़े आदर के साथ पंचायत की संज्ञा दी थी। इस रूप में पंचायत राष्ट्र एवं समाज की सांस्कृतिक पूंजी है।⁴

दूसरी ओर इन्ही जीवन मूल्यों को आधार बनाकर गाँव समाज ने अपने संचालन के लिए जो व्यवस्था बनाई थी, वह उसे स्वालम्बी और स्वायत्त इकाई के रूप में प्रतिष्ठित करता था। इसी को इतिहास में ग्राम गणराज्य के रूप में संबोधित किया गया है। जिसके लिए बापू ने सपना संजोया था - 'ग्राम स्वराज की मेरी कल्पना यह है कि वह एक पूर्ण प्रजातन्त्र होगा जो अपनी महत्व की जरूरत के लिए अपने पड़ोसी पर भी निर्भर नहीं करेगा और फिर भी बहुतेरी दूसरी जरूरतों के लिए जिसमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा - वह परस्पर सहयोग से काम लेगा।'⁵

पंचायती राज की अवधारणा के सम्बन्ध में हमें प्राचीन भात की स्थिति का आकलन करना होगा। अतएव भारत की प्राचीन पंचायती राज अवधारणा इस प्रकार स्वीकार की जाती थी - पंचायती राज के सम्बन्ध में सरचार्ल्स मेटकाल ने 1830 ई. में इस प्रकार लिखा है - ये गाँव समाज छोटे-छोटे प्रजातन्त्र हैं जिन्हें अपनी आवश्यकता की लगभग हर वस्तु अपने भीतर ही मिल जाती है और जो विदेशी सम्बन्धों से लगभग स्वतन्त्र होते हैं। वे ऐसी परिस्थितियों में भी टिके रहते

हैं जिनमें दूसरी हर वस्तु का अस्तित्व मिट जाता है। गाँव समाजों का यह संघ जिनमें सह प्रत्येक समाज अपने आप में एक छोटा-सा स्वतन्त्र राज्य होता है, उनके सुख का बहुत बड़ी हद तक साधन बनता है और उसके अन्तर्गत वे बड़ी मात्रा में स्वतन्त्रता और स्त्री स्वाधीनता का उपयोग हैं।'

लार्ड मेटकाल ने गाँव समाज के गणतांत्रिक स्वरूप को बड़ी गहराई तक पहचाना और उसे एक बेहतर लोकतन्त्र को रूप में संदर्भित किया। भारत के इस प्राचीन गाँव समाज को आज और अधिक गहराई से समझने की आवश्यकता है क्योंकि इस देश की यही वह छाती है जिस पर पूरी की पूरी भारतीय संस्कृति टिकी रही है और आगे आने वाले समय में यदि कहीं से भी भारत के गौरव का पुनर्जागरण होना है तो यही उसका सबसे बड़ा आधार होगा। अतः भारत के इस गाँव समाज के स्वभाव को समझाते हुए ही पंचायती आज के ताने बाने को बुना जाना चाहिए। यात्रा के दौरान इसी गाँव समाज को समझने की कोशिश की गई थी। अतएव वर्तमान पंचायती राज की अवधारणा को इसी परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकित किया है।⁶

पंचायती राज के लिए गाँव समाज और उसके संचालन के लिए सर्व सहमति और स्वीकृति से बनाई गई पंचायत व्यवस्था के ऐतिहासिक संदर्भों को इसी दृष्टि से समझने का प्रयास किया जाना चाहिए। इसी अवधारणा के साथ पंचायती राज और इतिहास, एवं विकास के विभिन्न संदर्भों को यहाँ पर अध्ययन का विषय बनाया गया है।

पंचायती राज की अवधारणा में प्रागैतिहासिक काल की जो भी तस्वीर बनाई जाती है उसमें जब मनुष्यों के बीच परस्पर सम्बन्धों का विकास हुआ तब जहाँ से स्थायित्व की कोई भी स्थिति बनी वहीं से गाँवों की संचरना आ कार्य प्रारम्भ हो गया था और इसी के साथ गाँव समाज भी बना कर समाज मनुष्य और मनुष्य के बीच का सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध का मूलाधारा प्रेम और सहयोग था। परस्पर एक दूसरे की आवश्यकताओं एवं कठिनाइयों के समाधान की खोज के साथ ही सहयोग निर्मित हुआ तथा परस्पर आकर्षण और बाद में रक्त सम्बन्धों ने प्रेम को धीरे-धीरे एक व्यापक आधार दिया था। पंचायती राज में इन सब स्थितियों का विशेष महत्व है।

पंचायती राज की अवधारणा के विषय में प्राचीन काल की पंचायतों पर विशेष ध्यान देना अनिवार्य है। प्राचीन पंचायतों में निम्नलिखित पंचायती राज की अवधारणायों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है -



ब्रिटिश काल में पंचायती राज अवधारणा -

ब्रिटिश काल में पंचायती राज अवधारणा का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। प्राचीन काल से लेकर मध्य काल की सभी पंचायते गांव समाज की अपनी एक स्वतः स्फूर्ति व्यवस्था जो पूरा गाँव जीवन को संचालित करती थी। पंचायतें इसका केन्द्र बिन्दु थी, इसी के माध्यम से सामान्य व्यवस्था एवं न्याय व्यवस्था दोनों इस प्रकार संचालित थी कि राज्य या राजाओं के मध्य तब्दीलियाँ होती थी, उनका कोई भी प्रभाव इन पर नहीं पड़ा था। इसके दोनों पक्ष थे, एक तो यह है कि ग्राम समाज की यह व्यवस्था इतनी व्यावहारिक एवं सर्वमान्य थी कि उसकी जड़े जनजीवन की अंतर्चेतना में समाई हुई थी। दूसरी ओर राज्यों अथवा राजाओं ने उसकी मूल संचेतना पर भी कोई प्रहार नहीं किया। किसी तरह की छेड़छाड़ नहीं की।

यह उनकी समझदारी थी और समय की मांग भी। सन् 1812 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा भारतीय गाँवों के अध्ययन के लिए नियुक्त गुप्त कमेटी की रिपोर्ट में भी इसी सच्चाई को उजागर किया गया है इस देश में आदिकाल से सादे ढंग का स्थानीय शासन प्रचलित है। लोगों ने एक राजा के आने या दूसरे के चले जाने को कभी अनुभव नहीं किया। राज्य बने और छूटे पर ग्रामवासियों ने अपने इस स्वायत्त शासन में कोई अवरोध नहीं पाया।

ग्राम उसी प्राचीन रूप में सुदृढ़ तथा संगठित हे। उनके अधिकार सुरक्षित रहे और सदियों की तब्दीलियों उनको कोई हानि नहीं पहुंचा सकी। इस प्रकार ब्रिटिश काल में पंचायती राज व्यवस्था को आद प्राप्त हुआ इसी सन्दर्भ में लार्ड मेटकाल का अध्ययन भी अवलोकन करें।

सन् 1830 में लार्ड मेटकाल का अध्ययन भी लगभग पंचायती राज अवधारणा के अन्तर्गत रहा है। इन्होंने भी पंचायती राज अवधारणा में गांव समाज का खाका खींचा है - 'एक राज परिवार के बाद दूसरे राज परिवार का पतन हुआ। एक बिप्लव के बाद दूसरा बिप्लव आया। हिन्दू पणन, सिख तथा अंग्रेज एक के बाद एक इस देश के शासक बने परन्तु ग्राम्य संस्थाओं में कोई अन्तर नहीं आया। भारतीय ग्रामों की यह इकाई ही वास्तव में उन्हें उन परिवर्तनों तथा क्रान्तियों से बचा सी है जो समय-समय पर यहाँ आते रहे हैं। देश के सुख, शान्ति, समृद्धि और स्वतन्त्रता का अधिकार एवं श्रेय इन्हीं पंचायतों को ही है।'

भारत की इस प्राचीन और लोकप्रिय पंचायत

व्यवस्था को ब्रिटिश शासन में सबसे गहरा आघात लगा। व्यापारी बनकर आये अंग्रेजों के लिए भारत का गाँव समाज की सबसे बड़ा अवरोधक था, क्योंकि भारतीय ग्रामों का स्वालम्बी, आत्मनिर्भर तथा स्वायत्त शासन अंग्रेजी कम्पनी की योजनाओं में बाधक था। इंग्लैण्ड में हुई औद्योगिक क्रान्ति से मैनेचेस्टर और लंकाशायर में कपड़े और लौह के उत्पादन के बड़े कारखाने स्थापित हो गये थे। इनके लिए कच्चा माल और उत्पादित वस्तुओं को खपाने हेतु अनिवेश इसके लिए सबसे अनुकूल था। लेकिन यहाँ वस्त्र उद्योग पूरी दुनिया में अपनी धाक जमाये था। अंग्रेजों का लक्ष्य इसको मार्ग से हटाना था। लेकिन अवरोधक था भारत का गाँव समाज क्योंकि कुटीर उद्योग के रूप में लाखों गाँवों में वस्त्रों का उत्पादन होता था। गाँव की स्वतन्त्र व्यवस्था के चलते इसको रोकना संभव नहीं था। इसलिए अंग्रेजों ने भारत के इस गाँव समाज में हस्तक्षेप करना शुरू किया। भूमि व्यवस्था, जमींदारी प्रथा और नये-नये कानून बनाकर पंचायती राज के अधिकारों में खुलकर हस्तक्षेप के बहाने पंचों को दण्डित भी किया जाने लगा। पंचायतों और पंचायती राज पर आतंक छा गया। धीरे-धीरे पंचायतें निष्क्रिय होने लगी। पंचायतों की समाप्ति के साथ सदियों से चली आने वाली ग्रामीण संगठन की व्यवस्था भी भंग हो गई।

पंचायती राज की अवधारणा के सम्बन्ध में प्रसिद्ध इतिहासकार श्री रमेश चन्द्र दत्त ने एक स्थान पर लिखा है कि भारत में ब्रिटिश राज्य का सबसे अफसोसजन फल यह हुआ है उसने उस ग्राम राज्य की प्रथा को तहस-नहस कर दिया जो विश्व एक सब देशों में सर्वप्रथम भारत में विकसित हुई और सबसे अधिक काल तक पनपी।' अतएव इस प्रकार पंचायती राज व्यवस्था से गाँवों की समृद्धि निर्धनता में बदलाव हुआ।

1857 की क्रान्ति और पंचायती राज -

धीरे-धीरे अंग्रेजों ने अपने व्यापारिक लाभ के लिए ही भारत में अपना साम्राज्य स्थापित किया और इसकी स्थापना की प्रक्रिया ने भारत के गाँवों की व्यवस्था का जो परम्परागत स्वरूप, उसे भिन्न-छिन्न कर दिया। लेकिन शोषण और अत्याचार के बढ़ते प्रभाव से पैदा हुआ असंतोष जब 1857 की क्रान्ति के रूप में प्रकट हुआ, तब कई स्तरों पर तथा कई रूपों में समीक्षा और बदलाव के लिए उनकी ओर से प्रयास आरम्भ हो गये। सबसे प्रमुख कार्य यह हुआ कि भारत की सत्ता ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ से निकल कर ब्रिटिश गर्वनमेंट द्वारा 1857 की क्रान्ति के कारणों पर गम्भीर विचार-विमर्श शुरू



किया गया। इस विचार-विमर्श के विषयों में जहाँ एक ओर भारत में ब्रिटिश शासन को लोकप्रिय बनाने के उपायों की खोज शामिल थी, वहीं दूसरी ओर क्रान्ति के कारणों और उसके स्रोतों की जानकारी प्राप्त करना भी प्रमुख था।

ग्रामीण जनक्रान्ति ने अंग्रेजों को चौंका दिया था। अब वह बड़ी गम्भीरता से इस घटना की समीक्षा में जुट गये। उन्होंने पाया कि इस आन्दोलन में जनता की जो बड़े पैमाने पर हिस्सेदारी थी, उसकी प्रेरणा भारत के गाँव समाज की स्वतः स्फूर्ति ऊर्जा से ही मिली थी। वैसे तो उन्होंने भारत के गाँव समाज को पिछले कुछ वर्षों में काफी क्षत-विक्षत कर दिया था, लेकिन उसकी मूल चेतना को छू भी नहीं सके थे, इसीलिए परस्पर सम्बन्धों की सघनता और उसकी ऊर्जा का अन्तःप्रवाह जारी था। इसमें पंचायत व्यवस्था अत्यधिक सहायक थी। धीरे-धीरे पंचायती राज के प्रति जागरूकता हुई और भारत की ग्रामीण संस्थाएँ विशेष कर पंचायती राज की याद बार-बार आई और स्थानीय स्वशासन के पुनरुत्थान के लिए अलग से प्रयास प्रारम्भ किया गया।

अंग्रेजी शासकों ने इस तथ्य को बड़ी चालाकी के साथ ध्यान में रखा गया कि भारत की सामाजिक संचेतना जो पंचायतों के माध्यम से गाँव समाज की सबसे बड़ी ताकत है, उसे तो और

अधिक कमजोर किया जाय, साथ ही जनता को तात्कालिक राहत के लिए उन्हीं के सहयोग से कल्याणकारी कार्यक्रमों की शुरुआत की जाय। इससे उनके कई हित सधने थे।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि सन् 1857 की क्रान्ति और पंचायती आज अवधारणा में परिवर्तन हुआ और धीरे-धीरे पंचायती राज के प्रति भारतीय जनता का समर्पण भाव जागृति हुआ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- 1- प्राचीन भारतीय इतिहास - डॉ. राजीव जैन, पृष्ठ संख्या 54 से उद्धृत।
- 2- द हिन्दी टाइम्स, नई दिल्ली अंक - 21 फरवरी, 1988।
- 3- प्राचीन भारतीय संस्कृति - बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ संख्या 43।
- 4- हिन्दू सभ्यता - राजबली पाण्डेय, पृष्ठ संख्या 272।
- 5- प्राचीन भारतीय इतिहास - डॉ. संजीव जैन, पृष्ठ संख्या 54 से उद्धृत।
- 6- दि सोसाइटी ऑफ इण्डिया - सर चार्ल्स मेटकाल, वाल्यूम-1, पृष्ठ संख्या 1050।



ABHINAV GAVESHNA

Multi Disiplinary Quareterly International Refreed/Peer Reviewed Research Journal

I.S.S.N. : 2394-4366

(Multi Disiplinary Quareterly International Refreed/Peer Reviewed Research Journal)

(in Multi Language: Hindi + English + Sanskrit)

'Abhinav Gaveshna'

Sector-K-444, 'Shiv Ram Kripa' World Bank Barra-Kanpur-208027 (U.P.)

Contact- 08896244776

E-mail: mohittrip@gmail.com

Visit us : www:abhinavgaveshna.com, thegunjan.com

काशी की चित्रकला में “शिव स्वरूप”

सारांश



— डॉ. कल्पना गौड़
असिस्टेंट प्रोफेसर —
चित्रकला विभाग,
जुहारी देवी गर्ल्स डिग्री कालेज,
कानपुर-208004 (उ.प्र.)

ई-मेल:
garudrkalpna@gmail.com

‘काशी’ को भारत के एक पवित्र तीर्थ के रूप में जाना जाता है। वेदों में सात महापुरों में अयोध्या, मथुरा, माया, हरिद्वार, काँची, अवन्तिका का द्वारावती (द्वारका) के साथ काशी का नाम आता है। बौद्ध साहित्य में इसके कई अन्य नाम यथा— सुरुधन, सुदस्सन, ब्रह्मबडढन, पुम्फावती, रम्मानगर, मोहिनी आदि उल्लिखित हैं। यह विभिन्न भारतीय धर्मों, भाषाओं, वेश भूषाओं की मिली जुली संगम स्थली है। भारतीय कला में शिव स्वरूप की मूर्तियों की तीन धाराएं दिखाई पड़ती थीं। प्रथम उत्तर पश्चिमी धारा दूसरी माथुरी धारा, जो मथुरा के आस पास थी, जो राजस्थान तक फैली थी, इस पर उत्तर पश्चिमी धारा का प्रभाव देखने को मिलता है। तीसरी धारा दक्षिण भारत की धारा है। इस पर उत्तर का प्रभाव पड़ा, किन्तु उसके होते हुये वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व आज तक बनाये रखने में समर्थ है। वाराणसी से मिले हुये इस समय सारनाथ के संग्रहालय में प्रदर्शित गुप्तकाल की चौमुखी मूर्ति में विशेषतया शिवलिंग और अर्द्धनारीश्वर प्रतिमाओं में समकालीन माधुरी गुप्तकाल की विशेषतायें यथा पुष्पदान और ऊर्ध्वलिंग स्पष्टतया देखी जा सकती है।

काशी के स्वरूप की विशिष्टता उसकी भौगोलिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सभी रूपों में प्रकट होती है। यह नगर सांस्कृतिक प्रतीक रूप में अधिक प्रतिष्ठित है। यह भी प्रासंगिक है, कि इस नगर को हिन्दू परम्परा में सर्वोपरि सम्मान प्राप्त है, क्योंकि इतिहास के अनेकों थपेड़ों के बावजूद इसने अपनी अस्मिता जो भारतीय संस्कृति परम्परा की प्रतीक है, को अक्षुण्ण बनाये रखा है। एक दार्शनिक निवासी की दृष्टि में—

“बनारस चाहे कल का हो, चाहे आज का हो या आने वाले कल का, यह प्राचीन विश्व का एक ऐतिहासिक महत्व का नगर कल भी था, आज भी है और भविष्य में भी बना रहेगा। बनारस मात्र एक नगर नहीं, एक संस्कृति है। बनारस ईंट पत्थर ही नहीं बल्कि एक इतिहास है।..... इस नगर को देखना आसान है। पहचानना मुश्किल है। इसे छूना आसान है, पकड़ पाना मुश्किल है। इसे चित्रों में उतारना आसान है, पर इसे मनश्चित्रों में आत्मसात् कर पाना मुश्किल है। इस रूप में यह आसान होते हुये भी बड़ा ही बीहड़ नगर है मुश्किल नगर।.... यह नगर सर्वमान्य है, सर्वकाम्य है और प्रणरम्य भी।”

भारत की पुण्य भूमि पर काशी (बनारस) प्रमुख प्राचीनतम् नगरी है। संसार के उल्लेखनीय नगरों में वाराणसी की कल्पना की जाती है।



भारतीय परम्परा में इस नगर को मुक्ति प्रदान करने वाला माना गया है। वेद के जलोपनिषद से लेकर शिवपुरी, लिंग पुराण, ब्रह्मवर्त, मस्त कर्म, पदम पुराण, वायु तथा मर्कण्डयादि पुराणों एवं महाभारत, रामायण आदि ग्रन्थों में काशी की महिमा वर्णित है और स्कन्द पुराण में तो “काशी खण्ड” का वृहद वर्णन किया गया है। जहाँ तक इसकी प्राचीनता का प्रश्न है, इस विषय में निश्चित रूप से कुछ कह पाना मुश्किल है, कि इसकी स्थापना किसने और कब की। इस विषय में ई. वी. हर्वल का मत है, कि वैदिक और पौराणिक कथाओं के आधार पर यह जान पड़ता है, कि यह प्रायः सहस्र वर्षों का इतिहास अपने आँचल में छिपाये खड़ी है। यहाँ की भूमि में मनु की सीधी वंश परम्परा के प्रमाण मिलते हैं।

“काशी” को भारत के एक पवित्र तीर्थ के रूप में जाना जाता है। वेदों में सात महापुरों में अयोध्या, मथुरा, माया, हरिद्वार, काँची, अवन्तिका का द्वारावती (द्वारका) के साथ काशी का नाम आता है। बौद्ध साहित्य में इसके कई अन्य नाम यथा— सुरुधन, सुदस्सन, ब्रह्मबडडन, पुम्फावती, रम्मानगर, मोहिनी आदि उल्लिखित हैं। यह विभिन्न भारतीय धर्मों, भाषाओं, वेश भूषाओं की मिली जुली संगम स्थली है।

काशी का प्राचीन काल से ही कला से सम्बन्ध रहा है। प्रो. निहारंजन राय के शब्दों में “सभी कलाओं पर अगर हम दृष्टिपात करें तो शीघ्र समझ में आ जाता है, कि प्रायः कला भारत में धर्म या किसी प्रकार की धार्मिक सम्प्रदाय से सम्बद्ध रही है।” काशी में शैव, वैष्णव, वैदिक, बौद्ध, जैन आदि सभी धर्मों का संगम रहा है। काशी रामानन्द वल्लभाचार्य, कबीर, तुलसी की कार्यस्थली भी रही है। उन्होंने अपने अपने धार्मिक विचारों को यहीं अभिव्यक्त किया है। इन सभी सन्तों की भावनात्मक अभिव्यक्ति को साहित्यकारों ने गद्य एवं पद्य के माध्यम से एवं कलाकारों ने चित्रों एवं मूर्तियों के माध्यम से अस्तित्व प्रदान किया। भगवत पुराण में ऋग्वेद के एक ऋषि “ग्रत्सभद” को काशी का लघु भ्राता कहा गया है। इस आधार पर काशी में वैदिक धर्म की प्राचीनता ठहराई जाती है। पुराणों की कथाओं के आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आर्यों के काशी आगमन के समय काशी अनार्य पूजा का केन्द्र था। वायु पुराण एवं स्कन्द पुराण में उल्लिखित दक्ष यक्ष कथा से भाषित होता है, कि शिव अनार्य देवता थे। इस प्रकार शिव काशी के प्रमुख देवताओं में थे। बौद्ध और जैन साहित्य के

साक्ष्यों से ज्ञात होता है, कि काशी में नागों एवं यक्षों की पूजा होती थी। मनुष्य जीवन के तीनों समय विभाजन (भूत, वर्तमान तथा भविष्य) के निरूपण को ध्यान में रखकर कलाकारों के त्रिविक्रम की प्रतिमा तैयार की थी। जिसके वामन तथा विराट स्वरूप का वर्णन पुराणों में मिलता है। साहित्य में एक स्थान में काशी के प्रधान देव को “महाकाल” कहा गया है। महाकाल शिव को भी कहते हैं। कुषाणकालीन मुद्राओं से ज्ञात होता है, कि शिव की पूजा मानव रूप में प्रथम द्वितीये शती में प्रचलित थी। समय-समय पर शत्रुओं के द्वारा विध्वंस के बावजूद आज भी 181 शिव मन्दिर काशी में विद्यमान हैं इसीलिए काशी को ‘शिव’ की नगरी गाना गया है। ऐसी किंवदन्ती है, काशी (वाराणसी) नगरी ‘शिव’ के त्रिशूल की नोक पर टिकी हुई है। इस कारण ये कहीं ऊँची तो कहीं नीची है। कहा जाता है, कि ये त्रिशूल के आकार की भी दिखाई पड़ती है। पदम पुराण में लिखा है कि —

प्राण प्रणायक्सरे ये काश्यां संगताः जनाः ।

ये वा काशीति भावन्ते वा विष्णुः परायणः ।।

अर्थात् मृत्युकाल में काशी का नामोच्चारण करने वाले को विष्णु लोक की प्राप्ति होती है, अतः श्लोक के आधार पर कह सकते हैं, कि उस समय काशी में वैष्णव धर्म भी था।

काशी में शैव धर्म को प्राचीनतम धर्म के रूप में यहाँ की कला में विश्व सृष्टि की रचना के विचारों को व्यक्त करने के लिए कलाकारों ने यहाँ शिव को ब्रह्म के रूप में निरूपित किया है। काशी में शिवलिंग तथा शिव के अन्य रूप कला में दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ शिव को विश्व उत्पत्ति का प्रतीक मानते हैं। कलाकारों ने सांसारिक आडम्बर और वस्त्राभूषण से सुसज्जित देव को मनुष्य के आकार में दिखाया है। फिर भी यहाँ की मूर्ति को आध्यात्मिक भावनारहित नहीं किया जा सकता है। काशी के कलाकारों ने शिव पार्वती की युगल मूर्ति द्वारा “सत्यं शिवम् सुन्दरम्” की एक साथ अभिव्यक्ति की है।

कलाकारों ने शिव को पारिवारिक देवता के रूप में दर्शाया है। हजारों मन्दिरों का निर्माण प्राचीन काल के समय हुआ। मध्ययुगी कला में शिव योगी और व्याख्याता के रूप में दर्शाये गये हैं, तथा विधाओं के अक्षर, संगीत की उत्पत्ति शिव से मानी जाती है। इन सभी कारणों से शिव स्वामी चन्द्रशेखर, विश्वनाथ, नीलकण्ठ, मृत्युंजय त्रिलोचन, भूतनाथ, पशुपति, महेश्वर, महादेव आदि सैकड़ों नामों से



जाने जाते हैं। ग्रन्थों में इनके दो नाम प्रसिद्ध हैं। शिव और रुद्र। शिव में कल्याण तथा मंगलमय कार्य अनुग्रह तथा प्रसाद की पुष्टि होती है, लेकिन रुद्र संहार कार्य प्रलय से सम्बन्धित है। शिवपूजा का आरम्भ प्रगैतिहासिक युग में हो गया था। हड़प्पा के समय भी शिव पूजा का प्रचार प्रसार था, तथा मोहन जोदड़ों से प्राप्त मुद्रा में शिव की आकृति खुदी है। इस आकृति को देवता पशुपति का नाम देते हैं। शिव का प्रतीक लिंग के रूप में अनेक आकृतियाँ प्रागैतिहासिक खण्डहरों से प्राप्त हुई हैं। वैदिक साहित्य में रुद्र के अनेक नामों का वर्णन आता है। पुराणों में शिव मूर्तियों का जो वर्णन है, उसके आधार पर मूर्तियों को दो प्रसिद्ध भागों में विभक्त किया जा सकता है, (1) घोर (2) अघोर। शिवाख्यानो के आधार पर ही अनुग्रह एवं संहार मूर्तियों का वर्णन पुराणकारों द्वारा दिया गया है। उपयुक्त क्रम से शिव मूर्तियों के क्रमिक विकास तथा निर्माण का आधार समझा जा सकता है। जिस रूप का विस्तार हुआ उसके अनुरूप ही शिव को लिंग के साथ में तथा प्रतिमा के रूप में उपस्थित किया गया है।

कलाकारों ने लिंग, मुख्य लिंग और सम्पूर्ण प्रतिमा के क्रम को अपनाया है। धर्म एवं संस्कृति से सम्बन्धित कल्पना तथा विचार मूर्ति निर्माण के महत्वपूर्ण विषय थे। लिंग पूजन की प्राचीनता सिन्धु सभ्यता से चली आ रही है। शिवलिंग की स्थापना और पूजन गुप्तकाल तक विधिवत होती रही है। गुप्तकाल के कलाकारों ने एक नवीन शैली को जन्म दिया है, जिसे मुखलिंग की संज्ञा दी गयी। मुख की आकृति लिंग के पूजा भाग पर तैयार की जाती है। एक मुखलिंग की अनेक मूर्तियाँ मध्य भारत (मध्य प्रदेश) नागौद रियासद से मिली हैं, और गुप्तकालीन चर्तुमुख लिंग उत्तर प्रदेश और बिहार से प्राप्त हुआ है। सातवीं सदी तक मुखलिंग का किसी न किसी रूप में प्रचार था। किन्तु गुप्त युग के (चौथी, पँचवीं सदी) उत्तरार्द्ध में निश्चित रूप से मनुष्य आकार की देव प्रतिमा जिसे लिंगोद्रव मूर्ति कहा गया था निर्मित होने लगी। शिवलिंग से उत्पन्न मनुष्य आकार में देव प्रतिमा को लिंगोद्रव मूर्ति कहा जाता है। इन की दक्षिण भारत में लोकप्रियता रही है। कुषाण राजाओं की मुद्राओं पर शिव की आकृति खुदी हुयी मिली है, लेकिन उसे प्रतिमा की संज्ञा नहीं दे सकते, सम्भवतः गुप्तकाल से शिव की पूर्ण प्रतिमा बनने लगी।

मंदिरों में स्थापित करने की दृष्टि से जो महत्ता प्रतीक को प्राप्त है, वह प्रतिमा को नहीं। कैलाश मन्दिर,

एलौरा, एलिफंटा गुफा, काँची का कैलाश मन्दिर तथा ब्रह्मेश्वर मन्दिर (तंजौर) के भित्तियों पर शिव लीलाओं का अंकन मिलता है, इससे शिव के गुणों का अनुमान लगाया जा सकता है। कामान्तक मूर्ति, गजसंहार मूर्ति, त्रिपुरान्तक मूर्ति, अन्धकासुर वध मूर्ति, कालारिमूर्ति, इसमें देवता के रौद्र रूप को दर्शाया गया है। सौम्य रूप में देवता (शिव) को शान्त भाव, मनवांछित वस्तु का प्रदान, पार्वती के साथ योग तथा ज्ञान की शिक्षा आदि के साथ दर्शाया गया है, जिसमें चण्डेशानुग्रह मूर्ति, विष्णु अनुग्रह मूर्ति, रावणानुग्रह मूर्ति, किरात मूर्ति, और सदाशिव मूर्ति आदि आती हैं जो सौम्य (अधोर) रूप को प्रगट करती हैं। दक्षिण भारत में उत्तर भारत की अपेक्षा अधोर प्रतिमा अधिक पायी गयी, अतः हम कह सकते हैं, कि वहाँ अधोर रूप की ज्यादा प्रधानता थी। सौम्य स्वरूप को व्यक्त करती शिव प्रतिमा बैठी दशा में भी प्राप्त हुयी है, खड़ी प्रतिमा की तुलना में बठी प्रतिमा का उत्तरी भारत में अधिक प्रचार है। सुखासन में आलिंगन करते हुये उमा-महेश्वर की प्रतिमा उत्तर भारत में अधिक मिली है। शिव की सौम्य प्रतिमाओं में नृत्य मूर्ति की भी गणना आती है। कुछ नृत्य मूर्ति शिव के भैरव रूप को भी दर्शाती हैं। काशी में ये प्रतिमा पायी गयी है। कुछ मूर्ति ऐसी बनायी गयी हैं, जो किसी कथानक से सम्बन्धित नहीं हैं, वे शैवागम के आधार पर "शिव चन्द्रशेखर" की संज्ञा से प्रसिद्ध हैं।

प्रस्तर के अलावा धातु प्रतिमायें भी बनी हैं, जो दक्षिण भारत में अधिक दिखाई पड़ती हैं। उत्तर भारत के त्रिशूलधारी शिव दक्षिण भारत में परशु-मृग रूप में अंकित हो जाते हैं। अर्द्धनारीश्वर प्रतिमाओं की ऊर्ध्वलिंग स्थिति हमें दक्षिण में नहीं दिखलाई पड़ती, इसके विपरीत शिव ताण्डव का जितना प्रचार दक्षिण में है, उतना उत्तर में नहीं। सोमा, स्कन्द, मार्कण्डेयानुग्रह आदि प्रकार की शिव मूर्तियाँ उत्तर में क्वचित् ही दिखाई पड़ती हैं।

निष्कर्ष —

भारतीय कला में शिव स्वरूप की मूर्तियों की तीन धाराएं दिखाई पड़ती थीं। प्रथम उत्तर पश्चिमी धारा दूसरी माथुरी धारा, जो मथुरा के आस पास थी, जो राजस्थान तक फैली थी, इस पर उत्तर पश्चिमी धारा का प्रभाव देखने को मिलता है। तीसरी धारा दक्षिण भारत की धारा है। इस पर उत्तर का प्रभाव पड़ा, किन्तु उसके होते हुये वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व आज तक बनाये रखने में समर्थ है। वाराणसी से मिले हुये इस समय सारनाथ के संग्रहालय में



प्रदर्शित गुप्तकाल की चौमुखी मूर्ति में विशेषतया शिवलिंग और अर्द्धनारीश्वर प्रतिमाओं में समकालीन माधुरी गुप्तकाल की विशेषतायें यथा पुष्पदान और ऊर्ध्वलिंग स्पष्टतया देखी जा सकती है अतः हम यह कह सकते हैं, कि काशी की कला में मथुरा की कला का प्रभाव पड़ा और यदि हम दूसरी ओर देखें तो उत्तर पश्चिम में, अर्द्धचन्द्र का प्रारम्भ हुआ, जो काशी में भी दिखाई देता है, अतः कई कलाओं के प्रभाव के कारण भी काशी की कला का अपना ही स्वतंत्र अस्तित्व है?

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. उमा पाण्डेय – मैकमिलन कंपनी आफ इण्डिया लि. 1980।
2. अनंत सदाशिव अलतेकर – हिस्ट्री आफ बनारस दि कल्चर पब्लिकेशन हाउस, बी. एच. यू. बनारस, 1937।
3. डॉ. सरिता किशोर श्रीवास्तव – वाराणसी के स्थान नामों का सांस्कृतिक अध्ययन, चौखम्भा विद्या भवन प्रकाशन।
4. वलदेव उपाध्याय – काशी की पाण्डित्य परम्परा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1983।
5. डॉ. मोती चन्द्र – काशी का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी 1985।
6. रामवचन सिंह – वाराणसी (एक परम्परागत नगर) भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी 1973।
7. विश्वनाथ मुखर्जी – बना रहे बनारस, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी।
8. गोपी नाथ कविराज – काशी की सारस्वत साधना बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना 1965।
9. राम शब्द सिंह – काशी के भित्ति चित्र, कला सरोवर वाराणसी, 1988।
10. कमल गिरि – काशी की मूर्तिकला, उत्तर प्रदेश काशी अंक परिशिष्टांक 1983।



The Gunjan

Multi Disiplinary Quarterly International Refreed/Peer Reviewed Research Journal

ISSN : 2349-9273

'The Gunjan'

(in Multi Language : Hindi + English + Sanskrit)

Multi Disiplinary Quareterly International Refreed/Peer Reviewed Research Journal

Sector-K-444, 'Shiv Ram Kripa' World Bank Barra-Kanpur-208027

Contact- 08896244776

E-mail: mohittrip@gmail.com

Visit us: www:thegunjan.com, abhinavgaveshna.com

बस्तर में खनन परियोजनाओं का आदिवासी जीवन पर सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव : एक क्षेत्रीय अध्ययन



— डॉ. अमरेंद्र प्रताप गोंड
असिस्टेंट प्रोफेसर —
रक्षा एवं स्त्रातेजिक अध्ययन विभाग,
डी. ए. वी. कॉलेज, कानपुर-208001
(उत्तर प्रदेश)

ई-मेल :

gondpratap@gmail.com

सारांश

बस्तर क्षेत्र, विशेष रूप से दंतेवाड़ा जिला, छत्तीसगढ़ का एक खनिज-समृद्ध आदिवासी बहुल क्षेत्र है। खनन परियोजनाओं ने आर्थिक विकास को प्रोत्साहित किया, किन्तु आदिवासी समुदायों की सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक अस्मिता और आजीविका पर गंभीर प्रभाव डाला। यह शोधपत्र दंतेवाड़ा को केसस्टडी के रूप में लेते हुए समाजशास्त्रीय और नृविज्ञान दृष्टिकोण से विस्थापन, सामाजिक परिवर्तन, सांस्कृतिक क्षरण और विरोध आन्दोलनों का विश्लेषण करता है। जन-केन्द्रित नीतियों, सतत् विकास और सांस्कृतिक संरक्षण के समाधान प्रस्तावित किए गए हैं।

मुख्य शब्द— खनन, आदिवासी, बस्तर, सामाजिक प्रभाव, सांस्कृतिक क्षरण, विस्थापन, विरोध आन्दोलन।

प्रस्तावना—

बस्तर क्षेत्र, विशेष रूप से दंतेवाड़ा जिला, छत्तीसगढ़ राज्य का एक महत्वपूर्ण आदिवासी बहुल क्षेत्र है, जो प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध है। यहाँ खनिज सम्पदा, जैसे लौह अयस्क, बॉक्साइट और कोयला प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, जिससे यह क्षेत्र खनन उद्योग के लिए अत्यन्त आकर्षक बन गया है। किन्तु इस आर्थिक संभावना के पीछे आदिवासी जीवन की सामाजिक और सांस्कृतिक संरचनाओं पर एक गहरा प्रभाव पड़ा है। खनन परियोजनाओं ने जहाँ एक ओर राज्य के राजस्व में वृद्धि और बुनियादी ढांचे के विकास में योगदान दिया है, वहीं दूसरी ओर दंतेवाड़ा जैसे क्षेत्रों में पारम्परिक जीवन शैली, सामाजिक सम्बन्धों, सांस्कृतिक परम्पराओं और आजीविका के प्राकृतिक संसाधनों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। इस शोध पत्र का उद्देश्य दंतेवाड़ा जिले को केस स्टडी के रूप में लेकर यह विश्लेषण करना है कि खनन परियोजनाएं किस प्रकार वहाँ के आदिवासी समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर प्रभाव डाल रही हैं।

यह शोध समाजशास्त्रीय और नृविज्ञान (Anthropological) दृष्टिकोण से यह जानने का प्रयास करेगा कि किस प्रकार बाह्य औद्योगिक हस्तक्षेप आदिवासियों की पारम्परिक पहचान, समुदायिक ताने-बाने, और पर्यावरणीय संतुलन को प्रभावित करता है। इसके अन्तर्गत विस्थापन, आजीविका का संकट, सांस्कृतिक क्षरण और



विरोध—आन्दोलनों जैसे पहलुओं का अध्ययन किया जाएगा।

छत्तीसगढ़ में खनन उद्योग का विकास — छत्तीसगढ़ में खनन उद्योग ने राज्य की अर्थव्यवस्था को मजबूत किया है, विशेष रूप से कोयला, लौह अयस्क और चूना पत्थर जैसे खनिजों के विशाल भण्डार के कारण। 2022–23 में, यह लगभग 12941 करोड़ रुपये का राजस्व उत्पन्न किया, जो इसके महत्व को दर्शाता है। सरकार ने 'खनिज ऑन लाइन' जैसी पहलों के माध्यम से पारदर्शिता बढ़ाई है और निजी निवेश को आकर्षित करने के लिए नीतियाँ लागू की हैं। हालांकि, पर्यावरणीय क्षरण और आदिवासी समुदायों के विस्थापन जैसे मुद्दे भी उभरे हैं।

बस्तर के प्रमुख खनन क्षेत्र— बस्तर संभाग में दंतेवाड़ा, जगदलपुर और नारायणपुर जैसे क्षेत्र खनन गतिविधियों के लिए महत्वपूर्ण हैं। दंतेवाड़ा में NMDC की बैलाडीला खदानें लौह अयस्क के लिए प्रसिद्ध हैं, जो 2022–23 में 40 मिलियन टन उत्पादन के साथ देश के लिए महत्वपूर्ण हैं। जगदलपुर में चूना, पत्थर और बॉक्साइट खनन प्रमुख है, जब कि नारायणपुर में बॉक्साइट और लौह अयस्क की खोज हुई है, लेकिन नक्सल प्रभाव ने विकास को प्रभावित किया है।

सरकार और निजी कम्पनियों द्वारा संचालित परियोजनाएँ— NMDC और CMDC जैसे सरकारी संगठन बस्तर में प्रमुख खनन परियोजनाओं का संचालन करते हैं, जैसे— बैलाडीला खदानें। निजी कम्पनियाँ जैसे— टाटा, जिंदल और वेदांता भी लौह अयस्क और अन्य खनिजों में सक्रिय हैं। सरकार ने खनिज ब्लॉकों की नीलामी के माध्यम से निजी निवेश को प्रोत्साहित किया है और DMF के तहत 2022 तक 5000 करोड़ रुपये जुटाए गए हैं।

छत्तीसगढ़ में खनन उद्योग का विकास— राज्य में खनन उद्योग का विकास कई दशकों से चल रहा है, जिसमें कोयला और लौह अयस्क जैसे संसाधनों ने बिजली उत्पादन और इस्पात उद्योग को बढ़ावा दिया है। 2009–10 में, राज्य ने राष्ट्रीय खनिज राजस्व में 14.09% का योगदान दिया था, जो समय के साथ बढ़कर 2022–23 में 12941 करोड़ रुपये तक पहुँच गया। सरकार ने 'खनिज ऑन लाइन' परियोजना को लागू किया, जिसे 2018 में राष्ट्रीय ई-गवर्नेंस अवार्ड से सम्मानित किया गया, जो खनन प्रक्रियाओं को डिजिटल और पारदर्शी बनाने में मदद

करता है इसके अलावा, खनिज ब्लॉकों की नीलामी जैसे मोहरा (ब्लॉक) और परसाभदेर चूना पत्थर ब्लॉक ने निजी निवेश को आकर्षित किया है। हालांकि, इस विकास ने पर्यावरणीय क्षरण, वन विनाश और स्थानीय आदिवासी समुदायों के विस्थापन जैसे मुद्दों को उजागर किया है। विशेष रूप से, बस्तर क्षेत्र में खनन गतिविधियों ने इन चुनौतियों को और बढ़ाया है, जहाँ आदिवासी समुदायों के अधिकारों और पर्यावरणीय संतुलन के बीच टकराव देखा गया है।

बस्तर के प्रमुख खनन क्षेत्रों का संक्षिप्त परिचय— बस्तर संभाग, जो दंतेवाड़ा, जगदलपुर और नारायणपुर जैसे जिलों को शामिल करता है, छत्तीसगढ़ का एक प्रमुख खनन केन्द्र है। यह क्षेत्र लौह अयस्क, टिन, बॉक्साइट और हीरे जैसे खनिजों के लिए प्रसिद्ध है।

दंतेवाड़ा — दंतेवाड़ा जिला लौह अयस्क खनन का प्रमुख केन्द्र है, जहाँ NMDC द्वारा संचालित बैलाडीला खदानें स्थित हैं। ये खदानें विश्व की सबसे बड़ी लौह अयस्क खदानों में से एक हैं और 2022–23 में इनका उत्पादन लगभग 40 मिलियन टन था। दंतेवाड़ा ने 2022–23 में खनिज राजस्व में 6419 करोड़ रुपये का योगदान दिया, जो इसे शीर्ष अर्जक जिलों में से एक बनाता है।

जगदलपुर — जगदलपुर और आस-पास के क्षेत्रों में चूना पत्थर और बॉक्साइट खनन प्रमुख है। यहाँ कई सीमेंट संयंत्र स्थापित हैं, जो स्थानीय खनिज संसाधनों का उपयोग करते हैं। इसके अलावा, डाली—राजहरा—जगदलपुर रेल लाइन परियोजना खनन गतिविधियों को समर्थन देती है, जो लौह अयस्क परिवहन में मदद करती है। छोटे पैमाने पर टिन और अन्य गौण खनिजों का खनन भी होता है, लेकिन विस्तृत आँकड़े सीमित हैं।

नारायणपुर — नारायणपुर अपेक्षा कृत कम विकसित है, लेकिन हाल के वर्षों में बॉक्साइट और लौह अयस्क की खोज ने खनन गतिविधियों को बढ़ावा दिया है। चोटेडोंगर लौह अयस्क खनन परियोजना और रौघाट लौह अयस्क खदानें उल्लेखनीय हैं, लेकिन नक्सल प्रभाव और आदिवासी विरोध ने विकास को प्रभावित किया है (Chhotedongar Iron Ore Mining Project In Dist-Narayanpur Chhattisgarh, Chhattisgarh Rowghat Iron Ore Mining Illegal Has No Gram Sabha Consent/Allege Tribals)। 2016 में शुरू हुई जायसवाल



ने को इंडस्ट्रीज लिमिटेड की परियोजना ने पर्यावरणीय चिंताओं को बढ़ाया है। इन क्षेत्रों में खनन गतिविधियाँ स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देती हैं, लेकिन वन विनाश और आदिवासी समुदायों के अधिकारों का उल्लंघन जैसे मुद्दे भी उत्पन्न करते हैं।

सरकार और निजी कम्पनियों द्वारा संचालित खनन परियोजनाएँ—

छत्तीसगढ़ में खनन परियोजनाएँ सरकार और निजी क्षेत्र के बीच सहयोग से संचालित होती हैं।

सरकारी परियोजनाएँ – राष्ट्रीय इस्पात निगम लिमिटेड (NMDC) और छत्तीसगढ़ मिनरल डेवलपमेंट कॉरपोरेशन (CMDC) जैसे सार्वजनिक उपक्रम बस्तर क्षेत्र में प्रमुख खनन गतिविधियों का संचालन करते हैं। NMDC की बैलाडीला खदानें दंतेवाड़ा में लौह अयस्क उत्पादन का मुख्य स्रोत है, और CMDC बॉक्साइट और अन्य खनिजों की खोज में शामिल है (Cmdc). 2023 में, NMDC ने दंतेवाड़ा में उत्पादन क्षमता को 50 मिलियन टन तक बढ़ाने की योजना की घोषणा की (PM Modi in Chhattisgarh: 'कनेक्टिविटी पर फोकस, रेलवे स्टेशनों पर वाईफाई').

निजी कम्पनियाँ – निजी क्षेत्र में टाटा स्टील, जिंदल स्टील और वेदांता जैसी कम्पनियाँ लौह अयस्क, बॉक्साइट और चूना पत्थर खनन में सक्रिय हैं। नारायणपुर में जयस्वाल ने को इंडस्ट्रीज लिमिटेड (JNIL) ने 2016 में लौह अयस्क खनन शुरू किया, लेकिन स्थानीय विरोध और पर्यावरणीय चिंताओं का सामना करना पड़ा।

नीतिगत ढांचा – खनन मंत्रालय और छत्तीसगढ़ सरकार ने खनन प्रक्रियाओं को सुगम बनाने के लिए कई नीतियाँ लागू की हैं। खनिज ब्लॉकों की पारदर्शी नीलामी और डिजिटल मॉनिटरिंग सिस्टम जैसे उपायों ने निवेशकों का विश्वास बढ़ाया है। इसके अलावा, डिस्ट्रिक्ट मिनरल फाउण्डेशन (DMF) के तहत खनन प्रभावित क्षेत्रों में सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए धन आवंटित किया जाता है। 2022 तक, छत्तीसगढ़ में DMF के तहत लगभग 5000 करोड़ रुपये का संग्रह किया गया, जिसका उपयोग शिक्षा, स्वास्थ्य और बुनियादी ढांचे के लिए किया जा रहा है।

तालिका – प्रमुख खनन परियोजनाओं का अवलोकन – निम्नतालिका में बस्तर के प्रमुख खनन क्षेत्रों और सम्बन्धित परियोजनाओं का विवरण दिया गया है—
(टेबिल देखिये)

4. खनन परियोजनाओं का सामाजिक प्रभाव—

दंतेवाड़ा सहित बस्तर के खनिज समृद्ध क्षेत्रों में खनन परियोजनाओं का सामाजिक प्रभाव गहरा और बहुआयामी रहा है। इन प्रभावों को चार मुख्य श्रेणियों में समझा जा सकता है— विस्थापन, सामाजिक संरचना में बदलाव, शिक्षा – स्वास्थ्य – रोजगार पर असर, और महिलाओं एवं बच्चों पर विशेष प्रभाव। नीचे इन बिन्दुओं पर विस्तारपूर्वक और शोध आधारित जानकारी दी गई है।

विस्थापन और पुनर्वास की स्थिति—

खनन परियोजनाओं के विस्तार से स्थानीय आदिवासी समुदायों का बड़े पैमाने पर जमीन से विस्थापन

क्षेत्र	प्रमुख खनिज	प्रमुख परियोजनाएँ	संचालक	उल्लेखनीय बिंदु
दंतेवाड़ा	लौहअयस्क	बैलाडीला खदानें	NMDC	2022-23 में 40 मिलियन टन उत्पादन, आदिवासीविरोध
जगदलपुर	चूनापत्थर, बॉक्साइट	सीमेंटसंयंत्र, डाली-राजहरारेललाइन	विभिन्न, SAIL, NMDC	रेललाइन खननपरिवहनमेंसहायक
नारायणपुर	लौहअयस्क,बॉक्साइट	चोटेडोंगर, रौघाट खदानें	JNIL, BSP	पर्यावरणीय चिंताएँ, नक्सलप्रभाव



हुआ है। विशेष रूप से बैलाडीला लौह अयस्क खदान (Deposit-13) के विस्तार के लिए सप्त ग्रामों (जैसे हिरोली, पेरपा) के लोगों को सीनांतरित किया गया, जिससे उनकी आजीविका और सामाजिक जीवन बाधित हुआ। National Alliance of People's Movements (2019) के अनुसार— कई मामलों में ग्राम सभाओं की सहमति के बिना भूमि अधिग्रहण किया गया, जो PESA और Forest Rights Act (2006) का उल्लंघन है। पुनर्वास योजनाएँ अक्सर औपचारिक दस्तावेजों में सशक्त, पर जमीनी स्तर पर अपूर्ण रही हैं। जैसे बाजार तक पहुँच, पीने का पानी, शिक्षा व स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव। DMF (District Mineral Foundation) के अन्तर्गत 2022 तक 5000 करोड़ रुपये एकत्र किए गए, किन्तु जनहित परियोजनाओं का कार्यान्वयन धीमा है।

पारम्परिक सामाजिक संरचना में परिवर्तन—

खनन से आदिवासी समाज की पारम्परिक सामूहिकता और परस्पर निर्भरता पर आधारित जीवन शैली में विघटन हुआ है। प्राकृतिक संसाधनों (जैसे जंगल, जल, जमीन) पर निर्भर अर्थव्यवस्था के स्थान पर मजदूरी आधारित जीवन आया है, जिससे सामाजिक असमानता बढ़ी है। खासकर युवा पीढ़ी अब स्थानीय संस्कृति से विमुख होकर नगरीकरण और आधुनिक उपभोक्तावाद की ओर आकर्षित हो रही है। परम्परागत पंचायतों, देवस्थलों और त्योहारों की भूमिका सीमित हो रही है, जिससे सामाजिक ताने-बाने में अस्थिरता आई है।

शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार पर प्रभाव—

खनन क्षेत्रों में प्राथमिक विद्यालय, स्वास्थ्य केन्द्र और रोजगार योजनाओं की उपलब्धता अक्सर अपर्याप्त रही है। आजीविका के लिए वनों पर निर्भरता घटने से आर्थिक असुरक्षा बढ़ी है, और नई तकनीकी/औद्योगिक गतिविधियों में स्थानीय आदिवासियों की भागीदारी सीमित है। 2021 के Tribal Health Report के अनुसार, बस्तर में कुपोषण और मातृ-मृत्यु दर राष्ट्रीय औसत से अधिक है। खनन कम्पनियों द्वारा CSR के अन्तर्गत शिक्षा व प्रशिक्षण केन्द्र आरम्भ किए गए हैं, किन्तु स्थायित्व और गुणवत्ता की दृष्टि से कई कमियाँ पाई गईं।

महिलाओं और बच्चों पर विशेष प्रभाव—

खनन से उत्पन्न विस्थापन और सामाजिक अस्थिरता का सबसे अधिक प्रभाव महिलाओं और बच्चों पर पड़ा है। महिलाओं की पारम्परिक भूमिका (जैसे जंगल से

कंदमूल इकट्ठा करना, स्थानीय बाजार में व्यापार) सीमित हो गई है और उनकी आर्थिक स्वतंत्रता में गिरावट आई है। विस्थापित क्षेत्रों में महिलाओं के खिलाफ हिंसा, तस्करी और बाल श्रम की घटनाओं में वृद्धि देखी गई है (संयुक्त राष्ट्र UNDP रिपोर्ट, 2020)। शुद्ध पेयजल, पोषण और बाल-शिक्षा तक पहुँच भी प्रभावित हुई है।

5. सांस्कृतिक प्रभाव (Cultural Impacts)—

खनन परियोजनाओं का प्रभाव केवल आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका सीधा असर आदिवासी समुदायों की सांस्कृतिक अस्मिता, परम्पराओं और सांस्कृतिक निरन्तरता पर भी गहराई से पड़ा है। बस्तर, विशेष रूप से दंतेवाड़ा जिले में आदिवासी जनजीवन में खनन के कारण जो सांस्कृतिक परिवर्तन हुए हैं, वे चिंता का विषय हैं। नीचे इन प्रभावों का विस्तृत और शोधपरक विश्लेषण किया गया है—

पारम्परिक त्योहारों, मान्यताओं और रीति-रिवाजों पर प्रभाव—

बस्तर क्षेत्र की आदिवासी संस्कृति अत्यन्त जीवन्त और सामुदायिक जीवन से जुड़ी होती है। गोंड, मुरिया, मारिया, हल्बा आदि जनजातियों के बीच पोलयाई, दीवाली, दशहरा, मोतीदाई पूजा, जैसे त्योहार पारम्परिक रीति-रिवाजों और प्रकृति पूजन से जुड़ी मान्यताओं के प्रतीक हैं। लेकिन खनन के कारण हुए विस्थापन, वनक्षरण और बाहरी हस्तक्षेप से इन पर्वों की सामूहिकता, स्थानिकता और नियमितता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। कई देवगुड़ी (पारम्परिक पूजा स्थल) खदानों या सड़क निर्माण में नष्ट हो गए। त्योहारों की सांस्कृतिक सामग्री और प्रतीकों की आपूर्ति में कमी आई (जैसे— महुआ, साल, बाँस आदि)। युवा पीढ़ी का इन परम्पराओं से जुड़ाव घटता जा रहा है।

सांस्कृतिक विरासत और स्थलों का क्षरण—

खनन और उससे सम्बन्धित निर्माण (जैसे सड़कों, फैंक्ट्रियों, रेलवे लाइनों) ने सांस्कृतिक स्थलों और पुरातात्विक महत्व की वस्तुओं को नुकसान पहुँचाया है— बैलाडीला की पहाड़ियों को कई समुदाय पवित्र मानते हैं, जहाँ पूजा की जाती रही है। साल और सागौन के जंगलों के कटाव से धार्मिक व सांस्कृतिक गतिविधियों के स्थल बाधित हुए हैं। कुछ जनजातीय स्थापत्य और हस्तशिल्प परम्पराएँ, जैसे मिट्टी के घर, दीवार चित्रकला और लकड़ी की कलाकृतियाँ, अब दुर्लभ होती जा रही हैं।



जनजातीय भाषा, पहनावा, नृत्य और संगीत में परिवर्तन—

खनन क्षेत्रों में बाहरी जनसंख्या की आवाजाही और बाजार संस्कृति के प्रभाव से स्थानीय जनजातियों के भाषिक, पहनावे और सांगीतिक तत्वों में भी परिवर्तन आया है, गोंडी, हल्बी, मुरिया भाषाओं का प्रयोग अब केवल बुजुर्गों तक सीमित होता जा रहा है। सरकारी स्कूलों और बाहरी कार्यक्षेत्रों में हिन्दी और छत्तीसगढ़ी का प्रभाव बढ़ा है। पारम्परिक पहनावा (जैसे लुगड़ा, गमछा, बाँस के आभूषण) की जगह आधुनिक परिधान लेने लगे हैं। पारम्परिक नृत्य जैसे रेला, परबिया, करमा अब त्योहारों या प्रदर्शन तक सीमित रह गए हैं; उनका सामुदायिक उपयोग कम हो गया है। मोबाइल, टीवी और इंटरनेट के प्रसार से लोकगीतों और पारम्परिक वाद्य यंत्रों (नगारा, तुंबा) की जगह फिल्मी और पॉप संगीत ने ले ली है।

बाहरी प्रभाव और सांस्कृतिक आत्मसात् की प्रक्रिया—

खनन क्षेत्रों में शहरीकरण, शैक्षिक संस्थाओं और बाहरी श्रमिकों की उपस्थिति से सांस्कृतिक आत्मसात् की प्रक्रिया तेज हुई है : युवा वर्ग अब मोबाइल-इंटरनेट आधारित संस्कृति से अधिक जुड़ गया है, जिससे परम्पराओं में 'ग्लोबल शिफ्ट' देखा जा रहा है। सामुदायिक जीवन से अलगाव और व्यक्तिगत भौतिक जीवन शैली की ओर झुकाव बढ़ा है। सांस्कृतिक अस्मिता को बनाए रखने वाले लोकगीत, लोकगाथाएँ, ज्ञान परम्पराएँ धीरे-धीरे विस्मृत हो रही हैं।

6. सरकार और खनन कम्पनियों की भूमिका (Role of Government and Mining Corporations)—

बस्तर क्षेत्र, विशेषकर दंतेवाड़ा जैसे आदिवासी बहुल जिलों में खनन परियोजनाओं के संचालन में सरकार और खनन कम्पनियाँ प्रमुख भूमिका निभाती हैं। यह भूमिका केवल खनिज दोहन तक सीमित नहीं है, बल्कि इससे जुड़े सामाजिक, कानूनी और सांस्कृतिक दायित्वों को निभाना भी इनकी ज़िम्मेदारी है। इस खण्ड में हम तीन प्रमुख उप-पहलुओं—CSR (Corporate Social Responsibility), नीतिगत और कानूनी ढाँचा, तथा ग्राम सभाओं की भूमिका का विश्लेषण करेंगे। CSR (कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व) की वास्तविकता—CSR खनन कम्पनियों के सामाजिक दायित्वों को निभाने का एक कानूनी और नैतिक माध्यम है। भारत में कम्पनियों के लिए CSR को 2013 के कम्पनी अधिनियम (Section 135) के

अन्तर्गत अनिवार्य किया गया है, जिसके अनुसार जिन कम्पनियों का शुद्ध लाभ ₹ 5 करोड़ या उससे अधिक है, उन्हें अपने शुद्ध लाभ का 2% CSR गतिविधियों पर खर्च करना होता है।

बस्तर में CSR की स्थिति—

NMDC जो दंतेवाड़ा की बैलाडीला खदानों का संचालन करती है, ने CSR के तहत शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, सड़क और स्किल डेवलपमेंट में निवेश किया है। उदाहरण के लिए, NMDC DAV पब्लिक स्कूल, NMDC अस्पताल, और 'प्रगति प्रोजेक्ट' जैसे प्रयास। लेकिन ज़मीनी सच्चाई यह है कि अधिकांश CSR परियोजनाएँ प्रदर्शन और कागज़ी कार्रवाई तक सीमित रहती हैं। कई योजनाएँ ग्रामीणों की वास्तविक ज़रूरतों से मेल नहीं खातीं, जिससे असंतोष और अविश्वास पनपता है।

नीतियों और कानूनी प्रावधानों का विश्लेषण—

1. PESA Act (1996) & PESA (Panchayats Extension to Scheduled Areas)- अधिनियम अनुसूचित क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन की गारन्टी देता है, जिसके अनुसार ग्रामसभा को खनन सम्बन्धी निर्णयों में परामर्श और सहमति देने का अधिकार है। भूमि अधिग्रहण, वन उत्पाद और संसाधनों के दोहन पर ग्रामसभा की सहमति अनिवार्य है। लेकिन दंतेवाड़ा और बस्तर में PESA का प्रभावी क्रियान्वयन बहुत सीमित है। कई ग्रामसभाओं को बिना सूचित किए ही निर्णय ले लिए जाते हैं। उदाहरण— 2019 में बैलाडीला की Nandraj पहाड़ी पर खनन के खिलाफ विरोध, जहाँ ग्रामसभा की सहमति फर्जी तरीके से प्राप्त की गई थी।

2. Forest Rights Act (2006)- AFRA आदिवासियों को उनकी परम्परागत भूमि और वन अधिकार देता है, विशेष रूप से व्यक्तिगत और सामुदायिक वन भूमि पर अधिकार। विकास परियोजनाओं के लिए भूमि अधिग्रहण से पहले ग्रामसभा की सहमति अनिवार्य FRA के तहत दंतेवाड़ा में 2023 तक लगभग 35,000 व्यक्तिगत और 7,500 सामुदायिक दावे प्रस्तुत किए गए, लेकिन अधिकांश मामलों में इन्हें प्रक्रियागत कारणों से खारिज कर दिया गया। कई खनन परियोजनाएँ बिना उचित वन अधिकार मान्यता के चालू कर दी गईं। ग्रामसभा, आदिवासी स्वशासन की मूल इकाई मानी जाती है, विशेषकर अनुसूचित क्षेत्रों में। संविधान और PESA & FRA जैसे अधिनियम ग्रामसभा को भूमि, वन और जल



सम्बन्धी मामलों में निर्णय लेने की शक्तियाँ प्रदान करते हैं।
वास्तविक स्थिति—

☛ ग्रामसभाओं को अक्सर औपचारिकता के रूप में आयोजित किया जाता है, जहाँ निर्णय पहले से तय होते हैं।

☛ ग्रामीणों को पूरी जानकारी नहीं दी जाती और सहमति को "मूक सहमति" मान लिया जाता है।

☛ राजनीतिक दबाव, नक्सल प्रभाव और प्रशासनिक उदासीनता के चलते ग्राम सभाएँ स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं कर पातीं।

☛ कुछ क्षेत्रों में सक्रिय पंचायत प्रतिनिधि और सिविल सोसाइटी संगठनों की मदद से ग्रामसभाओं ने खनन परियोजनाओं को चुनौती दी है।

☛ उदाहरण— हिरोली, बचेली आदि गाँवों में जनजागरुकता से ग्रामसभा की भूमिका पुनर्जीवित की गई।

7. स्थानीय जन विरोध और संघर्ष (Local Resistance and Conflict)—

बस्तर क्षेत्र, विशेष रूप से दंतेवाड़ा, भारत के उन क्षेत्रों में से एक है जहाँ खनन परियोजनाओं के विरुद्ध स्थानीय आदिवासी समुदायों द्वारा निरन्तर संघर्ष और विरोध देखने को मिलता है। यह विरोध केवल भूमि और जंगल से जुड़ा नहीं है, बल्कि यह आदिवासी पहचान, संस्कृति और आजीविका के अधिकारों के संरक्षण से भी जुड़ा है। इस खण्ड में हम तीन प्रमुख उप-विषयों— आदिवासी आन्दोलनों की पृष्ठभूमि, नक्सलवाद और खनन का सम्बन्ध और मीडिया व सिविल सोसाइटी की भूमिका का विस्तृत और शोधपरक विश्लेषण करेंगे।

आदिवासी आन्दोलनों की पृष्ठभूमि—

बस्तर में आदिवासी समुदायों का विरोध मुख्यतः भूमि अधिग्रहण, वन अधिकारों की उपेक्षा और सांस्कृतिक हस्तक्षेप के खिलाफ रहा है। आदिवासी अपने जल, जंगल, जमीन के पारम्परिक अधिकारों को बचाने के लिए संगठित और असंगठित दोनों तरह के आन्दोलनों में सक्रिय हैं।

बैलाडीला आन्दोलन (2019)—

हिरोली गाँव की नंदराज पहाड़ी को धार्मिक और सांस्कृतिक रूप से पवित्र माना जाता है। जब इस क्षेत्र को खनन के लिए निजी कम्पनी (Adani Group DKS NMDC के साथ मिलकर) सौंपा गया, तो ग्रामसभा की सहमति के बिना निर्णय लिए जाने पर आदिवासियों ने

शान्तिपूर्ण विरोध किया। आन्दोलन ने राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय मीडिया का ध्यान आकर्षित किया।

सिलगोर आन्दोलन (2021)—

सुकमा—बीजापुर सीमा पर स्थित आदिवासी गाँव सिलगोर में सी.आर.पी.एफ. कैंप की स्थापना के खिलाफ लम्बे समय तक विरोध चला। आदिवासियों का आरोप था कि यह "विकास" के नाम पर जमीन कब्जा करने की रणनीति है।

नक्सलवाद और खनन का सम्बन्ध—

बस्तर क्षेत्र लम्बे समय से वामपंथी उग्रवाद (नक्सलवाद) से प्रभावित रहा है। नक्सल आन्दोलन ने आदिवासियों के भूमि और वन अधिकारों की अनदेखी को अपनी राजनीतिकरण नीति का हिस्सा बनाया है।

कारण और सम्बन्ध —

☛ भूमि अधिग्रहण और विस्थापन के विरोध में आदिवासी जब अकेले पड़ जाते हैं, तब नक्सली संगठन उन्हें राज्य विरोधी आन्दोलन में शामिल कर लेते हैं।

☛ खनन परियोजनाओं को नक्सल "कॉर्पोरेट लूट" करार देते हैं, जिससे विरोध को वैचारिक और हिंसक रूप मिल जाता है।

☛ कई बार देखा गया है कि जिन क्षेत्रों में खनन परियोजनाओं की शुरुआत होती है, वहाँ नक्सली गतिविधियाँ भी तीव्र हो जाती हैं।

☛ **रौघाट खदान परियोजना** — इस खदान के आस-पास की गतिविधियों को लेकर नक्सली हमले हुए, जिसमें सुरक्षा बलों और मशीनरी को नुकसान पहुँचाया गया।

☛ नारायणपुर जिले में 2016 में JNIL की खनन साइट पर हमला, जिसमें नक्सलियों ने वाहन जला दिए थे।

मीडिया और सिविल सोसाइटी की भूमिका— मीडिया और सिविल सोसाइटी ने आदिवासी विरोधों को राष्ट्रव्यापी विमर्श में स्थान देने में अहम भूमिका निभाई है।

मीडिया की भूमिका—

☛ मुख्यधारा मीडिया अक्सर खनन कम्पनियों या सरकारी पक्ष को महत्व देता है, लेकिन डिजिटल मीडिया (The Wire, Scroll, The Caravan) ने आदिवासी विरोधों को आवाज़ देने का प्रयास किया है।

☛ स्थानीय पत्रकार और जन संचार छात्र बस्तर से रिपोर्टिंग कर रहे हैं, लेकिन उन्हें कई बार



प्रशासन और पुलिस की ओर से धमकी और गिरफ्तारी जैसी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है।

सिविल सोसाइटी—

☛ PUCI, Amnesty International, और Adivasi Lives Matter जैसे संगठन आदिवासी अधिकारों की पैरवी करते हैं।

☛ इन संगठनों ने खनन परियोजनाओं में ग्रामसभा की सहमति के उल्लंघन, पुलिस दमन और मानवाधिकार हनन के मुद्दे उठाए हैं।

8. संभावनाएँ और समाधान

(Possibilities and Solutions)—

बस्तर जैसे आदिवासी बहुल और खनिज-समृद्ध क्षेत्र में खनन गतिविधियाँ एक ओर जहाँ आर्थिक प्रगति का माध्यम बन सकती हैं, वहीं दूसरी ओर सामाजिक – सांस्कृतिक असंतुलन और संघर्ष की जड़ भी बन सकती हैं। इसलिये, ऐसी नीतियाँ और समाधान आवश्यक हैं जो जन केंद्रित, पर्यावरण – संवेदनशील और सांस्कृतिक रूप से सम्मानजनक हों।

जन-केन्द्रित खनन नीति की आवश्यकता—
बस्तर क्षेत्र के लिए एक ऐसी खनन नीति की आवश्यकता है जो केवल संसाधन निकासी पर आधारित न होकर स्थानीय लोगों के हितों, अधिकारों और सहभागिता को केन्द्र में रखे।

प्रमुख सुझाव—

☛ पूर्व-सहमति और ग्रामसभा की अनुमति (Free, Prior and Informed Consent & FPIC) सुनिश्चित करना, जैसा कि PESA और Forest Rights Act में निर्धारित है।

☛ खनन लाइसेंस देने से पहले सामाजिक प्रभाव मूल्यांकन SIA और पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन (EIA) की अनिवार्यता और पारदर्शिता।

☛ खनन से प्राप्त राजस्व का एक बड़ा भाग स्थानीय समुदायों को सीधे लाभ पहुँचाने में लगाना।

☛ ग्राम पंचायतों को वित्तीय और प्रशासनिक अधिकार देकर उन्हें निर्णय प्रक्रिया का हिस्सा बनाना।

सतत विकास और सांस्कृतिक संरक्षण का संतुलन—

खनन और विकासकार्यों को केवल आर्थिक दृष्टिकोण से न देखकर सांस्कृतिक और पारिस्थितिक संतुलन के रूप में देखना होगा।

संभावनाएँ—

☛ खनन क्षेत्रों में जैव विविधता पार्क, आदिवासी सांस्कृतिक संग्रहालय और स्थानीय हस्तशिल्प केन्द्र स्थापित करना।

☛ खनन से क्षतिग्रस्त क्षेत्रों में वन – आधारित रोजगार, जैसे— बाँस, तेंदूपत्ता और औषधीय पौधों की खेती को प्रोत्साहन।

☛ पारम्परिक त्योहारों और सांस्कृतिक आयोजनों को प्रोत्साहन देना ताकि सांस्कृतिक अस्मिता संरक्षित रह सके।

☛ खनन के डिजाइन में सामुदायिक स्थानों, पूजास्थलों और आवासीय संरचनाओं को बचाने की योजना शामिल हो।

शिक्षा, स्वास्थ्य और प्रशिक्षण कार्यक्रमों की भूमिका – स्थानीय समुदायों को सशक्त बनाने के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य और कौशल विकास सबसे आवश्यक तत्व हैं।

मुख्य प्रस्ताव—

☛ खनन कम्पनियों के CSR फण्ड से आदिवासी क्षेत्रों में स्कूल और छात्रावास निर्माण को प्राथमिकता।

☛ मातृभाषा आधारित प्रारम्भिक शिक्षा, जिससे बच्चे शिक्षा से जुड़ सकें।

☛ क्षेत्रीय स्वास्थ्य केन्द्रों में डॉक्टरों की नियुक्ति, पोषण कार्यक्रम और मातृ-शिशु स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता।

☛ आई.टी.आई., पॉलिटेक्निक और औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना, जिससे युवा खनन, पर्यटन, कृषि जैसे क्षेत्रों में स्वरोजगार प्राप्त कर सकें।

सहभागी और पारदर्शी पुनर्वास नीति का निर्माण—

खनन परियोजनाओं के कारण विस्थापित हुए परिवारों के लिए न्यायपूर्ण, सहभागी और टिकाऊ पुनर्वास नीतियाँ बनाना आवश्यक है।

प्रमुख उपाय—

☛ विस्थापित परिवारों को भूमि के बदले भूमि, स्थायी आवास और सामाजिक सेवाओं की गारन्टी।

☛ पुनर्वास की योजना में स्वतंत्र निगरानी एजेंसी, ग्रामसभा की भागीदारी और लोक सुनवाई अनिवार्य हो।



District Mineral Foundation (DMF) से पुनर्वास की राशि का उपयोग केवल बुनियादी ढांचे पर ही नहीं, बल्कि सामाजिक पुनर्निर्माण में किया जाए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Chhattisgarh Mineral Resources Department. (2023). *Chhattisgarh earns record mineral revenue of Rs 12,941 crore in 2022-23*. Official Website of Mineral Resources Department, Government of Chhattisgarh. Retrieved from <https://chhattisgarhmines.gov.in>.
2. The Indian Express (2023). *Mining plan in Dantewada : SDM asks tribal protesters to disperse or face action*. Retrieved from: <https://indianexpress.com/article/india/dantewada-mining-tribal-protest-8852394>.
3. Government of Chhattisgarh. (2023). *Mineral Resources Department – Official Website*. Retrieved from: <https://chhattisgarhmines.gov.in>.
4. TS Aspirants. (2023). *Mines in Chhattisgarh – A Complete Guide*. Retrieved from: <https://www.tsaspirants.com/mines-in-chhattisgarh>.
5. Mining plan in Dantewada : SDM asks tribal protesters to disperse or face action | (India News, The Indian Express).
6. Dalli Rajhara–Jagdarpur line - Wikipedia.
7. "Cultural Dislocation of Tribes in Chhattisgarh due to Industrialization" – Dr. Anjali Tiwari, 2020.
8. "Impact of Mining on Sacred Groves in Dantewada" – Report by Tribal Research Institute, Raipur, 2021.
9. "Language and Culture Shift in Tribal Bastar" – Dr. S.K. Verma, Journal of Tribal Studies, 2022.
10. UNDP India Report on "Cultural Impact of Development Projects on Indigenous Communities", 2020.
11. Ministry of Corporate Affairs CSR Report (2022), त त "CSR in Tribal India" – Dr. Rajiv Mehta, Indian Journal of Public Administration.
12. "The Politics of Consent: Mining and the Gram Sabha in Dantewada", EPW, 2020.
13. Ministry of Tribal Affairs FRA Report (2023), त त Centre for Policy Research त त "Under the Forest".
14. "Grassroots Governance in Scheduled Areas", PRIA Report, 2022.
15. People's Union for Civil Liberties (PUCL) Report, 2021; The Wire, Scroll.in Reports on Bailadila Protest.
16. Ministry of Home Affairs, Government of India; EPW Article – "Naxalism and Mining in India", 2020.
17. Chhattisgarh's Adivasi Uprising", The Caravan, 2020; Reports by Amnesty International India, 2019.
18. Ministry of Tribal Affairs, GoI; "Towards a Tribal Centric Mining Policy", EPW, 2019.
19. UNESCO Report on Cultural Heritage and Mining (2021); CIFOR Forest Policy Report.
20. UNICEF Tribal Education Report (2022); CSR Guidelines by Ministry of Mines, 2021.



शोध-पत्र लेखकों को विशेष निर्देश

‘दि गुंजन’ और ‘अभिनव गवेषणा’ मल्टी डिस्सिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल में पेपर प्रकाशित कराने के लिए पाँच प्रमुख बातों का होना बहुत ही आवश्यक है—

- (1) रिसर्च जर्नल पत्रिका के क्रमानुसार चार पेज से कम नहीं होना चाहिए।
- (2) रिसर्च जर्नल में कम से कम आठ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References) का होना आवश्यक है।
- (3) रिसर्च जर्नल में लेखक का नाम, पद, कालेज का पता, ऊपर अंकित होना चाहिए।
- (4) नवीनतम एक पासपोर्ट साइज फोटोग्राफ एवं ई-मेल एड्रेस।
- (5) रिसर्च जर्नल में प्रमाण-पत्र हेतु आपके निवास का पता अंकित होना जरूरी है।

यह आप सभी के स्नेह का ही परिणाम है कि आपके प्रबुद्ध विचारों को ‘दि गुंजन’ और ‘अभिनव गवेषणा’ मल्टी डिस्सिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल के माध्यम से अपने पाठकों तक पहुँचाने का सुअवसर मिल रहा है। विस्तृत जानकारी हेतु कार्यालय अथवा मोबाइल पर सम्पर्क करें।

- प्रबन्ध सम्पादक

सम्पर्क - 8896244776

मानस-मधुकोष और तुलसी की माधुकरी-वृत्ति



— डॉ. अमरनाथ तिवारी
विभागाध्यक्ष – हिन्दी विभाग,
बद्री विशाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
फर्रुखाबाद-209625
(उत्तर प्रदेश)

ई. मेल—
amarnathtiwari42@gmail.com

सारांश

अनेकानेक प्राचीन आर्ष-गन्थों-पुष्पों से अपने तुलसी मिलिन्द ने विशिष्ट भाव-भावों से मकरन्द ग्रहणकर अपनी नवनवोन्मेषकारिणी प्रज्ञा के सहारे भव्यतर भावों में परिणित कर 'मानस-मधुकोष' में जिस तरह समाविष्ट किया है उसको अल्पबुद्धि वाला मैं अनेकानेक झलक दिखाने के लिए अब लेख को अवकाश न होने के कारण बढ़ा नहीं सकता। वह तो महात्मा तुलसी जैसा सर्वग्राही कोई मधुप ही उसके मधुकोष से सिंचित मधुकणों का समस्त उद्गम दिखानमें सक्षम हो सकता है।

महात्मा तुलसी ने अपने 'मानस मधुकोष' में अन्यान्य शास्त्रीय सुमनों में अनेकानेक भाव-मकरन्द जिस वैदग्ध्य के साथ गुम्फित हुए हैं, उसको समझने के लिए भ्रमर (तुलसी) की इस गुंजार को याद रखना ही होगा—

'नाना पुराण निगमागम सम्मतं

यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि?'

यह गुंजार प्रकट करती है कि हमारा भ्रमर (तुलसी) किन-किन पुष्पों के सान्निध्य में रहा है और उसकी मधुकरीवृत्ति का निर्देश करने के लिए हमें किस तरफ दृष्टिपात करना चाहिए।

'श्रीमद्भागवत' – पुराणों में सर्वोकृष्ट पुराण है। महात्मा तुलसी जैसे भक्त भ्रमर के लिए 'श्रीमद्भागवत' का अमृत रसपान छोड़ना कैसे सम्भव था। तुलसी जैसे मधुकर ने 'मानस' को भक्ति सुधा से सराबोर करने के लिए 'श्रीमद्भागवत' की अगाध पीयूष-धारा से पर्याप्त अमृत प्राप्त किया है। इसी श्रृंखला में 'श्रीमद्भागवत' के अनेकानेक भाव और सिद्धान्तों में से यत्किंचित भावों का संयोजन करने का एक प्रयास किया जा रहा है।

'श्रीमद्भागवत' की एकमात्र विशेषता है— प्रभु: प्राप्ति का सुगम उपाय बताना – 'महाभारत' जैसी विशद रचना के उपरान्त भी अतृप्त रहने वाले 'वेदव्यास' जी का हृदय भक्ति प्रधान 'श्रीमद्भागवत' की रचना से ही तृप्त हुआ। जिसके श्रवण करने मात्र से भक्ति के निष्प्राण पुत्र ज्ञान और वैराग्य प्राण संचार ही नहीं हुआ वरन् दोनों यौवन सम्पन्न हो गये। अतः बिना भक्ति के भगवान की प्राप्ति सम्भव नहीं—

'न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्भव।

न स्वाध्यायस्तपो त्यागो यथाभक्तिर्ममोजिता।।'



साधन एवं साध्य रूप भक्ति का सांगोपांग मनोरम विवरण, सत्संग—महिमा, ज्ञान—भक्ति, समन्वय आदि के सिद्धांतों का 'श्रीमद्भागवत' में भण्डार है। इन्हीं सिद्धान्तों को सार रूप में ध्यान रखते हुए जब हम 'मानस' में प्रवेश करते हैं तो 'श्रीमद्भागवत' की प्रकाशवान अन्तरात्मा ही सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। प्रसंगवश कुछ उदाहरण दृष्टव्य है—

'जिन्ह हरिकथा सुनी नहीं काना ।

स्रवनरन्ध्र अहि भवन समाना ।।'

....

'जो नहीं करइ राम गुन गाना ।

जीह सो दादुर जीह समाना ।।''

इसी क्रम में 'श्रीमद्भागवत' की निम्न उक्ति —

'बिलेबतोरुक्रमान ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ।

जिह्वा सती दार्दुरिकेव सूत न चोपगासयत्युरुगायगाथा ।।''

अतः दोनों उक्तियों का मिलान करने से यह तो स्पष्ट है कि गोस्वामी जी ने 'भागवत' के श्लोक का अनुवाद कर अपनी कुशलता का परिचय दिया है।

एक अन्य प्रसंग में रंगभूमि में पधारे हुए भगवान श्रीराम और लक्ष्मण को सारे लोग किस रूप में देख रहे हैं—

"देखहिं भूप महारनधीरा ।

मनहु वीर रस धरे सरीरा ।।

डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी ।

मनहु भयानक मूरति भारी ।।

रहे असुर छल छोनिप देखा ।

तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा ।।

पुरवासिन्ह देखे दोउ भाई ।

नर—भूषण लोचन—सुखदाई ।।

नारि विलोकहिं हरषि हिय, निज—निज रुचि अनरूप ।

जनु सोहत शृंगार धरि, मूरति परम अनूप ।।

....

रामहि चितव भाव जेहि सीमा ।

सो सनेह सुख नहीं कथनीया ।।

उर अनुभवति न कहि सा सोऊ ।

कवन प्रकार कहइ कवि कोऊ ।।''

इधर कृष्ण—बलराम के आगमन पर कंस की रंगभूमि पर कैसा दृश्य उपस्थित हुआ—

"मल्ला नामशानि नृणा नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान,
गोपानां स्वजनोऽस तां क्षिति भुजां शास्ता स्व पित्रो शिशुः ।
मृत्युभोजपतेर्विराड विदुषां तत्त्वं परं योगिनां,

वृष्णी नां परदेवतेति विदितो रङ्ग गतः साग्रजः ।।''⁵

दोनों प्रसंगों का अवलोकन करने स्पष्ट हो जाता है कि गोस्वामी जी ने 'भागवत' का भाव अपनाया है, फिर भी उनका वर्णन 'श्रीमद्भागवत' के वर्णन से कहीं अधिक व्यापक और हृदय स्पर्शी है। 'श्रीमानस जी' की प्रथम तीन पक्तियों में 'वीरत्व' और 'भयानकत्व' की जैसी संजीव अभिव्यंजना हुई है, वैसी 'मल्लों के वज्र के समान' देखा' के कथन में नहीं होती। उद्धृत श्लोकांश में श्री हरि लोगों को 'नश्वरः' के रूप में दिखलाई पड़े, वहीं पर 'श्रीमानस जी' में 'नरःभूषण' के साथ—सथ 'लोचन सुखदाई' जोड़कर भाव में उत्कर्ष की अभिवृद्धि की गयी है। इसी प्रकार अग्रिम अर्द्धाली में परम तत्व के रूप की चर्चा हुई है और श्लोक 'तत्त्वं परं योगिनां' कहकर के विराम ले लेता है। उधर लोकांश में भगवान श्रीकृष्ण वृष्णिवंशी यादवों को ही इष्ट के रूप में दिखे और इधर भगवान श्रीराम सारे प्रभु भक्तों को सारे प्रभु भक्तों को।

'श्रीरामचरित मानस जी के 'किष्किन्धा काण्ड' में 'वर्षा और शरद ऋतु का जो वर्णन' मिलता है वह श्रीमद्भागवत के वर्षा और शरद वर्णन' की प्रतिच्छाया मात्र है और इतना ही नहीं 'श्रीमानस जी' में 'कलियुग—वर्णन' की ना जाने कितनी चौपाइयों के भाव ही नहीं अपितु पदावली भी 'श्रीमद्भागवत' के कलियुग वर्णन से गृहीत की गयी है।⁶

'श्री मानस जी' में उद्धृत चार प्रकार की पतिव्रताओं के लक्षणों को देखिये—

'उत्तम के अस बस मन माहीं ।

सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं ।।

मध्यम पर पति देखहिं कैसे ।

भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ।।

धरम विचारि समुझि कुल रहई ।

सो निकृष्ट तिय सुति अस कहई ।।

बिनु अवसर भय से रह जोई ।

जानेहु अधम नारि जग सोई ।।''¹⁰

'शिवपुराण' के निम्नांकित श्लोकों से यही सार लक्षण प्राप्त हुए हैं—

'स्वप्नेवि यन्मनोनित्यं स्वपतिं पश्यति ध्रुवम् ।

नान्यं परपतिं भद्रे उत्तमा सा प्रकीर्तिता ।।

या पितृ—भ्रातृ सुतवत् परम्पश्यति सद्धिमा ।

मध्यमा सा हि कथिता शैलजे वै पतिव्रता ।।



बुद्ध्वा स्वधर्मं मनसा व्यभिचारं करोति न ।
निकृष्टा कथिता सा हि सुचरित्रा च पार्वति ॥
पत्युः कुलस्य च भयाद् व्यभिचारं करोति न ।
परिवृताऽधमा सा हि कथिता पूर्व सूरिभिः ॥¹¹

कुल मिलाकर उपरोक्त चौपाइयों श्लोकों की रूपान्तर मात्र तो हैं, परन्तु यह तो स्वीकार्य ही है कि अन्तिम चौपाई का चरण 'बिनु अवसर भय ते रह जोई' अंतिम श्लोक के 'पत्युः कुलस्य रूम भयाद् व्यभिचारं करोति न' की, अपेक्षा अधिक रमणीय और भाव व्यंजक है।

विष्णु पुराण, पद्म पुराण, नृसिंह पुराण, प्रभृति पुराणों की जिन उक्तियों का समावेश 'मानस कोष' में किया गया है, स्थानाभाव के कारण उनसे हटकर हम 'श्री गीता' से गृहीत कुछ उद्धरण प्रस्तुत करते हैं—

'संभावित कह अपजस लाहू ।

मरन कोटि सम दारुन दाहू ॥¹²

'गीता' का वह श्लोकांश विसका यह रूपान्तर है—
'संभावितस्य चाऽकीर्तिर्मरणादविरिच्यते ॥¹³

यह कहना अत्युक्ति नहीं कि अर्द्धाली श्लोकांश की रूपान्तर होकर भी अधिक प्रभावी तथा हृदयस्पर्शी है।

'श्वेताशतरोपनिषद' की निम्नांकित उक्ति (श्लोक) का प्रतिबिम्बभाव श्री गोस्वामी जी के 'मानस-कोष' में दृष्टव्य है—

'अपाणि पादो, जवनो ग्रहीता,

पश्यत्य चक्षुः स श्रृणोत्यकर्ण ।

स वेत्तिवेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता

तमाहुरग्रयं पुरुषं महान्तम् ॥¹⁴

'बिनु पद चलइ सुनहि बिनु काना ।

कर बिनु करम करई विधि नाना ॥

आनन रहित सकल रस भोगी ।

बिनु वानी वक्ता बड़ जोगी ॥

तनु बिनु परस नयन बिन देखा ।

ग्रहइ घान बिनु वास असेसा ॥¹⁵

पंचतंत्र, चाणक्य नीति, भर्तृहरि शतक, हितोपदेश आदि अन्यान्य कोटि के चर्चित नीति ग्रन्थों के नीतिमय वचनों के रुचिर संचय से 'श्री मानसकार' ने 'मानस कोष' की शोभा वृद्धि की है। प्रथमतः 'हितोपदेश' के कुछ अंश प्रस्तुत हैं—

'वैद्यो गुरुश्च मन्त्री च यस्य राज्ञः प्रियः सदा ।

शरीर-धर्म-कोशेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते ॥¹⁶

यही नीति गोस्वामी जी के शब्दों में—

"सचिव वैद गुरु तीनि जो प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धरम तन तीनि कर होई बेगि ही नास ।"

— मानस सुन्दरकाण्ड — 37

यद्यपि श्लोक में नीति का सुन्दर विवेचन तो है लेकिन मूल की अपेक्षा उसमें व्यापकता और रमणीयता का आधिक्य है। 'भय आस' के प्रयोग ने अर्थ में तीव्रता का संचार उपस्थित कर दिया है। श्लोक के माध्यम से यह स्पष्ट है कि ये तीनों जिस राजा की हाँ में हाँ मिलाते हैं, वह अति शीघ्र शरीर, धर्म और कोष रहित हो जाता है। गोस्वामी जी का दोहा यह स्पष्ट तो करता ही है तथा सर्व साधारण के लिए भी सिद्धान्त निरूपित करता है।

एक अन्य उदारण प्रस्तुत है—

'सुवेषं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं जनकं सुतम् ।

योनिः क्लियति नारीणां सत्यं सत्यं हि नारद ॥¹⁷

इसी भाव को महात्मा तुलसीदास जी ने निम्नांकित पंक्तियों में सुन्दर ढंग से कैसे प्रस्तुत किया है—

'भ्राता पिता पुत्र उरगारी ।

पुरुष मनोहर निसरत नारी ॥

होई विकल सक मनहिं न रोकी ।

जिमि रवि मनि द्रव रबिहिं बिलोकी ॥¹⁸

यहाँ पर तुलसी ने श्लोक का भाव ग्रहण करके भी अश्लीलता को तिरस्कृत किया है।

'चाणक्य नीति' की भवितव्यता की विशेषता को प्रकट करने वाली एक उक्ति दृष्टव्य है—

'तादृशी जायते बुद्धिव्यवसायोऽपि तादृशः ।

सहायास्तादृशा एव मादृशी भवितव्यता ॥¹⁹

यही भाव गोस्वामी जी के 'मानस' में इस प्रकार वर्णित है—

'तुलसी जस भवितव्यता तैसइ मिलइ सहाइ ।

आपु न आवइ ताहि पहि ताहि तहाँ लेइ जाइ ॥²⁰

श्लोक की दूसरी पंक्ति का भाव इस दोहे में अभिव्यक्त है लेकिन उसमें उत्कर्ष लाने के लिए कुछ और बढ़ा दिया गया है। कवि ने 'आपु न आवइ ताहि पहि ताहि तहाँ लेइ जाइ' जोड़कर 'भवितव्यता' का अमित प्रभाव भी दिखाया है। दोहे में 'जस भवितव्यता तैसइ मिलइ सहाइ' मात्र कह देने से सिद्धान्त वाक्य ही रह जाता है।

अन्ततः भर्तृहरि के नीतिमय वचनों को महात्मा तुलसी ने किस ढंग से अपनाया, यह भी दृष्टव्य होगा।



भर्तृहरि का कथन है—

‘पापन्निवारयति योजने हिताय,
गुह्यं निगूहति गुणान्प्रगटी करोति ।
आपदगतं च न जहाति ददाति काले,
सन्मित्रं लक्षणामिदं प्रवदन्ति सन्तः ।।’
यहाँ गोस्वामी जी कहते हैं—
‘कूपथ निवारि सुपंथ चलावा ।
गुन प्रगटहिं अवगुनहिं दुरावा ।।
देत लेत मन संक न धरई ।
बल अनुमान सदा हित करई ।।
विपत काल कर सत गुन नेहा ।
स्रुति कह संत मित्र गुन एहा ।।’²⁰

श्लोक में ‘आपदगतं न जहाति’ की तुलना में ‘विपत काल कर सत गुन नेहा’ में गम्भीर व्यंजना है और ‘देत लेत मन संक न धरई’ में ‘ददाति काले’ की अपेक्षा गूढ़ भावाभिव्यक्ति है। अब यह कहना अत्युक्ति न होगा कि तुलसी ने ‘भर्तृहरि’ का भाव अवश्य गृहण किया है, पर उसे अधिक रमणीय बनाया है।

भर्तृहरि का एक अन्य उदाहरण देखिये —
‘कान्ता कटाक्ष विशित्वा न दहन्ति यस्य,
चिन्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः ।
कर्षन्ति भूरि विषयाश्च न लोभपाशै,
लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः ।।’²¹
‘मानस’ में यही भाव इस रूप में व्यक्त है—
‘नारि नयन सर जाहि न लागा ।
घोर क्रोध तम निसि जो जागा ।।
लोभ—पास जेहि गर न बंधाया ।
सो नर तुम समान रघुराया ।।’²²

अब यहाँ पर पुनः जाँचते हुए कहना पड़ता है कि तुलसी ने भर्तृहरि का भाव अवश्य ग्रहण किया है लेकिन अपनी कला से और का और मनोज्ञ रूप दे दिया है। भर्तृहरि के ‘यस्य चित्तं न निर्दहतिकोप कृशानुतापः’ से मात्र यही भाव व्यंजित होता है कि जिसका हृदय क्रोध रूप अग्नि की ज्वाला से दग्ध नहीं होता, किन्तु तुलसी के ‘घोर क्रोध—तम निसि जो जागा’ से गूढ़ व्यंजना होती है, अर्थात् जिसका विवेक क्रोध आने पर भी कुण्ठित नहीं होता। ‘लोकत्रयं जयति कृत्स्नं सः धीरः’ से ‘सो नर तुम्ह समान रघुराया’ में न जाने किसी गम्भीर शक्ति और पराक्रम अभिव्यंजित हुआ है।

यहाँ ‘पाणिनि’ के सूत्र की एक शुष्क कणिका भी दृष्टव्य है—

‘श्वयुवमधोनामतद्विते ।’²³

इसी के आधार पर गोस्वामी जी ने इन्द्र की खबर ली —

‘सरिस स्नान मघवान जवान् ।’²⁴

अनेकानेक प्राचीन आर्ष—गन्थों—पुष्पों से अपने तुलसी मिलिन्द ने विशिष्ट भाव—भावों से मकरन्द ग्रहणकर अपनी नवनवोन्मेषकारिणी प्रज्ञा के सहारे भव्यतर भावों में परिणित कर ‘मानस—मधुकोष’ में जिस तरह समाविष्ट किया है उसको अल्पबुद्धि वाला मैं अनेकानेक झलक दिखाने के लिए अब लेख को अवकाश न होने के कारण बढ़ा नहीं सकता। वह तो महात्मा तुलसी जैसा सर्वग्राही कोई मधुप ही उसके मधुकोष से सिंचित मधुकणों का समस्त उद्गम दिखानमें सक्षम हो सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीमद्भागवत — 11-14-20 ।
2. श्रीरामचरितमानस — बालकाण्ड — 112, 2, 6 ।
3. श्रीमद्भागवत — 2 — 3 — 20 ।
4. श्रीरामचरितमानस — बालकाण्ड — 240, 5-8, 241, 2-7 ।
5. श्रीमद्भागवत — 10 — 43 — 17 ।
6. श्रीरामचरितमानस — किष्किन्धा काण्ड—13.3 1-8, 14, 1-12, 15, 1-10, 16, 1-8, 17 ।
7. श्रीमद्भागवत — 10-20-8, 9, 15, 17, 20, 23, 38, 39, 49 ।
8. श्रीमद्भागवत 2-1-26, 28-34 ।
9. श्रीरामचरित मानस — लंकाकाण्ड — 14, 1-8, 15 ।
10. श्रीरामचरित मानस — अरण्यकाण्ड — 4, 12-15 ।
11. शिवपुराण, पार्वती खण्ड — 54-74-77 ।
12. श्रीरामचरित मानस — अयोध्याकाण्ड — 97, 7 ।
13. श्रीमद्भागवत — 2, 34 ।
14. श्वेतानुपनिषद्—3, 19 ।
15. श्रीरामचरित मानस — बालकाण्ड—117, 5, 6, 7, ।
16. हितोपदेश — विग्रह कथा—8, श्लोक— 104 ।
17. हितोपदेश — मित्रलाभ कथ ।
18. श्रीरामचरित मानस — अरण्यकाण्ड — 16, 5, 6 ।
19. चाणक्य नीति — 6 — 6 ।
20. श्रीरामचरित मानस — बालकाण्ड — 159 ।
21. नीति शतक — श्लोक—73 ।
22. श्रीरामचरित मानस — किष्किन्धाकाण्ड — 6, 3, 4, 5 ।
23. सिद्धांत कौमुदी — 6, 4, 133 ।
24. श्रीरामचरित मानस — अयोध्याकाण्ड — 300, 8 ।



बदलते समय में भारत और चीन के राजनायिक सम्बन्ध



— डॉ. प्रीती सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर —
राजनीति विज्ञान विभाग,
डी. बी. एस. (पी. जी.) कालेज,
कानपुर 208006
(उत्तर प्रदेश)

ई-मेल :
singhpreeti7284@gmail.com

सारांश

भारत में आर्थिक सुधारों की शुरुआत सन् 1991 में हुई। भारत ने विकास के सभी मानकों सकल घरेलू विकास, विदेशी मुद्रा भण्डार, व्यापार आवर्त, निवेश एवं अन्य को पूरा कर लिया और विश्व में 11वां सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था वाला देश हो गया। वर्तमान में इसकी रफ्तार इतनी तेज है कि 2019 में यह विश्व की 5वीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था वाला देश हो गया है। भारत ने अपने सकल घरेलू विकास दर को दुगुना करने का फैसला किया है और आशा करता है कि वह सन् 2024 तक इस आर्थिक लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा। एशिया के सबसे बड़े इन दोनों देशों के व्यवहार में निश्चित ही बदलाव दिखाई दे रहा है।

भारत और चीन दो सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाएँ संचालित करने वाले देश हैं। इन देशों के मध्य सांस्कृतिक व आर्थिक सम्बन्ध प्राचीन काल से ही चले आ रहे हैं। चीन हमेशा ही जापान की व्यवसायिकता से प्रभावित रहा है और भारत लगभग 200 वर्ष ब्रिटेन की औपनिवेशिक दासता से जकड़ा रहा है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् दोनों देश स्वतन्त्रता हासिल कर पाये।

ऐतिहासिक घटक — चीन में धर्म और संस्कृति का दीर्घकालीन इतिहास यह प्रदर्शित करता है कि यहाँ की संस्कृति और जन चेतना को कन्फ्यूशियवाद, ताओवाद और बौद्धधर्म ने मिलकर वर्तमान स्वरूप साकार किया है। इन तीनों धर्मों में आपस में बहुत सी समानताएँ हैं और एक दूसरे से अलग होने का दावा करने के स्थान पर अपने विचारों और रिवाजों से चीनी लोकधर्म को समृद्ध बनाने का कार्य करते रहे हैं। भारत के द्वारा ही बौद्ध धर्म का प्रचार व प्रसार चीन में किया गया। चीन के लोगों ने बौद्धधर्म की शिक्षा ग्रहण करने के लिये भारत के विश्वविद्यालयों (नालन्दा एवं तक्षशिला) को चुना क्योंकि उस समय विश्व में अपनी तरह के यहीं दो विश्वविद्यालय शिक्षा के महत्वपूर्ण केन्द्र थे।¹

1946 में चीन में साम्यवादी शासन की स्थापना हुई फिर भी दोनों देशों के मध्य मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बने रहे। चीन के संघर्ष के प्रति भारत द्वारा विकासशील देश की नीति एवं पंचशील सिद्धान्त पर आस्था प्रकट की गई। 1949 में नये चीन की स्थापना के पश्चात् भारत ने चरन के साथ राजनायिक सम्बन्ध स्थापित किये। इस प्रकार भारत चीन लोक गणराज्य को मान्यता देने वाला पहला गैर समाजवादी देश बना।²

1954 में भारत, चीन व म्यांमार द्वारा शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व के पाँच सिद्धान्त (पंचशील) प्रवर्तित किये गये। पंचशील सिद्धान्त चीन व भारत द्वारा विश्व की शान्ति व सुरक्षा में किया गया एक महत्वपूर्ण योगदान था और आज तक दोनों देशों की जनता की जवान पर है परन्तु चीन ने मैत्री सम्बन्धों को किनारे करते हुए 1962 में भारत पर आक्रमण



कर दिया और भारत की बहुत सी भूमि पर कब्जा करते हुए एकपक्षीय युद्धविराम की घोषणा कर दी तब से आज तक दोनों देशों के मध्य सम्बन्ध सामान्य नहीं हो पाये हैं। चीन ने मैकमोहन रेखा को मानने से इन्कार कर दिया और 37 वर्ग किमी के अक्साई चीन के क्षेत्र को कब्जे में कर लिया इसके अतिरिक्त जम्मू एवं कश्मीर के कुछ हिस्से में भी चीन ने दखलन्दाजी की। इसके अलावा 90000 वर्ग किमी की भारतीय भूमि जो अरुणाचल प्रदेश का हिस्सा था वो भी इनके कूटिल दावे का शिकार हो गया।

दोनों देशों के विशेष प्रतिनिधियों ने सन् 2003 में सीमा विवाद हल करने के लिये वार्ता जारी करने पर सहमति व्यक्त की दोनों पक्षों के मध्य बातचीत के कई दौर चले लेकिन विवाद की स्थिति 'वहीं की वहीं' रही। इन वार्ताओं से एक परिणाम यह निकलकर आया कि सीमा पर शांति बहाल की जाये और आपस में सूचनाओं को साझा किया जाये।

चीन और भारत का आर्थिक अभ्युदय—

शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद से दोनों देशों के आर्थिक विकास की रफ्तार तेजी से बढ़ी है। अतः दोनों ही देशों के व्यवहार में भी परिवर्तन तेजी से दिखाई देने लगे। चूंकि दोनों पड़ोसी हैं। अतः दोनों का ध्यान एक दूसरे पर लगे रहना स्वाभाविक है।

डेंग जिपिंग एक उभरते हुए चीनी नेता रहे जिन्होंने सन् 1978 में 'आधुनिक चीन' की आधारशिला रखी। माओ ने चीन को जहाँ तक पहुँचाना था, उसके बाद डेंग जिपिंग ने चीन को आधुनिक स्वरूप प्रदान किया। वे आधुनिक चीनी अर्थव्यवस्था के निर्माता रहे क्योंकि उन्होंने ही उदार आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत 'मुक्त दरवाजे की नीति' की शुरुआत की जिसने विदेशी निवेश को आमन्त्रित किया और विशेष आर्थिक परिक्षेत्र (स्पेशल इकोनॉमिक जोन) को विकसित किया। इससे चीन की अर्थव्यवस्था में विकास के दौर की शुरुआत हुई।

चीन को विकसित राष्ट्र के रूप में विश्वपटल पर आगे बढ़ाने का कार्य चीन के राष्ट्रपति श्री जिपिंग ने किया। इन्होंने सन् 2012 में सत्ता संभाली और पाँच वर्षों में ही अपनी कोशिशों से चीन को विश्व के शीर्षतम देशों में स्थान दिलाया। इनके 'चाइनीज ड्रीम' और 'नये युग' की नई अवधारणाओं ने एक नई शुरुआत की और चीन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रभावशाली देशों में स्थापित हो गया। भारत के विकास की कहानी भी उसके अतीत को देखते हुए कम रोचक नहीं है। भारत में आर्थिक सुधारों की

शुरुआत सन् 1991 में हुई। भारत ने विकास के सभी मानकों सकल घरेलू विकास, विदेशी मुद्रा भण्डार, व्यापार आवर्त, निवेश एवं अन्य को पूरा कर लिया और विश्व में 11वां सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था वाला देश हो गया। वर्तमान में इसकी रफ्तार इतनी तेज है कि 2019 में यह विश्व की 5वीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था वाला देश हो गया है। भारत ने अपने सकल घरेलू विकास दर को दुगुना करने का फैसला किया है और आशा करता है कि वह सन् 2024 तक इस आर्थिक लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा। एशिया के सबसे बड़े इन दोनों देशों के व्यवहार में निश्चित ही बदलाव दिखाई दे रहा है। दोनों ही देशों के पास उभरते हुए बाजार हैं जिससे वह अपने दीर्घकालीन विकास का लक्ष्य हासिल कर सकते हैं। चीन ने दक्षिण एशिया, अफ्रीका, लैटिन, अमेरिका, केन्द्रीय एशिया और प्रशांत क्षेत्रों में अपने आर्थिक वर्चस्व हासिल कर लिये और मलक्का के प्रति अपनी समस्याओं से निपटने के लिए और ऊर्जा तथा व्यापारिक आवश्यकता की सम्पूर्ति के लिए इसने समुद्री क्षेत्र पर अधिपत्य जमाना शुरू किया। 64 बिलियन यू. एस. डालर की लागत से चीन — पाकिस्तान आर्थिक गलियारे का निर्माण किया गया जो चीन को सीधे अरब-सागर से जोड़ता है। चीन — पाकिस्तान आर्थिक गलियारा (सी.पी.ई.सी.) चीन की महत्वपूर्ण एवं महात्वाकांक्षी परियोजना 'बेल्ट एंड रोड इनिशियेटिव' का एक हिस्सा है। चीन की मुख्य रणनीति यही है। कि विश्व के अनेक हिस्सों में अपना परचम फहराते हुए वैश्विक प्रभुत्व स्थापित किया जाये और महात्वाकांक्षी परियोजना 'बेल्ट एण्ड रोड इनिशियेटिव' को यथार्थ रूप से परिणित किया जाये। इसने भारत के द्वारा तेल शोधन कार्यक्रमों को वियतनाम के तट पर शुरू किये जाने का हर संभव विरोध किया। दक्षिण एशियाई देशों में चीन की आर्थिक संधियों और इनकी आर्थिक ताकतें पिछले वर्षों के दौरान लगातार बढ़ती रही जिससे इन देशों को चीन के साथ व्यापार में 533 बिलियन यू.एस. डालर का नुकसान हुआ। भारत ने कई देशों के साथ अपने आर्थिक सम्बन्ध स्थापित किये। इनके अतिरिक्त भारत ने एशियाई देशों से सन् 2009 में मुक्त व्यापारिक समझौते भी किये। चीन को भारत की लगातार बढ़ती आर्थिक प्रगति पसन्द नहीं है क्योंकि भारत भी दक्षिण एशिया में चीन के आर्थिक वर्चस्व को नापसन्द करता है। दोनों देश हमेशा राजनीतिक कारणों से आपस में भिड़ते रहे हैं जिस कारण उनके द्विपक्षीय सम्बन्ध वास्तव में चट्टानी हो गये हैं।

इन दोनों पड़ोसी देशों की सत्ता शीर्ष पर रहने



वाले नेताओं को उनके सुधारात्मक दृष्टिकोण के लिए जाना जाता है। भारतीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी और चीनी राष्ट्रपति जिनपिंग के बीच विशिष्ट समानतायें हैं। दोनों ही नेता निवेशकों को आकर्षित करने के लिए अपने दोस्तों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने के लिए जाने जाते हैं। जहाँ चीन ने अपनी बुलेट ट्रेनों से दुनिया को मंत्रमुग्ध किया है तो भारत अपने अंतरिक्ष मिशन में मूल्यवान संचार उपग्रहों को लान्च करते हुए आगे बढ़ रहा है।

वित्तीय क्षेत्र के प्रबन्ध में सर्वश्रेष्ठ—

चीन ने 1978 में बाजार समर्थक अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ना शुरू किया और भारत ने 1991 में। लेकिन आर्थिक और वित्तीय बाजारों में सुधार के मामले में भारत चीन से 15 साल आगे है। विशेषज्ञों का मानना है कि भारत ने वित्तीय क्षेत्र में चीन से बेहतर प्रदर्शन किया है। भारतीय बाण्ड बाजार को एशिया में सबसे अधिक तरल में एक के रूप में जाना जाता है जो कि आर.बी.आई. द्वारा अच्छी तरह से विनियमित और इलेक्ट्रॉनिक है। वित्तीय क्षेत्र को प्रबन्धित करने के तरीके में भारत को दुनिया के सर्वश्रेष्ठ देशों में से एक माना जाता है।

अंतरिक्ष मिशन की प्रतियोगिता—

चीन अंतरिक्ष मिशन में वास्तव में बहुत अच्छा कर रहा है किन्तु भारत भी संचार उपग्रहों के लगातार प्रक्षेपण में पीछे नहीं है। भारत ने अपने जी.एस.एल.वी.एम.के.।।। के साथ अपना सबसे भारी संचार उपग्रह भेजा है। भारत का लक्ष्य 300 अरब डालर के वैश्विक अंतरिक्ष उद्योग का एक बड़ा हिस्सा जीतना है। भारत ने अपने उत्तरी पड़ोसी से प्रशंसा अर्जित करते हुए रिकार्ड 104 उपग्रहों को सफलतापूर्वक लान्च किया है। अंतरिक्ष मिशन की शुरुआत भी चीन ने 1950 के दशक और भारत ने 1962 में की थी।

फार्मास्यूटिकल उत्पाद और निर्यात—

दवा उत्पादन और निर्यात को भारत अपनी सबसे बड़ी ताकत मानता है। इसने पिछले पाँच वर्षों में लैटिन अमेरिका को फार्मास्यूटिकल उत्पादों के निर्यात और चीन को पीछे छोड़ा है। आई.वी.एफ. की रिपोर्ट में कहा गया है कि 2016 में चीन के 404 मिलियन डालर मूल्य के निर्यात की तुलना में भारत ने लैटिन अमेरिका को 651 मिलियन डालर कि उत्पाद निर्यात किये। भारत और अमेरिका के बढ़ते हुए सामरिक सम्बन्धों को चीन अपने विरोधी रणनीति के रूप में देखता है।

खुदरा बिक्री में अपेक्षित उछाल—

भारत ने वैश्विक खुदरा विकास सूचकांक में व्यापार करने में आसानी पर 30 विकासशील देशों में शीर्ष स्थान हासिल करने के लिए चीन को पीछे छोड़ दिया है। जी.आर.डी.आई. के 16वें संस्करण में भारत की तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश नियमों में ढील और आपूर्ति में उछाल को जी.आर.डी.आई. में शीर्ष स्थान पर धकेलने वाले प्रमुख कारकों के रूप में बताया गया है। शुद्ध खुदरा किक्री के आँकड़े दिखाने वाले ग्राफ में चीन भारत से आगे है। एफ.डी.आई. कान्फिडेंस इन्डेक्स के अनुसार भारत चीन और ब्राजील के बाद तीसरे स्थान पर है।

भारत की भौगोलिक स्थिति उसके पड़ोसी देशों के साथ कूटनीतिक सम्बन्धों की दृष्टि से अत्यन्त चुनौतीपूर्ण है। यह स्पष्ट है कि भारत के प्रतिरक्षात्मक हित तभी सुरक्षित रह सकते हैं। जब कि चीन सहित सभी पड़ोसी देशों में स्थायी एवं उदार राजनीतिक व सामाजिक व्यवस्था तथा दृढ़ आर्थिक विकास की स्थापना हो। इस प्रकार जिस परिपक्वता के साथ भारतीय एवं चीनी नेतृत्व ने रणनीतिक मतैक्य को प्राप्त किया है उसी कौशल से उन्हें यह प्रयास भी करना चाहिए कि उनकी शक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि से भारत के पड़ोस में और अन्य स्थानों पर शक्ति-राजनीतिक के प्रदर्शन की प्रवृत्ति न बढ़े।

भारत एवं चीन के बीच प्राचीनकाल से चली आ रही मैत्री आधुनिक काल में कई अस्थिर दौरों से गुजरती रही है। भारत और चीन का सीमा विवाद आज तक बना हुआ है। हालांकि हम कर सकते हैं कि इधर चीन व भारत के बीच सम्बन्धों में कुछ सुधार हुआ है तो भी दोनों देशों के मध्य कुछ अनसुलझी समस्यायें हमेशा की तरह विद्यमान रहेगा। इस समय दोनों ही अपने-अपने शान्तिपूर्ण विकास में लगे हैं। 21वीं शताब्दी के चीन व भारत प्रतिद्वन्दी भी है और मित्र भी।⁷

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आधुनिक चीन का इतिहास – प्रो. के. टी. एस. सराओ।
2. कोविड-19 काल में भारत चीन सम्बन्धों के परिवर्तित आयाम – डॉ. अभय शंकर सिंह व 4 अन्य सहयोगी।
3. भारत-चीन सम्बन्ध – डॉ. एम. एल. शैली।
4. India-China in the Worlds - Tansen Sen.
5. How China sees India - Shyam Saran.
6. The Economic Times - 2015.
7. Journal of Economics and Social - Dr. Dilip Shukla. The Hindu.com, World Focus, India Today.



उपनिषदों में निहित नैतिक शिक्षा की वर्तमान में उपयोगिता

शोध सारांश



— प्रो. दीपा प्रधान
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष —
प्राचीन इतिहास विभाग,
डी. ए. वी. (पी. जी.) कॉलेज,
कानपुर-208001
(उत्तर प्रदेश)

ई-मेल :
deepa.pradhan66@gmail.com

उपनिषद् भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व की अमूल्य निधि हैं। इनमें समाहित नैतिक शिक्षा प्राणी जगत के कल्याण एवं आत्मत्व, समत्व एवं एकत्व के लक्ष्यों को प्राप्त करने का अमोघ साधन बन सकती है। प्रस्तुत अध्ययन में ऐतिहासिक एवं अन्तर्वस्तु विश्लेषण शोध विधियों का समन्वित प्रयोग किया गया है। अध्ययन के लिए ईशावास्योपनिषद्, कठोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, तैत्तिरीयोपनिषद्, वृहदारण्यकोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद् एवं श्वेताश्वतरोपनिषद् को लिया गया है।

उपभोगवाद, जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण, धन पर ज्ञान की श्रेष्ठता, लोक कल्याण की भावना, परिष्कृत जीवन की अनिवार्यता आदि आवश्यक मूल तत्त्वों को जीवन में समाहित कर सर्वत्र शान्ति की स्थापना कर श्रेष्ठ जीवन की प्राप्ति की जा सकती है।

कुन्जी शब्द— लोककल्याण, उपभोगतावाद, श्रेष्ठ जीवन, पंचकोषमय शिक्षा, अनासक्ति।

नैतिक शिक्षा का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है। शिक्षा के सभी आयामों में न्याय संगत संचालन की कल्पना बिना नैतिक शिक्षा के नहीं की जा सकती। यह वह शिक्षा है, जो विपरीत से विपरीत परिस्थितियों में सत्य के साथ खड़े रहने का साहस एवं शक्ति प्रदान करती है। उपनिषद् नैतिक शिक्षा के बिना किसी भी प्राप्त ज्ञान को मूल्यहीन मानता है। उपनिषदों को सम्पूर्ण विश्व के ग्रन्थों में शैक्षिक चिन्तन के लिए सर्वाधिक सम्मान प्राप्त है। इसका मुख्य कारण यथार्थपरक चिन्तन के परिणाम स्वरूप ज्ञान की पराकाष्ठा में नैतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा का अदभुत समन्वयन है। यह मात्र शैक्षिक ग्रन्थ नहीं अपितु जीवन दर्शन का ग्रन्थ है। उपनिषद् वह ग्रन्थ है, जिनमें सम्पूर्ण विश्व की शान्ति के सूत्र समाहित हैं।

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य उपनिषदों में निहित नैतिक शिक्षा का अध्ययन करना है। प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति गुणात्मक है, जिसमें ऐतिहासिक एवं विषय वस्तु विश्लेषण शोध विधि का प्रयोग किया गया है। सम्बन्धात्मक विश्लेषण विधि का गुणात्मक उपकरण के रूप में प्रयोग किया गया है। आधार ग्रन्थ के रूप में गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित उपनिषदों तथा युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा से श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा सम्पदित उपनिषदों को लिया गया है। प्रस्तुत अध्ययन को ईशावास्योपनिषद्, कठोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, तैत्तिरीयोपनिषद्, वृहदारण्यकोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद् एवं श्वेताश्वतरोपनिषद् तक सीमित किया गया है।

ईशावास्योपनिषद् के प्रथम मंत्र में सम्पूर्ण विश्व में ईश्वर के व्याप्त होने की भावना अर्थात् समस्त विश्व के प्रति श्रद्धा एवं सद्भावना तथा धन का लोभ न करने की शिक्षा दी गई है। वस्तुओं का भोग ईश्वर



को साथ रखकर किए जाने का आशय उपभोगवाद पर नियंत्रण करना है। अपनी आवश्यकतानुसार ही संग्रह करने की नैतिक शिक्षा प्राप्त होती है। ईशावास्योपनिषद् के द्वितीय मंत्र में सौ वर्ष तक कर्म करते हुए जीने की इच्छा का उपदेश दिया गया है। इस मंत्र से जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण, कर्म की निरन्तरता, कर्म में विकार न आने देना व अनुशासित जीवन की शिक्षा प्राप्त होती है। ईशावास्योपनिषद् के पन्द्रहवें मंत्र में विलासितापूर्ण जीवन से बचने तथा सत्यान्वेषण अर्थात् ज्ञान के प्रति निरन्तर जिज्ञासा बनाए रखने की शिक्षा प्राप्त होती है।

कठोपनिषद् में नचिकेता एवं यमाचार्य के संवाद में धन ऐश्वर्य से ज्ञान को श्रेष्ठ माना गया है। ज्ञान के लिए बड़े से बड़ा त्याग किया जा सकता है। नचिकेता शब्द का अर्थ है प्रपंच से अलिप्त अर्थात् जिज्ञासु/साधक/विद्यार्थी को प्रपंचों से अलिप्त रहना चाहिए। कठोपनिषद्-अ.1/व. 2/मं. 4 में सांसारिक भोगों के धारण से लोक कल्याण को श्रेष्ठ कहा गया है। अतः सांसारिक भोगों का न्यूनतम प्रयोग तथा सर्वदा सामाजिक कल्याण/लोक कल्याण के लिए तत्पर रहना चाहिए। कठोपनिषद्-अ.1/व.2/मं.6 में परिष्कृत शुद्ध विचार धारा के लिए विवेक एवं प्रमाद रहित होना आवश्यक माना गया है। विवेकहीनता एवं प्रमाद मनुष्य की विचारधारा को कुण्ठित करते हैं। परिष्कृत जीवन के अभाव में ज्ञानवान भी मूल्यहीन हो जाते हैं। इस आधार पर ज्ञान से भी अधिक श्रेष्ठ परिष्कृत जीवन है।

इस मंत्र में परिष्कृत जीवन को प्राप्त करने के लिए दुष्कर्मों से निवृत्ति, इन्द्रियों पर नियंत्रण, मन में नियंत्रण तथा सांसारिकता अर्थात् भोगविलास से निवृत्ति को मुख्य लक्षण कहा गया है। कठोपनिषद्-अ.1/व.3/मं.14 में सर्वदा ज्ञानीजनों से ज्ञान प्राप्त करने का संदेश दिया गया है। इसका आशय यह भी कहा जा सकता है कि हमें सर्वदा सत्संगत अर्थात् अच्छे, विचारशील व ज्ञानीजनों के सम्पर्क में रहना चाहिए। कठोपनिषद्-अ.2/व.1/मं.5 में सम्पूर्ण विश्व को अपना समझकर किसी की भी निन्दा न करना तथा किसी से भी घृणा न करने का महान संदेश दिया गया है। कठोपनिषद्-अ.2/व.3/मं.14 में ईश्वर की प्राप्ति अर्थात् आनन्द की प्राप्ति के लिए सांसारिक कामनाओं से मुक्ति का संदेश दिया गया है। इस मंत्र से सांसारिक कामनाओं, उपभोगवाद, भौतिकवाद का समूल विनाश कर संतोष की धारणा द्वारा शान्ति की प्राप्ति की नैतिक शिक्षा प्राप्त होती है।

छान्दोग्योपनिषद् में उद्गीथ का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। उद्गीथ में वाणी एवं हृदय का साम्य माना

गया है। इस आधार पर वाणी से कहे गए शब्द तथा हृदय के विचार में किसी भी प्रकार का भेद नहीं होना चाहिए। वाणी में छल-कपट, झूठ आदि के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए। आन्तरिक एवं बाह्य समानता का नैतिक मूल्य व्यक्ति को आनन्द एवं शान्ति प्रदान करता है। उद्गीथ से वाणी में संयम एवं हृदय में निर्मलता की नैतिक शिक्षा प्राप्त होती है। छान्दोग्योपनिषद्-अ.2/ख.19/मं.2 में मांस भक्षण न करने का संदेश दिया गया है। छान्दोग्योपनिषद्-अ.5/ख.11 में आरुणि के प्रसंग में अनेक धारणीय नैतिक मूल्यों की शिक्षा प्राप्त होती है। यथा- ज्ञान का अहंकार न करना, अपनी गलतियों/कमियों को सहर्ष स्वीकार करना, ज्ञानी व्यक्ति का सम्मान करना, तितिक्षा पूर्ण शरीर का परिशोधन आदि।

तैत्तिरीयोपनिषद्-शी.व./नवमोनुवाक से एकादशोनुवाक तक आवश्यक नैतिक मूल्यों का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

सत्य बोलना, सत्य का आचरण, शास्त्रों का अध्ययन व अध्यापन, परिश्रम, इन्द्रियों एवं मन पर नियंत्रण, कर्म की निरन्तरता, धर्म का पालन (सामाजिक मान्यताओं का अनुपालन), स्वाध्याय करना, आलस्य न करना, माता-पिता का आदर, गुरु में ईश्वर के समान श्रद्धा, आचरण की शुद्धता, चरित्र की शुद्धता तथा उसे बनाए रखने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना, अपने से बड़ों का सम्मान, श्रेष्ठ जीवन - श्रेष्ठ सिद्धान्त की धारणा।

तैत्तिरीयोपनिषद्-ब्र. व./शान्तिपाठ में आचार्य एवं शिष्य दोनों की एक साथ मंगल कामना की गई है। यह मंत्र गुरु एवं शिष्य के मध्य गहन सम्बन्धों को उजागर करता है। दोनों की सार्थकता परस्पर निर्भर है। तैत्तिरीयोपनिषद्-ब्र. व0/द्वितीयोनुवाक से षष्ठोनुवाक तक पंचकोषमय शिक्षा का वर्णन है। पंचकोषमय शिक्षा का उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति है। आनन्द की प्राप्ति के लिए संतोष एवं समग्र व्यक्तित्व की श्रेष्ठता परमावश्यक है। इन दोनों नैतिक मूल्यों की धारणा के बिना आनन्द प्राप्त नहीं किया जा सकता।

प्रश्नोपनिषद् के शान्ति पाठ में कानों से कल्याणमय वचन सुनना, शुभ दृश्य देखना, निरोग रहना एवं सभी देवों से सर्वत्र कल्याण की कामना करने का संदेश दिया गया है। प्रश्नोपनिषद् की यह भावना यदि सभी के हृदय में समाहित हो जाए तो सर्वत्र शान्ति की स्थापना स्वतः ही हो जाएगी।

बृहदारण्यकोपनिषद्-ब्रा. 3/मं. 20 में मुख से वाणी से जो व्यक्त किया गया है, वही भाव हृदय में होने का उपदेश दिया गया है। मनुष्य के बाहर प्रदर्शित व्यवहार एवं



आन्तरिक विचार दोनों का एक होना चाहिए। वाणी एवं भाव की एकात्मकता, स्पष्टता एवं निर्मलता का नैतिक मूल्य जीवन साधना का अनिवार्य विभाग है।

मुण्डकोपनिषद्—मु.1/ख.2/मं.1 में सत्य की कामना युक्त कर्मों के श्रेष्ठ फल प्राप्त करने के लिए आचरण में श्रेष्ठता को एक मात्र विकल्प बनाया गया है। इसी खण्ड के मंत्र 4 में आत्मबोध की प्राप्ति के लिए एकाग्रता एवं तन्मयता के साथ आलस्य एवं प्रमाद रहित होना अनिवार्य माना गया है।

मुण्डकोपनिषद्—मु.3/ख.1/मं.5 में ब्रह्म की प्राप्ति को सत्यभाषण, परिश्रम, सम्यज्ञान, ब्रह्मचर्य आदि व्रतों को प्राप्य माना गया है। इसी खण्ड के छठे मंत्र में सत्य को सर्वदा अजेय माना गया है। झूठ अल्प काल के लिए सत्य होने का भ्रम रख सकता है, परन्तु सर्वदा नहीं। इस मंत्र से सर्वदा सत्य बोलने की नैतिक शिक्षा प्राप्त होती है। मुण्डकोपनिषद्—मु.3/ख.1/मं.10 में आत्मज्ञान का लक्षण निर्मल अन्तःकरण माना है। आत्मज्ञानी निर्मल अन्तःकरण से संतोष की प्राप्ति करते हैं। ऐश्वर्यादि की कामना करने वाला व्यक्ति निर्मल अन्तःकरण वाले आत्मज्ञानी का अनुसरण कर भौतिक सुखों की प्राप्ति से मुक्त हो सकता है।

श्वेताश्वतरोपनिषद्—अ.1/मं.13 में विषयों में अनासक्ति एवं स्वर की मधुरता को योग की प्रथम सिद्धि के लक्षणों में समाहित किया है। वाणी की विनम्रता व्यक्ति को जानने का प्रथम नैतिक मूल्य है। इसलिए वाणी में विनम्रता, मधुरता व स्पष्टता होनी चाहिए। इसी उपनिषद् के अध्याय—6/मंत्र—22 में ज्ञान प्राप्ति के लिए अन्तःकरण की रागादि से शान्ति तथा आचार्य के प्रति श्रद्धा भाव को आवश्यक माना है। इसी अध्याय के 23वें मंत्र में साधक/शिष्य के ज्ञान प्राप्ति के लिए परमात्मा के समान गुरु की भक्ति को अनिवार्य कहा गया है। आध्यात्मोपनिषद्के मंत्र 11 में आत्मबोध के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अहंकार की मुक्ति को माना है।

वर्तमान शिक्षा में नैतिक शिक्षा को सुगठित रूप से संचालित न कर पाने के फलस्वरूप शिक्षा का उद्देश्य मात्र धन प्राप्ति ही रह गया है। सुरसा के मुँह की भाँति अनवरत् विस्तारित भौतिकवादिता, उपभोक्तावाद एवं विलासिता मानव समाज की चेतना एवं आत्मविवेक को ग्रसित कर मशीन के रूप में परिवर्तित करते जा रही है। आत्महत्या, बलात्कार, नशा, भ्रष्टाचार एवं अशान्ति आदि का मूल कारण वर्तमान में नैतिक शिक्षा को समुचित स्थान न देना ही है। प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर निम्न बिन्दुओं को अनिवार्यतः वर्तमान शिक्षा में समाहित किया जाना चाहिए।

- श्रेष्ठ सिद्धान्त—श्रेष्ठ जीवन की स्थापना।
- सांसारिक कामनाओं की मुक्ति एवं सन्तोष के द्वारा आनन्द की प्राप्ति।
- इन्द्रियों एवं मन पर नियंत्रण की शिक्षा।
- ज्ञान का अहंकार न करना।
- गुरु का सम्मान।
- आचरण एवं चरित्र की शुद्धता।
- सत्य की स्थापना की अनिवार्यता।
- अनासक्ति एवं स्वर की मधुरता योग की प्रथम सिद्धि के लक्षण।
- अहंकार से मुक्ति आत्मबोध के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण।

उपरोक्त विश्लेषण की प्राप्तियों से स्पष्ट है कि वर्तमान शिक्षा में यदि उपनिषदों में निहित नैतिक शिक्षाओं को हम वर्तमान शिक्षा में समाहित कर पाए तो निश्चित ही यह सम्पूर्ण विश्व में शान्ति एवं सौहार्द की स्थापना का मूल हो सकता है। इन बिन्दुओं को शिक्षा में समाहित कर नैतिक शिक्षा के अन्य मूल्यों की स्थापना स्वतः ही हो जाएगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- गोयन्दका, हरिकृष्णदास : 'ईशादि नौ उपनिषद्, (सत्ताईसवाँ पुनर्मुद्रण—2010) गीता प्रेस, गोरखपुर।
- गोयन्दका, जयदयाल : 'श्रीमद्भगवद्गीता तत्वविवेचनी हिन्दी—टीका, गीताप्रेस गोरखपुर।
- शर्मा, श्रीराम एवं शर्मा, भगवती देवी : '108 उपनिषद् (ज्ञान खण्ड)' युगनिर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, मथुरा (उ.प्र.)।
- उपाध्याय, आचार्य बलदेव : 'वैदिक साहित्य और संस्कृति', शारदा मन्दिर, वाराणसी—1979।
- छान्दोग्योपनिषद्(शांकर भाष्य); गोरखपुर : गीता प्रेस।
- ईशादि नौ उपनिषद्(शांकरभाष्यार्थ); गोरखपुर : गीताप्रेस।
- शर्मा, श्रीराम तथा शर्मा भ. देवी; "वेदान्त दर्शन". मथुरा : युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट।
- अङ्गदानन्द; "यथार्थ गीता". मुंबई : अङ्गदानन्द आश्रम ट्रस्ट।
- सत्यव्रत; "उपनिषद् प्रकाश". नईदिल्ली : विजय कृष्ण लखन पाल।
- गुरुरानी, एस. (2018); "दृष्टि". बागेश्वर : जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान।
- गुरुरानी, एस. (2019); "मंथन", बागेश्वर : जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान।
- नरेन्द्र; "उपनिषद् (एक सरल परिचय)", दिल्ली : विजय कुमार गोविन्दराम हासनन्द।
- बृहदारण्यकोपनिषद् (शांकर भाष्यार्थ); गोरखपुर : गीताप्रेस।
- नारायण स्वामी; "उपनिषद् रहस्य (एकादशोपनिषद्)", दिल्ली : विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द।



भारत में म्यूचुअल फण्ड का समीक्षात्मक अध्ययन



— प्रो. अनुराग
असिस्टेन्ट प्रोफेसर —
वाणिज्य विभाग,
वी. एस. एन. वी. (पी. जी.) कॉलेज
(के.के.वी), लखनऊ-226201
(उत्तर प्रदेश)

ई-मेल :
jaiswalanurag0@gmail.com

शोध सारांश

वर्तमान समय में म्यूचुअल फण्ड एक सर्वश्रेष्ठ विकल्प के रूप में सामने आया है। बचत का निवेश करने के उद्देश्य से म्यूचुअल फण्ड एक अच्छा विकल्प है। म्यूचुअल फण्ड में लम्बे समय तक निवेश करने पर अत्यधिक रिटर्न प्राप्त होता है। म्यूचुअल फण्ड में निवेश किया हुआ धन भारत की विभिन्न कम्पनियों में लगता है जिससे कम्पनियों में वृद्धि के साथ जनता द्वारा निवेशित धन में भी वृद्धि होती है। जनता द्वारा निवेश करने के लिए पेशेवर प्रबन्धन की भी सहायता ली जा सकती है। साथ ही निवेशकों को शिक्षित करने की आवश्यकता भी है ताकि वह कर बचत को प्रोत्साहित कर सके। फण्ड में निवेश करते समय उस पर कई सालों में मिलने वाले रिटर्न निकास का भार, खर्च का अनुपात आदि बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है, तभी आप निवेश का पूर्ण लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

शब्द कुंजी — म्यूचुअल फण्ड, निवेश।

परिचय—

म्यूचुअल फण्ड एक ऐसा संग्रहित कोष है जिसे निवेशकों ने निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सामूहिक निवेश के लिए एकत्रित किया है। फण्ड का स्वामित्व सामूहिक होता है, क्योंकि यह सभी ने आपस में मिलकर संचित किया है। इसमें प्रत्येक निवेशक का भाग उसके द्वारा दिये गये अंशदान का कुल फण्ड मूल्य से आनुपातिक होता है।

फण्ड की सम्पत्तियों के मौद्रिक मूल्य को फण्ड की कुल यूनिट्स संख्या से भाग देकर प्रति यूनिट मौद्रिक मूल्य उसकी छूट कहलाता है।

एन. ए. वी. का अर्थ—

प्रत्येक अंशदाता फण्ड की कुल सम्पत्तियों का आनुपातिक स्वामी होता है। अतः उसके भाग का मूल्य मुद्रा में निर्धारित करना आवश्यक होता है। फण्ड में अंशदान यूनिट्स के विक्रय द्वारा संग्रहित होता है। प्रत्येक यूनिट का कुल फण्ड, सम्पत्तियों में उसका भाग Net Asset Value (NAV) के आधार पर निर्धारित होता है।

$$\text{NAV per Unit} = \frac{\text{Monetary Value of Assets of the Fund}}{\text{No. of total unit issued}}$$

म्यूचुअल फण्डों का वर्गीकरण—

निवेशक को अनेक प्रकार के फण्ड अपनी ओर आकर्षित करते हैं, इन अलग-अलग प्रकार के फण्डों को कुछ वर्गों में बांटा गया है—

1- Open End V/S Close End Fund- Open End Fund का अर्थ है कि फण्ड के यूनिट्स का फण्ड द्वारा क्रय विक्रय निरन्तर चलता रहता है। कोई भी निवेशक अपने यूनिट्स फण्ड को छ।ट आधारित मूल्य पर समर्पित कर सकता है और जब चाहे फण्ड से खरीद



सकता है। फण्ड का आकार यूनिट्स संख्या में कमी या वृद्धि हो सकती है।

Close End Fund की यूनिट कैपिटल स्थायी रहती है, क्योंकि फण्ड द्वारा क्रय विक्रय नहीं किया जाता है। फण्ड प्रारम्भ में ही एक निश्चित मात्रा में सब्सक्रिप्शन द्वारा यूनिट्स निर्गमित करता है। निवेशक फण्ड को अपने यूनिट्स समर्पित नहीं कर सकता है, यद्यपि स्टॉक एक्सचेंज में इनका व्यवहार किया जा सकता है। Morgan Stanadlay Mutual Fund ऐसा ही Close End Fund एक है। स्टॉक एक्सचेंज में ऐसे फण्ड का छूट प्रति यूनिट से अधिक या कम हो सकता है, जो कि फण्ड द्वारा भविष्य में निष्पादन की सम्भावना पर आधारित होता है। ऐसा फण्ड कभी-कभी Buy Back द्वारा निवेशकों को अपने यूनिट्स को समर्पित कर अच्छा मूल्य प्राप्त कराता है।

2- Load and No Load Fund- किसी म्यूचुअल फण्ड के वितरण में अनेक प्रकार की विक्रय लागतें शामिल होती है। ये व्यय निवेशकों से विभिन्न माध्यम से वसूल किये जाते हैं। प्रचलित पद्धतियाँ निम्नलिखित हैं—

(A) Q.M@ स्कीम में प्रवेश के समय उससे प्राप्त अंशदान में से स्वंक के लिए एक निश्चित प्रतिशत राशि काटकर शेष राशि फण्ड के कोष में निवेश करना।

(B) एक निश्चित राशि प्रति वर्ष, प्रति यूनिट की दर से कुछ वर्षों तक चार्ज करना।

(C) निवेशक के फण्ड से निकलते समय तक निश्चित राशि प्रति यूनिट्स की दर से समर्पित मूल्य में से काट लेना। ये चार्ज जो फण्ड मैनेजर द्वारा निवेशकों से लिए जाते हैं उसे स्वंक कहा जाता है। फण्ड में प्रवेश के समय लिए जाने वाले चार्ज को Entry Load कहा जाता है, जब कि Exit करते समय लिए जाने वाले चार्ज को Exit Load कहलाते हैं। फण्ड के जीवनकाल में लिए जाने वाले चार्ज को क्पमिततमक स्वंक कहा जाता है।

(D) ऐसा फण्ड जो खर्चों के लिए चार्ज लेते हैं, Load Fund हलाते हैं और वे फण्ड जो व्यय चार्ज नहीं लेते हैं, No Load Fund कहा जाता है। No Load Fund की दशा में ये चार्ज (Assets Management Company (AMC) द्वारा ही वहन किए जाते हैं।

No Load Fund का इतना ही अर्थ है कि विक्रय व्यय निवेशक से चार्ज नहीं किए गए हैं परन्तु अन्य व्यय जैसे प्रबन्ध एवं प्रशासन व्यय घटाने के बाद ही फण्ड की

छूट निकाली जाती है जिस पर निवेश या शोधन हो सकता है।

3- Tax Exempt V/S Non Tax Exempt Fund- जब फण्ड Tax Exempt प्रतिभूतियों में विनियोजित करता है तो उसे Exempt Fund कहते हैं। भारत में ऐसे फण्ड से प्राप्त आय कर मुक्त होती है, जब कि उनके यूनिट्स व शोधन से प्राप्त लाभ पूंजी लाभ (Capital Gains) के रूप में कर योग्य होता है।

जो फण्ड अपना निवेश कर योग्य प्रतिभूतियों में करते हैं उसे Non Tax Exempt Fund कहा जाता है। फण्ड में निवेश करते समय कर देयता के इस तथ्य पर विचार करना आवश्यक है।

उद्देश्य एवं शोध प्रविधि— प्रस्तुत शोध पत्र के उद्देश्य निम्नवत हैं—

(1) व्यवस्थित जोखिम एवं रिटर्न भिन्नता की पहचान करना।

(2) चयन प्रक्रिया के बारे में जानने के लिए म्यूचुअल फण्ड के लिए पैरामीटर का पता लगाना।

(3) उपलब्ध योजनाओं के बारे में पता लगाने के लिए।

(4) म्यूचुअल फण्ड से सम्बन्धित गलतफहमी एवं समस्याओं के निराकरण के लिए अपेक्षित सुझाव देना। प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीयक समकों पर आधारित है जिसमें समकों का संकलन पुस्तकों, बेबसाइटों, पत्रिकाओं एवं समाचार पत्रों आदि के द्वारा किया गया है।

म्यूचुअल फण्ड के प्रकार—

(अ) निवेश प्रकृति के आधार पर फण्ड के प्रकार— म्यूचुअल फण्ड अपना निवेश इक्विटी, ऋण्यक/बॉण्ड्स तथा स्थायी आय प्रतिभूतियों में तथा अल्पकालीन प्रतिभूतियों में कर सकते हैं। उसी के अनुसार उन्हें Equity Fund, Debt Fund या Market Fund कहा जा सकता है।

(ब) निवेश उद्देश्य के आधार पर फण्ड के प्रकार— निवेशकों के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर फण्ड विभिन्न उद्देश्यों से निवेश करते हैं। जैसे Growth Fund मध्यकालीन एवं दीर्घकालीन प्रतिभूतियों में पूंजी लाभ हेतु निवेश करते हैं। Income Fund निवेश में आय पर ध्यान देते हैं।

पूंजी लाभ को कम महत्व देते हैं। Value Fund उन प्रतिभूतियों में निवेश करते हैं जो कि बाजार में अपने वास्तविक मूल्य से कम मूल्य पर उपलब्ध है।



(स) जोखिम के आधार पर फण्ड के प्रकार—

फण्ड का पोर्टफोलियो तथा उनके उद्देश्य फण्ड के जोखिम स्तर का निर्धारण करते हैं। अतः जोखिम के आधार पर उन्हें विभाजित किया जा सकता है। जैसे – Equity Fund में सर्वाधिक जोखिम निहित है, जब कि Debt Fund में पूंजी हानि की सम्भावना अपेक्षाकृत कम है। Money Market Fund सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश करते हैं। अतः पूंजी हानि की सम्भावना नगण्य ही होती है। जोखिम को कम करने के उद्देश्य से फण्ड मैनेजर निवेशों को बदलते रहते हैं।

पोर्टफोलियो रखने के लिए म्यूचुअल फण्ड में विकल्प—

1— सिक्मैटिक ट्रांसफर प्लान (एस.टी.पी.)—

एस.टी.पी. में आप एक खास म्यूचुअल फण्ड में कुछ रकम जमा कर सकते हैं और उसके बाद निश्चित रकम को इससे म्यूचुअल फण्ड में ट्रांसफर भी कर सकते हैं।

2— सिक्मैटिक विद्वाल प्लान (एस.डब्ल्यू.पी.)—

अगर म्यूचुअल फण्ड निवेशक हर महीन अपने निवेश की राशि को निकालता है और वहीं रकम अपने बैंक अकाउंट में डालता है, तो इस एस.डब्ल्यू.पी. कहा जाता है। अगर बाजार में वृद्धि दिखाई देती है तो इसे देखने के बाद निवेशक इस योजना को म्यूचुअल फण्ड कॉर्सेस में लिक्विडेट के लिए बढ़ा देता है।

3— सिक्मैटिक इन्वेस्टमेंट प्लान (एस.आई.पी.)—

म्यूचुअल फण्ड में मासिक निवेश करने बेहतर का जरिया है, सिप जिसमें एक निश्चित रकम आपके बैंक अकाउंट से म्यूचुअल फण्ड में जाती है।

4— फिक्सड मैच्योरिटी प्लान (एफ.एम.पी.)—

बैंक में सावधि जमा की तरफ फिक्सड मैच्योरिटी प्लान होता है, जिसमें कुछ शर्तें भी होती हैं। बैंक में फिक्सड रकम की परिपक्वता राशि पर किसी तरह की गारन्टी नहीं होती है, लेकिन एफ.एम.पी. में इस तरह का संकेत दिया जाता है।

विविधीकरण



पूँजी सुरक्षा ← म्यूचुअल फण्ड के उद्देश्य → पूँजी वृद्धि



कर बचत

सीमाएँ—

- प्राथमिक डेटा तक पहुँच का अभाव।
- डेटा एकत्रित करने के लिए कम्पनियों तक पहुँच का अभाव।

• सूचना स्रोतों का अभाव।

• सम्भावित ग्राहकों द्वारा दिया गया डेटा 100 प्रतिशत सही नहीं हो सकता है।

• अनुसन्धान पूरा करने में समय, लागत और स्थान जैव वाहक बड़ी कठिनाई उत्पन्न करते हैं।

वित्तीय लक्ष्य



पहचानना क्या खरीदें



विभिन्न म्यूचुअल फण्ड कम्पनी के फण्डों का मूल्यांकन

ऑनलाइन

ऑफलाइन

म्यूचुअल फण्ड कम्पनी

फाइनांशियल डिस्ट्रीब्यूटर फार्म भरें

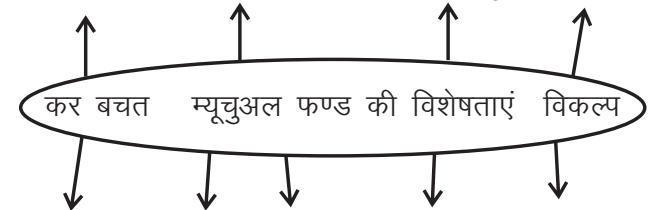


सम्बन्धित दस्तावेज जोड़े



जमा करें

पेशेवर प्रबन्धन विविधीकरण पारदर्शिता और सुरक्षा तरलता



लागत प्रभावी रिटर्न सुविनिमित कम जोखिम नकदीकरण

भारत में म्यूचुअल फण्ड

सर्वप्रथम, 1964 में Unit Trust of India की स्थापना फण्ड के रूप में हुई। 1987 में UTI ने Masters Shares स्कीम के द्वारा इस विचार का आगे फैलाया, तत्पश्चात SBI तथा Canara Bank ने अपने Mutual Fund स्थापित किए जो कि अन्य सरकारी कम्पनियों LIC तथा GIC को प्रेरणा स्रोत सिद्ध हुए और उन्होंने भी अपने-अपने फण्ड स्थापित किये। 1993 में निजी क्षेत्र में इस उद्योग में प्रवेश लिया।

भारत में म्यूचुअल फण्ड पर SEBI (Mutual Funds) Regulations, 1996 द्वारा नियमन किया जाता है। इसके कुछ प्रावधान निम्न तथ्यों से सम्बन्धित हैं—

1- Registration- स्थापना पूर्व Sponsors द्वारा SEBI के पास रजिस्ट्रेशन के लिए आवेदन करना आवश्यक है।

2- Trustee- योग्य निष्ठावान तथा ईमानदार



ट्रस्टी की नियुक्ति ds SEBI अनुमोदन से होती है।

3- Asset Management Company- फण्ड के कोष के प्रबन्ध के लिए AMC जिसकी न्यूनतम नेटवर्थ 10 करोड़ रुपये अवश्य होनी चाहिए।

4- Custodian- फण्ड की सम्पत्तियों की देखभाल में SEBI द्वारा अनुमानित Custodian सहयोग करना।

5- Schemes of Mutual Fund- फण्ड AMC के माध्यम से ट्रस्टी के अनुमोदन से किसी भी स्कीम का प्रारम्भ कर सकते हैं जिसका विवरण SEBI के पास स्वीकृति के लिए भेजना आवश्यक है। SEBI में 2004 में म्यूचुअल फण्ड के नियमन के सम्बन्ध में नए मार्गदर्शन नियम जारी किए हैं।

लाभ—

- ☛ ज्यादातर फण्ड लचीले, लिक्विड, स्पष्ट और सुरक्षित होते हैं।
- ☛ फण्ड आपको विविधता में मदद करते हैं।
- ☛ फण्ड जमा करने या निकास के खर्च को कम करते हैं।
- ☛ लाभांश पर आपको आयकर छूट का फायदा मिलता है।
- ☛ पेशेवर प्रबन्धन भी मौजूद रहता है।
- ☛ सुस्पष्ट निवेश के लक्ष्य।
- ☛ सामान्य पुनः निवेश का कार्यक्रम।

हानियाँ—

- ☛ कई फण्डों में भारी फीस रहती है जिससे समस्त रिटर्न कम हो जाते हैं।
- ☛ एक समय के बाद आँकड़े बताते हैं कि ज्यादातर सक्रिस प्रवर्धित फण्ड औसत रूप से अपने तय मानक से कमतर प्रदर्शन करते हैं।
- ☛ म्यूचुअल फण्ड को स्टॉक एक्सचेंज में नियमित ट्रेडिंग घण्टों के दौरान न तो खरीदा जा सकता है और न ही बेचा जा सकता है लेकिन इसके बदले एक दिन में एक ही बार इनका मूल्य तय होता है।
- ☛ कई बार फण्ड मैनेजर का रिकार्ड किसी खास फण्ड की सफलता या असफलता को सुनिश्चित करता है। मैसेंजर में बार—बार परिवर्तन से दोषपूर्ण मिश्रण के निवेशों के फैसेलों को रद्द करने की स्थिति हो सकती है।
- ☛ निवेशों का दोषपूर्ण मिश्रण फण्ड को नीचे की ओर ले जाने का प्रमुख कारण होता है।
- निम्नलिखित पैरामीटर पर आधारित फण्डों का

मूल्यांकन और चुनाव किया जा सकता है—

- ☛ एक समय के अंतराल पर परिसम्पत्ति के प्रबन्धन का बार दोहराव।
- ☛ फण्ड का श्रेणीकरण जो समय—समय पर परिवर्तित होता है।
- ☛ खर्च का अनुपात।
- ☛ एन.ए.वी. जो प्रतिदिन बाजार में होने वाले उतार—चढ़ाव के आधार पर बदलता है।
- ☛ जोखिम का निर्धारण (निवेश करने के समय)।
- ☛ रिटर्न की रेटिंग।
- ☛ निकास का भार।

निष्कर्ष —

वर्तमान समय में निवेश करने के उद्देश्य से म्यूचुअल फण्ड एक लोकप्रिय विकल्प है क्योंकि यह अधिक लचीलापन लिए हुए है। साथ ही इसमें तरलता भी विद्यमान है। म्यूचुअल फण्ड में निवेश का अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए आज पेशेवर प्रबन्धन की भी सहायता ले सकते हैं। यह विविधीकरण से भी परिपूर्ण है। सुविनियमित व्यवस्था के साथ जोखिम को भी कम करता है एवं लम्बे समय तक निवेश करने पर अत्यधिक रिटर्न भी प्रदान करता है।

म्यूचुअल फण्ड में निवेश किया हुआ धन भारत की विभिन्न कम्पनियों में लगता है जिसमें इन कम्पनियों की वृद्धि के साथ आज का भी विकास होता है। इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि निवेश करने के उद्देश्य से म्यूचुअल फण्ड एक सर्वश्रेष्ठ विकल्प है क्योंकि यह छोटी बचत को भी प्रोत्साहित करता है। साथ ही व्यक्तिगत वृद्धि के साथ देश के विकास में भी योगदान देता है।

सुझाव —

- ☛ म्यूचुअल फण्ड लम्बे समय से बेहतर रिटर्न प्रदान करता है। अतः निवेशकों से अनुरोध है कि धैर्य बनाये रखने का प्रयास हो।
- ☛ निवेश के लिए आप पेशेवर प्रबन्धन की सहायता ले सकते हैं और साथ ही कर बचत को प्रोत्साहित कर सकते हैं।
- ☛ निवेशकों को शिक्षित करने की आवश्यकता है ताकि वह इसका पूर्व लाभ ले सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वित्तीय बाजारों की कार्य प्रणाली — प्रो. वी. पी. अग्रवाल।
2. www.mutualfund.com।
3. समाचार पत्र, हिन्दुस्तान, दैनिक जागरण आदि।



महामानव, सरल और सौम्य स्वभाव व लोकतंत्र के महानायक पं. दीनदयाल उपाध्याय : व्यक्तित्व एवं कृतित्व



— प्रो. रमेश चन्द्र ओझा
प्रोफेसर — राजनीति विज्ञान विभाग,
कन्हैयालाल बसन्त लाल स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, मीरजापुर-231001
(उत्तर प्रदेश)

ई-मेल :
rameshchandraojha123@gmail
.com

महान देशभक्त, महामानव पं. दीनदयाल उपाध्याय नितान्त सरल और सौम्य स्वभाव की प्रतिमूर्ति थे। साहित्य और राजनीति में आपकी गहरी रुचि थी। दीनदयाल उपाध्याय भारतीय संस्कृति के अधिष्ठान पर ही राष्ट्रीय स्वातन्त्र को गढ़ना चाहते थे। अतः पाश्चात्य अवधारणाएं जो सामान्यतः सर्वसम्मत-सी मानी जाती हैं, दीनदयाल उनके अंधे अनुयायी बनने को तैयार नहीं थे। पाश्चात्य राज्य परिकल्पना, पाश्चात्य सेक्युलरिज्म, पाश्चात्य लोकतंत्र तथा पाश्चात्यों के विभिन्न वाद, इन सब पर दीनदयाल अपनी भारतीयवादी टिप्पणी करते हैं तथा वे इन सब परिकल्पनाओं के भारतीयकरण के हिमायती हैं। वे मानते थे कि लोकतंत्र भारत को पश्चिम की देन नहीं है भारत की राज्यावधारणा प्रकृतितः लोकतंत्रवादी है। वे लिखते हैं: वैदिक 'सभा' और 'समिति' का गठन जनतंत्रीय आधार पर ही होता था तथा मध्यकालीन अनेक राज्य पूर्णतः जनतंत्रीय थे। राजतंत्रीय व्यवस्था में भी हमने राजा को मर्यादाओं में जकड़ कर प्रजानुरागी ही नहीं, प्रजा (जन) अनुगामी भी माना है। इन मर्यादाओं का अतिक्रमण करने वाले नृपतियों के उदाहरण अवश्य मिल सकते हैं। किन्तु उनके विरुद्ध जनता का विद्रोह तथा उनको आदर्श शासक न मानकर, हीनता की श्रेणी में गिनने के प्रयत्नों से ही हमारी मौलिक जनतंत्रीय भावना की पुष्टि होती है।" दीनदयाल कहते हैं "लोकतंत्र की एक व्याख्या की गई है कि वह वाद-विवाद से चलने वाला राज्य है। 'वाद-वादे जायते तत्व बोधाः' कि यह हमारे यहां की पुरानी उक्ति है किन्तु ...यदि दूसरे दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न न करते हुए अपने ही दृष्टिकोण का आग्रह करते जाएं, तो वादे-वादे जायते कंठशोषाः' यह उक्ति चरितार्थ होगी। वाल्टेयर ने जब कहा कि 'मैं तुम्हारी बात सत्य नहीं मानता, किन्तु अपनी बात कहने के तुम्हारे अधिकार के लिए मैं पूरी शक्ति से लड़ूंगा'। तो उसने मनुष्य के केवल 'कंठशोषाः' को ही स्वीकार किया। भारतीय संस्कृति इससे आगे बढ़कर 'वाद-विवाद' को 'तत्वबोध' के साधन के रूप में देखती है।" पश्चिम में प्रजातंत्र के उदय की प्रक्रिया, उसके पूंजीवाद के रूप में विकृत हो जाने एवं कार्लमार्क्स की तानाशाही परक प्रतिक्रिया आदि का दीनदयाल जी ने संक्षिप्त विवेचन किया।

लोकतंत्र का भारतीयकरण—

दीनदयाल उपाध्याय लोकतंत्र की तात्विक अवधारणा से सहमत होते हुए भी, पाश्चात्य निरंकुश राजशाही की प्रतिक्रिया से उत्पन्न, पूंजीवाद पोषित व सर्वसत्तावादी राज्यवाद की प्रतिक्रिया उत्पन्न करने वाले लोकतंत्र को, भारतीयकृत करना चाहते हैं। लोकतंत्र का भारतीयकरण करने का उन्होंने आवाहन किया।



पश्चिम ने लोकतंत्र को निर्वाचन की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया प्रदान की है। संविधान, कार्यपालिका, विधायिका व न्यायपालिका का सृजन किया है, लेकिन यह केवल लोकतंत्र का औपचारिक स्वरूप है। लोकतंत्र की असली आत्मा उसके स्वरूप में नहीं, वरन जनाकांक्षा को सही रूप से प्रतिबिम्बित करने की भावना में है— “जनतंत्र किसी बाहरी ढांचे पर निर्भर नहीं रहता। बालिग मताधिकार तथा निर्वाचन पद्धति जनतंत्र के बहुत बड़े अंग हैं, किन्तु इनसे ही जनतंत्र की स्थापना नहीं हो जाती। रूस में दोनों ही विद्यमान हैं, किन्तु राजनीति विशारद इसे जनतंत्र मानने को तैयार नहीं। मताधिकार तथा निर्वाचन के साथ एक भावना भी जनतंत्र के लिए आवश्यक है। केवल बहुमत का शासन ही जनतंत्र नहीं है। ऐसे तंत्र में तो जनता का एक वर्ग सदैव ऐसा रहेगा जिसकी आवाज चाहे वह सही क्यों न हो दबा दी जायेगी। जनतंत्र का यह स्वरूप ‘सर्वजनसुखाय, सर्व जन हिताय’, नहीं हो सकता अतः भारतीय जनतंत्र की कल्पना में निर्वाचन, बहुमत, अल्पमत आदि बाहरी व्यवस्थाओं के स्थान पर सभी मतों के सामंजस्य और समन्वय पर ही बल दिया गया है। विरुद्ध मत रखने वाला एक व्यक्ति ही क्यों न हो, हमें उसके मत का आदर ही नहीं, बल्कि उसका योग्य समावेश अपनी कार्यपद्धति में करना चाहिए। इंग्लैंड में, जहाँ आज की जनतंत्रीय पद्धति ने सर्वाधिक सफलता प्राप्त की है, विरोधी दल के नेता को सरकारी खजाने से वेतन दिया जाता है। खेल के लिए जैसे दो दलों का होना आवश्यक है, वैसे ही संसद में दो दलों का होना आवश्यक समझा जाता है। शासन की नीतियों पर विरोधी दल सतत् प्रकाश डालता रहता है।”

लोकमत परिष्कार एवं सामान्य इच्छा—

उपाध्याय मानते हैं कि लोकमत का तात्कालिक निर्णय चाहे बहुमत से हो, लेकिन लोकमत केवल बहुमत के शासन व अल्पमतों के वैचारिक स्वतंत्रता से अपने को ठीक प्रकार से अभिव्यक्त नहीं कर पाता। इससे दलीय कटुता एवं समाज में अखण्ड कलह का निर्माण होता है, अतः लोकतंत्र न बहुमत का शासन है, न अल्पमत का, वह जनता की ‘सामान्य इच्छा’ का शासन है। जनता अपनी सामान्य इच्छा को औपचारिक रूप से अभिव्यक्त नहीं कर पाती। जब ‘सामान्य इच्छा’ के बारे में सामाजिक सम्भ्रम हो तो ‘लोकतंत्र’ भीड़तंत्र में बदल जाता है।

वाचाल लोग उसका दुरुपयोग कर सकते हैं। उपाध्याय ने शेक्सपियर के नाटक ‘जुलियस सीजर’ का

उदाहरण देते हुए कहा है— “जो जनता ब्रूटस के साथ होकर जुलियस सीजर के वध पर हर्ष मना रही थी, वही थोड़ी देर में एंटोनियो के भाषण के उपरान्त ब्रूटस का वध करने को उद्यत हो गयी। मोबोक्रेसी और ऑटोक्रेसी के दोनों पाटों के बीच से डेमोक्रेसी को जीवित रखना एक कठिन समस्या है।” अतः लोक चेतना के संतुलित विकास की आवश्यकता रहती है। इसी को उपाध्याय प्राचीन भारत की ‘लोकमत-परिष्कार’ पद्धति कहते हैं लोकमत – परिष्कार एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है। जहाँ साम्यवादी तानाशाही देशों में सत्ता द्वारा ‘ब्रेन वाशिंग’ अथवा ‘असहमतों के नागरिक अधिकारों से वंचन’ की अपनायी गयी प्रक्रिया अमानवीय है, वहीं तथाकथित लोकतंत्र में इस विषय में या तो अराजकता है या सरकारी प्रचारतंत्र को उसका माध्यम बनाया जाता है।

दीनदयाल के मतानुसार – “भारत ने इस समस्या का समाधान राज्य के हाथ से लोकमत निर्माण के साधन छीन कर किया है। लोकमत-परिष्कार का कार्य है वितराग द्वन्द्वातीत सन्यासियों का है। लोकमत के अनुरूप चलने का काम है, राज्य का। सन्यासी सदैव धर्म तत्वों के अनुसार जनता के ऐहिक एवं अध्यात्मिक उत्कर्ष की कामना लेकर अपने धर्म की मर्यादाओं का ज्ञान करवाते रहते हैं। उनके समक्ष कोई लोभ और मोह न होने के कारण से सत्य का उच्चारण सहज ही कर सकते हैं। शिक्षा और संस्कार से ही समाज के जीवन मूल्य बनते और सुदृढ़ होते हैं। इन मूल्यों का बांध बनाने के बाद, लोकेच्छा की नदी कभी अपने तटों का अतिक्रमण करके संकट का कारण नहीं बनेगी।” उपाध्याय का ‘लोकमत – परिष्कार’ विचार वैसा ही है जैसा कि लोकतंत्रात्मक जनचेतना के निर्माण के लिए कुछ लोगों ने पश्चिम में ‘वी एजूकेट आवर मास्टर्स’ का आन्दोलन चलाया था। लोकतंत्र की सफलता के लिए जिन मनोभावों की विवेचना उपाध्याय प्रस्तुत करते हैं उनमें मुख्य हैं—

1. सहिष्णुता और संयम, 2. अनाशक्त भाव तथा 3. कानून के प्रति आदर की भावना। इन मनोभावों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करते हुए, लोकमत परिष्कार के माध्यम से इनका समाज में संचार हो, इसके लिए उन्होंने कार्यकर्ताओं का आह्वान किया।

दीनदयाल जी केवल अकादमिक विद्वान या दार्शनिक ही नहीं थे, वरन् प्रत्यक्ष राजनीतिक क्षेत्र के कार्यकर्ता भी थे। निर्वाचन प्रक्रिया सत्ता स्पर्धा का हथियार नहीं, वरन् सामाजिक सहभागिता का माध्यम है। उसको



इसी माध्यम के नाते इस्तेमाल करने के लिए उन्होंने अच्छा उम्मीदवार, अच्छा दल तथा अच्छा मतदाता कैसा होना चाहिए— इस पर भी निर्वाचन काल में ही अपने विचार प्रकट किए हैं। जो उनकी राजनेता नहीं वरन् राजनीतिज्ञ की छवि प्रस्तुत करते हैं।

अच्छा उम्मीदवार —

उपाध्याय के मतानुसार— “एक समुचित उम्मीदवार वह है जो विधानमंडलों में अपने दल के दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करने के साथ ही अपने क्षेत्र के मतदाताओं की नब्ज को पहचानता है। एक व्यक्ति के नाते उसे अपने मतदाताओं के प्रति वफादार होना चाहिए और एक दल का सदस्य होने के नाते, जिस दृष्टिकोण का यह प्रतिनिधित्व करता है, उस दल के अनुशासन का पालन करने के साथ उसके उद्देश्य की पूर्ति के लिए मन में समर्पण का भाव भी रखना चाहिए।”

दल व जन के प्रति समन्वित निष्ठा अच्छे उम्मीदवार की कसौटी है, लेकिन वर्तमान भारतीय दलों द्वारा चयन की कसौटी पर अपना असंतोष प्रकट करते हुए वे कहते हैं कि उन्हें अच्छे उम्मीदवार के बजाय जीतने वाले घोड़े की चिन्ता रहती है। “दुर्भाग्यवश यह कहना पड़ता है कि भारत में शायद ही कोई राजनैतिक दल इन सब बातों की चिन्ता करता हो, और इस कारण उनके मस्तिष्क में केवल यही बात चक्कर काटा करती है कि किसी भी रीति से उसका प्रत्याशी विजयी होना चाहिए। वह किसी भी ऐसे उम्मीदवार को अपने टिकट से खड़ा करने का प्रयास करते हैं जिसमें जीत के लक्षण अधिक प्रतीत होते हों।” इसलिए दीनदयाल मतदाताओं को सावधान करते हैं— “हमें स्मरण रखना होगा कि एक अयोग्य उम्मीदवार इस आधार पर हमारा मत प्राप्त करने का अधिकार नहीं है क्योंकि उसका सम्बन्ध एक अच्छे दल से है। यह संभावना है कि ऐसे अयोग्य व्यक्ति को अपना टिकट प्रदान करते समय उस दल ने संस्था के लाभ से प्रभावित होकर ऐसा निर्णय लिया हो या ऐसी मंशा न होने के बाद भी उससे निर्णय की भूल हुयी हो। अतः उत्तरदायी मतदाता का अब यह कार्य हो जाता है कि वह अपनी जागरुकता का परिचय देकर उक्त गलती हो दुरुस्त कर दे।”

अच्छा दल —

लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनैतिक दलों की बहुत निर्णायक भूमिका होती है। कोई समाज कितना लोकतांत्रिक है, यह उसके दलों के चरित्र देखकर जाना जा सकता है। उपाध्याय के अनुसार श्रेष्ठ दल के लक्षण हैं:

“जो सत्ता पर अधिकार प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्तियों का झुण्ड न होकर एक जीवमान संगठन हो, जिसका सत्ता प्राप्त करने के अतिरिक्त अपना अलग वैशिष्ट्य हो।

ऐसे दल की दृष्टि में सत्ता पर अधिकार करना उद्देश्य न होकर, अपने सिद्धांतों एवं कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने का एक साधन होगा। इसलिए उस दल के सर्वोच्च पदाधिकारियों से लेकर साधारण — से — साधारण सदस्य तक में अपने इस आदर्शवाद के प्रति एक निष्ठा होगी। हमें स्मरण रखना चाहिए कि यह निष्ठा ही अनुशासन और आत्मसमर्पण की भावना उत्पन्न करती है। यदि अनुशासन ऊपर से थोपा जाता है तो वह किसी भी दल के आन्तरिक शक्तिहीनता को ही प्रकट करता है।”

दीनदयाल उपाध्याय दुखपूर्वक प्रतिपादित करते हैं कि भारत के राजनैतिक दल केवल नाम के लिए ही दल है। दलों के आंतरिक शक्तिहीनता उन्हें समाज के अवांछनीय शक्तियों का अवलम्ब ग्रहण करने को मजबूर करती है। उपाध्याय मुख्यतः मजबूरियों का उल्लेख करते हैं— 1. राजा—महाराजा, 2. जातिवाद तथा 3. उद्योगपति।

राजा महाराजा —

“भारत के राजनैतिक दल अभी अपनी गहरी जड़ें जनता में जमा नहीं कसे हैं। राजनैतिक दलों को विभिन्न राजनैतिक कार्यक्रम को एक ओर रखकर चुनाव के लिए सिद्ध होना पड़ता है यही कारण है कि आज भी पुराने राजे—महाराजाओं, नवाबों और जागीरदारों को अपने—अपने दल में घसीटने का प्रयत्न किया जाता है। हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि इस पुराने वर्ग को भी देश के राजनैतिक क्षेत्र में सक्रिय बनाना चाहिये परन्तु उनको टिकट देने का आधार तो राजवंश में उनका जन्म न होकर, उनकी योग्यता ही होनी चाहिए।”

जातिवाद—

जाति और सम्प्रदाय का विचार भी प्रत्याशियों के चयन को बुरी तरह प्रभावित करते हैं। भारत में प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी जाति का अंग है। अतः दूसरे लोगों पर जातीयता एवं संकीर्णता का आरोप लगाने से अनजाने में ही देश में इस भावना को अप्रत्यक्ष रीति से और अधिक बल मिलता है। यदि परिस्थिति यहाँ तक बिगड़ती है कि डॉ. राम मनोहर लोहिया जैसे व्यक्ति को चुनाव मैदान से इसलिए हटाना पड़े कि वे उक्त निर्वाचन क्षेत्र में निवास करने वाले मतदाताओं ही बहुसंख्य जाति के नहीं हैं तो यह एक गंभीर बात होगी, परन्तु इसके निराकरण का उपाय तो यही है कि दल से संगठन को दृढ़ बनाया जाए न कि जाति



के आधार पर मतदाताओं से अपील की जाये।”

उद्योगपति—

प्रत्याशियों का चयन करने में प्रत्याशी की आर्थिक स्थिति और निर्वाचन में धन व्यय करने की क्षमता, दूसरा प्रमुख आधार रहा करता है, जो इसे प्रभावित करता है। बहुत से व्यक्तियों को टिकट प्रदान करने का कारण उनके धन व्यय करने की क्षमता ही रहा करती है। वास्तव में वे जनता और राजनैतिक दलों से उनके मत और टिकट प्राप्त करने नहीं आते वरन् उन्हें खरीदने आते हैं। संसद की सदस्यता तो उनके लिए अपनी चर्बी बढ़ाने एवं अधिक मोटा होने के कारण व्यापार है। कांग्रेस सहित सभी राजनैतिक दल धनाभाव से इतने परेशान हैं कि वे अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए इनका सहयोग प्राप्त करने को आतुर रहते हैं।

अच्छे मतदाता —

उपाध्याय की यह आस्था है कि मतदाताओं की बुद्धिमत्ता ही इसका इलाज है— “यह सब ऐसे तथ्य हैं कि जो देश की राजनीति को गलत दिशा में ले जा रहे हैं।” राजनैतिक दलों को, जो देश की राजनीति में प्रमुख दल के रूप में विकसित होना चाहते हैं, इन खतरों से सचेत रहकर अपने सिद्धांत की हत्या नहीं करनी चाहिए। इसी भांति जनता का यह कर्तव्य है कि वह जागरुक रहकर बुद्धिमत्ता के साथ हंस के समान अपने नीर-क्षीर-विवेक का परिचय दे जिससे बुद्धिमत्ता के साथ देश के राजनैतिक दलों के गलत दृष्टिकोण को सुधारा जा सके।” इस हेतु उपाध्याय मतदाता को निम्न बातें स्मरण रखने का आग्रह करते हैं —

1. “अपने मताधिकार का प्रयोग पार्टी के लिए न कर सिद्धांत के लिए, व्यक्ति के लिए न कर पार्टी के लिए और धन के लिए न कर व्यक्ति के लिए (करना) है।

2. “प्रचार के शिकार होकर किसी भी व्यक्ति को केवल इस आधार पर ही अपना मत दे आते हैं कि वह विजयी होने वाला है तो चुनाव परिणाम कुछ भी हो, वह आपकी हार ही कही जायेगी।”

3. “मतदान का अधिकार आपके सद्विचार और आपके सद्विवेक की कसौटी है अतः उस ओर से उदासीन न हों, उसे बेचें नहीं और न उसे नष्ट होने दें।”

4. “मतदान का अधिकार प्रत्येक नागरिक की स्वाधीनता का प्रतीक है और इस कारण एक लोकतंत्रवादी होने से आपको इसका उपयोग किसी के निर्देश पर न कर, स्वयं के सद्विवेक एवं आत्मा की पुकार पर करना चाहिए।”

5. “जनता को पुनः-पुनः यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि वह ही राजनीति दलों की निर्माता है।”

दीनदयाल उपाध्याय एक राजनीतिक दल के महामंत्री थे, लेकिन उनके उपर्युक्त विचार, दलवाद से ऊपर उठकर एक लोकतंत्रवादी के नाते व्यक्त किए गए विचार हैं। भारत का बहुलतावादी चरित्र अपनी राष्ट्रीय एकता को तभी बनाए रख सकता है, जब देश में लोकतंत्र रहे। उनके राष्ट्रवाद ने ही उन्हें प्रखर लोकतंत्रवादी बनाया था।

दीनदयाल उपाध्याय का लोकतंत्र विषयक विचार लोकतंत्र की पाश्चात्य व भारतीय अवधारणा से प्रारम्भ होकर उसके भारतीयकरण अर्थात् ‘लोकमत-परिष्कार’ की विवेचना करते हुए भारतीय लोकतंत्र के विश्लेषण के साथ पूर्ण होता है। उपाध्याय का चिंतन आदर्शवादी है। वे अपने विचारों में समाज शास्त्रीय व मनोवैज्ञानिक तत्त्वों से ज्यादा नीतिशास्त्र से प्रभावित हैं। किसी दल को नीतिशास्त्रीय नेता उपलब्ध होना बड़े सौभाग्य की बात होती है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जो आदर्श का आचरण करता है ‘नीतिशास्त्र’ की महत्ता को भी सिद्ध कर पाता है। समझौतावादी लोग आदर्श व नीति को तात्कालिक परिणामों के भय से त्याग देते हैं। उनके व्यवहार नीति के नाम पर अवसरवाद पनपता है। जिस ‘अवसरवाद’ के बारे में दीनदयाल उपाध्याय ने चेताया था, उसका जब भयानक दौर भारत में प्रारम्भ हुआ, उसी दौर में उनकी हत्या हो गयी, भारतीय लोकतंत्र की वह बड़ी क्षति थी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. राष्ट्र चिन्तन — पं. दीनदयाल उपाध्याय।
2. भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा — पं. दीनदयाल उपाध्याय।
3. भारतीयता का संचारक : पं. दीनदयाल उपाध्याय, संजय द्विवेदी।
4. पं. दीनदयाल उपाध्याय — स्वदेश व स्वधर्म तथा परम्परा व संस्कृति, अशोक बजाज।
5. पं. दीनदयाल उपाध्याय प्रशिक्षक महाभियान — 2015।
6. प्रारूपों की पुस्तिका मंडल वर्ग — पं. दीनदयाल उपाध्याय प्रशिक्षण महाभियान — 2015।



आचार्य नरेन्द्रदेव का देश की उच्च शिक्षा में

योगदान : एक अध्ययन

(उत्तर प्रदेश के विशेष संदर्भ में सन् 1921 से 1950 तक)

सारांश



— डॉ. सीमा शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर—बी. एड. विभाग,
दयानन्द महिला प्रशिक्षण सेन्टर,
कानपुर—208001 (उत्तर प्रदेश)

ई-मेल :
rohitsharma69@gmail.com

आचार्य जी ने अद्भुत रूप से शिक्षा और राजनीति में समन्वय किया। उनके राजनैतिक विश्वास में कभी भी विश्वविद्यालय के कार्य में दखल नहीं किया और न ही उन्होंने राजनैतिक आधार पर किसी के साथ पक्षपात किया। बड़े से बड़े राजनैतिक दबावों के सामने वे नहीं झुके। आचार्य जी के एक घनिष्ठ सहयोगी का मत है कि 'शिक्षा के समय शिक्षा और राजनीति के समय राजनीति - यह भेद अपने सर्वतोमुखी प्रतिभा से आचार्य नरेन्द्रदेव ने ही निबाहा। इस दो धार की तलवार पर चलना ऐरे-गैरे का काम नहीं था।

भारतवर्ष के दो नवयुवकों ने एक ही प्रदेश (उत्तर प्रदेश) में एक ही वर्ष (1889) के अन्तर (नरेन्द्रदेव - 31 अक्टूबर, 1889 तथा जवाहर लाल नेहरू 14 नवम्बर, 1889) में जन्म लिया था। लगभग एक ही साथ राजनीति में 1921 में प्रवेश किया था। दोनों महान विभूतियों ने लगभग 20 वर्ष तक एक ही मंच से देश की सेवा की तथा लगभग 5 वर्ष एक आचार्य नरेन्द्रदेव के लिए सच्चे अर्थों में जीवन में बदलाव का समय था, वे इस वर्ष से विधि व्यवसाय छोड़कर असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित होकर सक्रिय रूप से राजनीति में तल्लीन हो गये थे। असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित होने पर भी वे मरमदलीय नेतृत्व से प्रभावित थे। अरविन्द घोष के राजनीतिक विचार उनके लिए राजनीतिक जीवन के मूल आधार थे। इस समग्र परिवेश का प्रभाव उनके विचारों पर पड़ा व जब वे उच्च शिक्षा के क्षेत्र से सम्बन्धित कार्य करने लगे, वह भी यह प्रभाव दिखाई दिया।

अवध के आन्दोलन के पश्चात् किसानों को विजय मिली व आचार्य की लोकप्रियता बढ़ गयी। दीक्षित जगदीश चन्द्र के शब्दानुसार - 'सन् 1926 में 'आज' समाचार पत्र के प्रवर्तक तथा काशी विद्यापीठ के संस्थापक बाबू शिव प्रसाद गुप्त जब प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के काशीपुर (नैनीताल) में हुए राजनीतिक सम्मेलन के अध्यक्ष बने तभी प्रदेश कांग्रेस का कार्यालय इलाहाबाद से चलकर काशी विद्यापीठ पहुँच गया। इस प्रकार राष्ट्रीय सम्मेलन का कुआँ स्वतः राष्ट्रीय चेतना के प्यासे नरेन्द्र देव के पास जा पहुँचा।' इसी बीच एक और आचार्य जी मार्क्सवादी दर्शन के अध्ययन में प्रवृत्त हुए तो दूसरी ओर उन्होंने 'इण्डेपेन्डेन्स ऑफ इण्डिया लीग' का संचालन कार्य भी संभाला। सन् 1926 में उस समय के उस चौराहे पर ले जाकर खड़ा किया जहाँ से उन्हें शिक्षा तथा शिक्षण के अतिरिक्त राजनीति की ओर ले जाने वाला मार्ग दिखाई पड़ा।

सन् 1926 में भगवानदास के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र देने पर वह



विद्यापीठ के अध्यक्ष बने। परन्तु इससे उनकी राजनीति की रुचि में कोई अन्तर नहीं आया। उनकी गतिविधियाँ अधिकतर यहीं से संचालित हुईं। प्रोफेसर मुकुट बिहारी लाल ने अपनी पुस्तक (युग एवं नेतृत्व) में स्पष्ट किया है कि लगभग दस वर्ष तक वहीं रहकर वह राजनीति का कार्य और पठन-पाठन करते रहे तथा मुख्यतः विद्यापीठ के जरिये ही राष्ट्र की सेवा करते रहे। विद्यापीठ में ही नरेन्द्र जी आचार्य बने और राजनीतिज्ञ की क्षमता प्राप्त की। काशी विद्यापीठ में विद्यार्थियों ने भी उनके क्रान्तिकारी स्वरूप को पहचाना था। स्वतंत्रता संघर्षों पर व्याख्यान देते समय वह राष्ट्रीय भावनाओं को ऐसे अनुप्राणित हो जाते और उनकी वाणी में ऐसा चमत्कार पैदा हो जाता था जिससे उनके श्रोताओं को ज्ञान के साथ-साथ राष्ट्रकी सेवा की सद्प्रेरणा भी प्राप्त होती थी।

काशी विद्यापीठ में विद्यार्थियों ने भी उनके क्रान्तिकारी स्वरूप को पहचाना था। जब वह भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन की चर्चा करते, देश की बलिवेदी पर पतंगों की भाँति बलिदान हो जाने वाले साहसी और आत्मत्यागी क्रान्तिकारी नवयुवकों के त्याग और बलिदान को बताते, तब उनके विद्यार्थी ऐसा अनुभव करते कि मानों एक सक्रिय क्रान्तिकारी ही उनके सामने बोल रहा है।

आचार्य जी के मार्गदर्शन के कारण ही काशी विद्यापीठ का सहयोग समय-समय पर राष्ट्र को प्राप्त होता रहा। प्रोफेसर मुकुट बिहारी लाल जी कहते हैं कि आचार्य वीरबलसिंह जी ने अपने एक लेख में ठीक ही लिखा है कि काशी विद्यापीठ के अध्यापकों एवं विद्यार्थियों ने सन् 1921 से लेकर सन् 1942 के स्वतंत्रता संग्रामों में जो गौरवपूर्ण कार्य किया और ख्याति प्राप्त की, उसका अधिकतर श्रेय नरेन्द्रदेव जी को है। नरेन्द्रदेव जी काशी विद्यापीठ से ही कांग्रेस के अधिवेशनों तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में शामिल होते रहे।

सन् 1926 में काशी विद्यापीठ के दीक्षान्त समारोह में गाँधी जी से उनका प्रथम बार सम्पर्क हुआ तथा गाँधी जी ने नरेन्द्रदेव जी की प्रतिभा को पहचान लिया था और कहा कि यह तो नगर रत्न हैं, जिन्हें पहले ही जान लेना चाहिए था। नरेन्द्र देव जी विद्यापीठ के प्रतिनिधि के रूप में प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य थे परन्तु उनकी रुचि उस समय अत्यधिक बढ़ गयी जब सन् 1926 में प्रान्तीय कांग्रेस का कार्यालय प्रयाग से काशी बना दिया गया।

25 सितम्बर, 1926 को विद्यापीठ में दीक्षान्त समारोह में उपस्थित गाँधी जी और नरेन्द्रदेव जी एक दूसरे को बहुत निकट से देखने तथा परखने का अवसर मिला था। जहाँ गाँधी जी ने नरेन्द्र देव में आचार्यत्व के दुर्लभ गुणों के साथ

राष्ट्रीय भावना से अभिसिक्त एक समाजवादी चिन्तक के मसीहा का पावन रूप देखा। वहीं पर आचार्य जी ने गाँधी जी के व्यक्तित्व में एक महामानव की छवि का दर्शन किया, किन्तु उपस्थित जन समूह ने एक को दूसरे का पूरक ही बताया। पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति के लक्ष्य की क्रान्तिकारी उद्घोषणा के बाद भारत का जन मानस स्वतंत्रता संग्राम में अपनी आहुति देने को व्यग्र हो उठा।

काशी विद्यापीठ से सम्बन्ध -

असहयोग आन्दोलन में गाँधी जी ने सरकारी शिक्षण संस्थाओं के बहिष्कार का नारा दिया। छात्रों को शिक्षा देने के लिए देश के विभिन्न भागों में राष्ट्रीय शिक्षण संस्थायें खोली गयीं। बनारस में काशी विद्यापीठ की स्थापना की गयी। पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने नरेन्द्र देव को विद्यापीठ जाने की सलाह दी। 1921 में वे विद्यापीठ गये। जुलाई 1921 में विद्यापीठ के अध्यक्ष डॉ. भगवानदास ने उन्हें विद्यापीठ का उपाध्यक्ष बना दिया। विद्यापीठ में छात्रों में इतने लोकप्रिय हुए कि छात्रों ने उन्हें आचार्य कहना शुरू कर दिया और इसके बाद जीवन भर वे 'आचार्य' कहलाये।

विद्यापीठ में वे छात्रों के साथ रहते थे और उनके साथ-साथ राजनीतिक कार्य करते थे। करांची में जब अली-बन्धुओं को सजा हुई तो इसके विरोध में प्रचार के लिए छात्रों के साथ-साथ वे बनारस के गाँवों में घूमे। 1926 में जब डॉक्टर भगवानदास ने विद्यापीठ के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दिया तो आचार्य जी उनके स्थान पर अध्यक्ष नियुक्त हुए।

विद्यापीठ में रहकर आचार्य जी ने ऐसे छात्रों का निर्माण किया जिन्होंने आगे चलकर राष्ट्रीय आन्दोलन एवं देश के राजनीतिक जीवन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। संयुक्त प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन के उन्नीसवें अधिवेशन (बरेली) में अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए उन्होंने कहा 'जो विद्यार्थी इस (काशी विद्यापीठ) शिक्षा संस्था से निकले हैं उनमें से अधिकांश राष्ट्रीय कार्य में लगे हैं और उन्होंने स्वतंत्रता के युद्ध में उचित भाग लेकर विद्यापीठ का गौरव बढ़ाया है और देश की कीर्ति को उज्वल किया है। उनकी शिक्षा-दीक्षा और उनके विद्या तथा आचरण से सम्पन्न करने में मेरा भी हाथ रहा है और उसका मुझे गर्व है।'

विद्यापीठ से उनका इतना लगाव था और शिक्षा के प्रति उनका प्रेम इतना गहन था कि अध्यापकीय जीवन को ही उन्होंने अपने जीवन का सर्वश्रेष्ठ समय बताया। उनके शब्दों में- 'मैं समझता हूँ कि जीवन की अन्तिम घड़ियों में मैं जब अपने काम का हिसाब लगाऊँगा तो मुझे अपने जीवन का वह भाग जो विद्यापीठ की सेवा में व्यतीत हुआ है, सबसे अधिक



संतोषप्रद प्रतीत होगा। यही मेरी पूँजी है और इसी पूँजी के बल पर मेरा राजनैतिक व्यापार चलता है। विद्यापीठ से उनका इतना भावनात्मक लगाव था कि पिताजी की मृत्यु के बाद जब वे पारिवारिक सम्पत्ति की देखभाल के लिए फैजाबाद वापस आये तो उनका मन यहाँ पर नहीं लगा और थोड़े दिन बाद ही वे विद्यापीठ वापस लौट गये।

आचार्य जी की सहभागिता गोलमेज सम्मेलन में विद्यापीठ पत्रिका से रही। सन् 1930 में गोलमेज सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसका उद्देश्य रियासतों और प्रान्तों दोनों को शामिल करके एक अखिल भारतीय संघ बनाया जाना था, परन्तु इसके साथ ही साथ भारतीय जनता के हितों के कुछ ऐसे सवाल भी थे, जिनका कोई उत्तर न मिल सका। सम्मेलन में कांग्रेस का कोई भी प्रतिनिधि उपस्थित नहीं था। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री मैकडोनाल्ड के आग्रह पर गाँधी जी ने इसका प्रतिनिधित्व किया। इस अधिवेशन में एक मौलिक अधिकार समिति गठित हुई जिसकी रिपोर्ट पर मौलिक अधिकारों की महत्वपूर्ण योजना स्वीकार हुई। आचार्य जी ने विद्यापीठ की पत्रिका में टिप्पणी करते हुए कहा कि 'भविष्य के सम्बन्ध में सूचना और मन्तव्यों को प्रकट करना अत्यन्त आवश्यक है जिसमें लोगों को यह ज्ञात हो जाये कि नवीन पद्धति में उनका क्या स्थान होगा।'

महात्मा गाँधी जी ने असहयोग आन्दोलन का शंखनाद किया, उनके आह्वान पर पहली कतार में खड़े होने वाले राष्ट्रकर्मी आचार्य नरेन्द्रदेव थे। वकालत छोड़कर वह सक्रिय राजनीति क्षेत्र में आये और काशी विद्यापीठ के आचार्य पद को सुशोभित करते हुए भी आन्दोलन को कभी भी नहीं भूले और अपने सहयोगियों और शिष्यों को भी भूलने नहीं दिया। काशी विद्यापीठ सिर्फ विद्यापीठ नहीं था, वहाँ ज्ञान के साथ-साथ कर्म का पाठ भी पढ़ाया जाता था और वहाँ के शिक्षकों और छात्रों ने देश की स्वतंत्रता के युद्ध में वह शानदार हिस्सा लिया कि अपने नामों के साथ उन्होंने अपनी संस्था को भी अमर कर दिया है। आचार्य जी की अनुपम साधना की यह सबसे बड़ी विजय थी।

4 जनवरी, 1932 में गाँधी जी को गिरफ्तार किया जाना, सविनय अवज्ञा आन्दोलन का छिड़ जाना उपयोगी सिद्ध हुआ। इस समय ब्रिटिश सरकार के सामने कांग्रेस एक बमुश्किल कठिनाई साबित हो रही थी। उसने कांग्रेस कमेटी को गैरकानूनी घोषित कर दिया। ब्रिटिश सरकार की नजर में काशी विद्यापीठ स्वतंत्रता संग्राम का केन्द्र नजर आने लगा। इसलिए काशी विद्यापीठ को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया। 2 वर्ष 6 माह तक विद्यापीठ पुलिस के अधिकार में

रहा। पठन-पाठन का कार्य पुनः 1934 में प्रारम्भ हो सका। दूसरे सविनय अवज्ञा आन्दोलन में विद्यापीठ के अध्यापकों, प्रबन्धकों, स्नातकों और विद्यार्थियों ने पहले से भी कहीं अधिक तत्परता से काम किया।

निःसन्देह समाजवादियों का यह सम्मेलन भारत के स्वतंत्रता संघर्ष की एक महत्वपूर्ण घटना थी। नरेन्द्र देव जी के राजनैतिक जीवन में यह वैसे ही महत्वपूर्ण घटना थी। इसके बाद ही वे अखिल भारतीय नेता, विचारक, शिक्षाविद् और प्रखर वक्ता के रूप में सामने आये।

जुलाई, 1934 में काशी विद्यापीठ पुनः खुल गया, वहाँ नियमित पढ़ाई का क्रम शुरू हुआ। विद्यापीठ में अध्यापक और प्रशासक के रूप में आचार्य नरेन्द्र देव जी के जो दायित्व थे, उनका निर्वाह करते हुए हुए उन्हें देश की राजनीति में सक्रिय भाग लेना था। कांग्रेस के नये समाजवादी दल को अखिल भारतीय स्तर पर संगठित करने का मुख्य भार श्री जय प्रकाश नारायण और अन्य लोगों पर था। परन्तु समाजवाद के सैद्धान्तिक पक्ष और समाजवाद की कार्यपद्धति का भारत की तत्कालीन परिस्थितियों से मेल बैठाने का काम जितने कौशल के साथ आचार्य नरेन्द्रदेव जी ने किया वह भारतीय समाजवाद को उनका विशेष योगदान था।

आचार्य जी का जीवन राष्ट्र के लिए समर्पित था। उन्होंने जहाँ स्वतंत्रता आन्दोलन में बढ़-चढ़कर भाग लिया वहीं दूसरों को भी इसके लिए प्रेरित किया। वह युवाशक्ति और शिक्षा का सदुपयोग रचनात्मक कार्यों के लिए करना चाहते थे। इसलिए हमारी स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान उनके समय में काशी विद्यापीठ राजनैतिक आन्दोलनों का एक केन्द्र बन गया था। इसकी राजनीतिक गतिविधियाँ इतनी बढ़ती जा रही थीं कि सन् 1932 में इस संस्था को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। इससे पहले सन् 1930 में नमक सत्याग्रह का संचालन उन्होंने काशी विद्यापीठ से ही किया था। बाद में सन् 1932 में गाँधी जी के आमरण अनशन के बाद जब फरवरी में सत्याग्रह शुरू हुआ, तब नरेन्द्रदेव जी स्वयं संयुक्त प्रान्त के डिक्टेटर की हैसियत से काम करने लगे और जेल गये।

आचार्य जी का एक बहुत बड़ा योगदान यह लगता है कि उन्होंने हमारी आजादी की लड़ाई को एक बौद्धिक आधार दिया तथा उसके संगठन को व्यापक बनाया। हमारे संविधान में जो समाजवादी समाज की स्थापना की बात कही गयी है, उसका बहुत बड़ा श्रेय नरेन्द्रदेव जी के समाजवाद सम्बन्धी चिन्तन को है। वे समाजवाद के बहुत बड़ा व्याख्याता थे और मौलिक व्याख्याता थे। श्री जय प्रकाश नारायण जी ने चौदह मार्च सन् 1969 को एक पुस्तक की भूमिका में लिखा था कि



आचार्य नरेन्द्र देव राजनीतिक नेता, इतिहास और दर्शन के महान पण्डित तो थे ही और साथ ही साथ समाजवाद के प्रकाण्ड विद्वान थे। वे निःसन्देह विश्वव्यापी समाजवाद के एक बड़े नेता और विचारक थे।

लखनऊ एवं बनारस विश्वविद्यालय के उपकुलपति के रूप में भूमिका -

आचार्य जी एक घनिष्ठ सहयोगी दामोदर स्वरूप सेठ का मत था कि आचार्य जी के मस्तिष्क का झुकाव अध्ययन-अध्यापन की ओर था, इसलिए असहयोग आन्दोलन में वकालत छोड़ने के बाद वे 1921 में काशी विद्यापीठ गये जहाँ पर कि दस वर्षों तक वे अध्यापन कार्य करते रहे। अध्यापन के माध्यम से उन्होंने विद्यार्थियों में देशप्रेम और देश सेवा के पवित्र भाव पैदा किये। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके कार्यकाल में, विद्यापीठ सच्चे अर्थों में राष्ट्रीयता का एक मुख्य केन्द्र बन गया। विद्यापीठ में बिताये गये समय के बारे में उन्होंने अपने संस्मरण में लिखा है - 'अपनी जिन्दगी पर एक निगाह डालने से मालूम होता है कि जब मेरी आँखें मुंदेगी मुझे यह परितोष होगा कि जो काम मैंने विद्यापीठ में किया है, वह स्थायी है। मैं कहा करता हूँ कि यह मेरी पूंजी है और इसी के आधार पर मेरा राजनीतिक कारोबार चलता है, यह सर्वथा सत्य है।'

स्वतन्त्रता के पश्चात् जब वे कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में थे, पार्टी के नीति के अनुसार उन्होंने कोई भी राजनैतिक पद ग्रहण नहीं किया। परन्तु जब 1947 में स्वतन्त्रता के पश्चात् उन्हें लखनऊ विश्वविद्यालय के उपकुलपति का कार्यभार सौंपा गया तो उन्होंने संघर्ष स्वीकार कर लिया। मार्च 1948 में जब कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने नासिक सम्मेलन में कांग्रेस से अलग होकर सोशलिस्ट पार्टी के गठन का निर्णय लिया तो बहुत व्यस्त रहने के बावजूद आचार्य जी ने उपकुलपति के पद को नहीं छोड़ा। यह शिक्षा के प्रति उनकी अभिरुचि का सबसे बड़ा प्रमाण है। उनके उपकुलपतित्व काल में समस्याओं से घिरे लखनऊ विश्वविद्यालय को एक नयी गति एवं दिशा मिली, अनुशासनहीनता की चन्द छोटी मोटी घटनाओं के अलावा उनके पूरा कार्यकाल विश्वविद्यालय के लिए वरदान सिद्ध हुआ। उनके व्यक्तित्व एवं आचरण का विद्यार्थियों पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

आचार्य जी के एक निकट सहयोगी प्रो. डी. पी. मुकर्जी के मत से उनके नेतृत्व में बहुसंख्यक शिक्षकों में एक स्वतंत्र देश के विश्वविद्यालय के प्रति अपने कर्तव्य की भावना और बहुसंख्यक लगभग सभी विद्यार्थियों में इसके प्रति कर्तव्य की भावना जगी। उन्होंने अपने कार्यकाल में लखनऊ विश्वविद्यालय के शिक्षकों को तो प्रभावित किया ही,

विद्यार्थियों को सड़कों, कक्षाओं तथा विश्वविद्यार्थियों में उद्दण्ड होने से भी रोका था।

आचार्य जी उपकुलपति के रूप में विद्यार्थियों तथा अध्यापकों में समान रूप से लोकप्रिय थे। उन्होंने निर्धन छात्रों की सहायता एवं अध्ययन के लिए वास्तविक निष्ठा पैदा करने के लिए विश्वविद्यालय के प्रशासन में अनेक सुधार किये। वे दूसरी बार भी लखनऊ विश्वविद्यालय में उपकुलपति चुने गये। यह इस बात का द्योतक है कि उपकुलपति के रूप में अपनी पहली कार्य अवधि में वे कितने दायित्वों का निर्वाह किया। उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों में प्रचलित एक भद्दी एवं घातक प्रथा, जिसे कि 'परिचय रात्रि' कहा जाता था को समाप्त किया था।

प्रवेश, पदोन्नति और नियुक्ति के मामले में वे ऊंचे से ऊंचे लोगों के दबाव के आगे नहीं झुकते थे एक बार उत्तर प्रदेश की राज्यपाल श्रीमती सरोजनी नायडू ने एक ऐसे छात्र को परीक्षा में शामिल होने के लिए संस्तुति की जिसकी उपस्थिति कम थी, आचार्य जी ने मानने से इन्कार कर दिया। इस प्रकार विश्वविद्यालय ने नियुक्तियों के सम्बन्ध में उन्होंने गलत सिफारिशों को मानने से इन्कार कर दिया। दूसरी तरफ अनेक ऐसे योग्य अध्यापक थे जिन्हें बहुत पहले से ही प्रोफेसर बन जाना चाहिए था, चूंकि उनकी कोई पहुँच नहीं थी अन्त उन्हें प्रोफेसर बनने का अवसर नहीं मिला था। आचार्य जी ने उनकी पदोन्नति करने का निश्चय किया। कुछ क्षेत्रों में इसके विरुद्ध विद्रोह का डर था कि पर उन्होंने निश्चय को न बदलने का निर्णय किया और बाद में उन्हें किसी तरफ से कोई परेशानी नहीं हुई।

एक कुलपति के रूप में उनसे कोई भी बात कर सकता था, वे कभी तथ्य को छिपाते नहीं थे। वे भले थे और यथासम्भव सबकी भलाई करते थे पर वे कमजोर नहीं थे। इस प्रकार मात्र अपने चरित्र एवं व्यक्तित्व के बल पर उन्होंने विश्वविद्यालय में अनुशासन स्थापित किया। इसके पश्चात् विभिन्न विश्वविद्यालयों ने कुलपति के रूप में उनकी सेवाओं की मांग करना प्रारम्भ कर दिया था।

1952 में आचार्य जी बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के उपकुलपति बने। इससे पहले विश्वविद्यालय में अनेक प्रकार की समस्याएँ थी और यह समाचार-पत्रों का एक विषय हुआ करता था। यद्यपि दमे की बीमारी के कारण वे पूरा समय विश्वविद्यालय को नहीं दे पाते थे पर उन्होंने अपने व्यक्तित्व के बल पर एक अनूठा अनुशासन कायम किया। जवाहरलाल जी का मत था कि यह सब मात्र आचार्य जी के व्यक्तित्व के कारण था वरना विश्वविद्यालय में तो अनेकों कमियाँ हैं।



बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के उपकुलपति के रूप में ही वे 1952 में चीनी सांस्कृतिक मिशन के सदस्य के रूप में चीन गये। उनके साथ अमरनाथ झा जैसे विद्वान और चेलापति राव जैसे मूर्धन्य पत्रकार भी थे। उन्होंने चीनी जीवन के प्रत्येक पहले पर गहरी अभिरुचि प्रदर्शित की और आवश्यक तथ्य लेने से भी नहीं हिचकिचाए। यद्यपि कुछ लोगों ने चीन की प्रगति के विरुद्ध बातें कहकर उनके मन में पूर्वाग्रह पैदा करने का प्रयास किया था परन्तु चीन के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण विकसित करने में वे निष्पक्ष थे। वे जहाँ भी गये चीनियों को प्रभावित किया। यही नहीं वे पेकिंग (वर्तमान में बीजिंग) विश्वविद्यालय में बोलने वाले प्रमुख वक्ता थे।

इस प्रकार लखनऊ एवं बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में उपकुलपति के रूप में उन्होंने सफलतापूर्वक काम किया। उनके कार्यकाल में इन विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों अनुशासन का पालन वास्तव में दूसरे राज्य के विद्यार्थियों के लिए एक आदर्श था। आचार्य जी देश के युवकों से बड़ी-बड़ी आशयें रखते थे और इसीलिए विद्यार्थी वर्ग से उन्हें हार्दिक प्रेम था। दूसरी तरफ विद्यार्थी वर्ग भी आचार्य जी का हृदय से सम्मान करता था। यही कारण था कि 1954 में यूरोप में स्वास्थ्य लाभ के लिए प्रस्थान करते समय आचार्य जी ने अपने मित्रों से कहा था कि यदि यूरोप की यात्राओं से मैं स्वस्थ होकर लौटा तो भविष्य में मैं नौजवान समाजवादी दल को साथ लेकर समाजवाद का कार्यक्रम पूरा करूंगा।

आमतौर पर यह धारणा कि शिक्षा राजनीति से बिल्कुल अलग रहनी चाहिए। शिक्षा के सूत्र राजनैतिक लोगों के हाथ में न होकर शिक्षास्त्रियों और शिक्षा के लिए आजीवन परिश्रम करने वालों के हाथ में ही होना चाहिए। जब बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में उनकी नियुक्ति का सवाल आया तो भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद ने कुछ हिचकिचाहट प्रदर्शित की। डा. प्रसाद का कहना था कि यद्यपि आचार्य जी के लिए मेरे मन में सम्मान और आदर की ऊंची भावना है, वे ऐसे व्यक्ति हैं जो पक्के समाजवादी होने के नाते राजनीति नहीं छोड़ेंगे और दमा उन्हें नहीं छोड़ेगा। विश्वविद्यालय को ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है जो अपना सारा समय और ध्यान उसकी ओर केन्द्रित करें। केन्द्रीय शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद के आग्रह पर उन्होंने आचार्य जी को उपकुलपति के पद पर नियुक्त कर दिया।

आचार्य जी ने अद्भुत रूप से शिक्षा और राजनीति में समन्वय किया। उनके राजनैतिक विश्वास में कभी भी विश्वविद्यालय के कार्य में दखल नहीं किया और न ही उन्होंने राजनैतिक आधार पर किसी के साथ पक्षपात किया। बड़े से

बड़े राजनैतिक दबावों के सामने वे नहीं झुके। आचार्य जी के एक घनिष्ठ सहयोगी का मत है कि 'शिक्षा के समय शिक्षा और राजनीति के समय राजनीति - यह भेद अपने सर्वतोमुखी प्रतिभा से आचार्य नरेन्द्रदेव ने ही निबाहा। इस दो धार की तलवार पर चलना ऐरे-गैरे का काम नहीं था।'

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- 1- काशी नागरी प्रचारिणी सभा आचार्य नरेन्द्रदेव : युग प्रवर्तक , वाराणसी 1950।
- 2- गंगल, सुरेन्द्र चन्द्र आचार्य नरेन्द्रदेव: भारतीय लोकतन्त्रात्मक समाजवाद के पितामह, दिनमान, 29 अक्टूबर 1972।
- 3- दास, नरोत्तम आचार्य नरेन्द्रदेव, राष्ट्रीय नवनिर्माण के ऋषि, आज, हिन्दी दैनिक, वाराणसी 1969।
- 4- दीक्षित जगदीश चन्द्र साहित्य साधना आचार्य नरेन्द्रदेव, युग और विचार, सम्पादक - दीक्षित जगदीश चन्द्र, सूचना एवं जनसंपर्क विभाग उत्तर प्रदेश प्रकाशन 1989।
- 5- नरेन्द्र देव, आचार्य आदर्श शिक्षा का स्वरूप, आगरा, विश्वविद्यालय में 8 नवम्बर 1947 को उपाधि वितरण के अवसर पर दिया गया भाषण, आचार्य नरेन्द्रदेव, युग एवं विचार, सूचना एवं जनसंपर्क विभाग उत्तर प्रदेश, लखनऊ 1989।
- 6- नरेन्द्रदेव, आचार्य विश्वविद्यालय शिक्षा और संस्कृति के केन्द्र बने, संयुक्त प्रान्त विश्वविद्यालय में 9 सितम्बर, 1937 को दिया गया भाषण, आचार्य नरेन्द्रदेव - युग और विचार, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ।
- 7- नरेन्द्रदेव, आचार्य राष्ट्रीयता और समाजवादी ज्ञान मण्डल, वाराणसी, 1949।
- 8- नरेन्द्रदेव, आचार्य मेरे संस्मरण, संघर्ष साप्ताहिक लखनऊ, 31 अक्टूबर, 1956 (संस्थापक आचार्य नरेन्द्रदेव।
- 9- नरेन्द्रदेव, आचार्य डेमोक्रेटिक सोसलिज्म इन इण्डिया रीडिंग फ्राम द राइटिंग ऑफ नरेन्द्रदेव, कम्पाइल्ड एण्ड एडिटेड बाई दीक्षित चन्द्रोदय, एस. चाँद कम्पनी, 1971।
- 10- नरेन्द्रदेव आचार्य द इण्डस्ट्रियल स्ट्रगल नेक्स्ट फेस, बाम्बे, 1946
- 11- नरेन्द्रदेव आचार्य भारतीय शिक्षा एक विडम्बना, साकेत प्रिंटिंग प्रेस, फैजाबाद, 1948।



‘बलुत’ : एक प्रभावी आत्मकथन



— डॉ. आसिया चिश्ती
प्राध्यापक — मराठी विभाग प्रमुख,
श्रीकृष्ण महाविद्यालय, गुंजोटी-313613,
धाराशिव (उस्मानाबाद) (महाराष्ट्र)

सम्बद्ध — डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर
मराठवाडा विश्वविद्यालय, छत्रपति
शंभाजी नगर (महाराष्ट्र)

ई-मेल :
drasiyachishti@gmail.com

प्रास्ताविक —

गेल्या काही वर्षात दलित लेखकांची आत्मकथने मोठ्या प्रमाणावर प्रकाशित झाली आहेत. दलित साहित्य निर्मितीचा हा मौलिक आविष्कार आहे. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांनी आपल्या वृत्तपत्रांतून आणि भाषणातून आपले जीवनानुभव अनेकदा व्यक्त केले आहेत. त्यांच्या पूर्वी अस्पृश्य संतमंडळीनीही आपल्या रचनेतून आपल्या व्यथा-वेदना, आपली दुःखे मांडली आहेत. परंतू ही दुःखे अध्यात्मिक स्वरूपाची होती. असे असले तरी त्यातून सामाजिक पीडा व्यक्त झालीच आहे. ही दुःखे एका विशिष्ट अनुभवाचे प्रतिपादन करण्या साठी होती.

दलित साहित्याची प्रेरणा डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांचे जीवन आणि तत्व-ज्ञान आहे. त्यामुळे आजची दलित आत्मकथने ही आंबेडकरी विचार चळवळीशी निगडित आहेत. त्याचा प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष प्रभाव त्यावर आहे। आपले जीवनानुभव परखडपणे आणि विमुक्तपणे मांडणे हा आरंभप्रभावच त्याचेद्योतक आहे. आत्मजाणीव ही आंबेडकरी प्रेरणा आहे व ती सर्वच दलित आत्मकथातून प्रगट झाली आहे. आधुनिक मराठीतील आत्मचरित्राला फार मोठी परम्परा आहे. आत्मचरित्रे ही आयुष्याच्या मावळतीला लिहिली गेली आहेत. आपल्या पूर्व जीवनातील अनुभव व घटना नोंदण्याचा आत्मचरित्र हा एक प्रयत्न आहे. आत्मचरित्रकार एक प्रकारे स्थिर जीवनाचे चित्रण करतो. आत्मकथनकाराचे नाते घडण्याच्या अवस्थेशी, गतिमानाशी असते. तो आपले जीवनानुभव कथन करीतच असतो पूढेही करणार असतो.

आत्मकथन हे व्यक्ति मनाचे असले तरी त्यातून समाजमनाचेहीही दर्शन घडते. त्याव्यक्तीबरोबरच जणू समाजच, बोलत आहे असे लक्षात येते. मग ‘मुक्काम पोस्ट देवाचे गोठणे’ मधील माधव असो ‘मिटलेली कवाडे’ तील मुक्ता असो ‘अंतः स्फोट’ मधील कमूद असो ‘आठवणीचे पक्षी’ मधील प्रल्हाद असो, की गावकीतील रूस्तम. ते एकटेच अभिव्यक्त होत नाही, तर समाजाची सुखदुःख आशा-आकांक्षा, ताण तणाव याचे विराट रूपच त्यातून व्यक्त होते. भारतीय समाजव्यवस्थेच्या तळाशी खदखदणत्या जातिभेद, अंधश्रद्धा अज्ञान रूढीग्रस्तता, श्रेष्ठ — कनिष्ठता ह्या प्रश्नांनी बधिर झालेल्या एका प्रचंड समूहाचे प्रत्ययकारी दर्शन त्यातून घडते.

शंकरराव खरात ‘तराळ-अंतराळ’ मधील प्रास्ताविका तम्हणतात, “वास्तविक ही माझ्या जीवनाची कथा आहे। पण त्याचबरोबर ही एक ‘स्टोरी ऑफ दि अनटचेबल’ आहे. माझ्याबरोबर माझ्या समाजाचीही कथा आहे। एका व्यक्तीच्या, एका समाजाच्या, एका गावच्या मानसिक, वैचारिक व सामाजिक जीवनात घडत आलेल्या-चाललेल्या



विकासाची ही कथा आहे।" 1. हे त्यांचे मनोगतहया दृष्टीने लक्षात घेण्यासारखे आहे.

दलित आत्मकथनामध्येच नव्हे तर संपूर्ण मराठी साहित्यात ज्या पुस्तकाने खळबळ, उडवून दिली, ते पुस्तक म्हणजे दया पवारांच 'बलुत' : 24 डिसेंबर 1978 रोजी या पुस्तकाची पहिली आवृत्ती प्रकाशित झाली. 14 सप्टेंबर 1995 रोजी सहावी आवृत्ती आणि नंतर ही अनेकदा पुस्तकाचे पुनर्मुद्रण करावे लागले. यावरून 'बलुत' ची लोकप्रियता लक्षात येते.

'बलुत' विषयी वाचकांची उत्कंठा जागृत झाली, ती पु. ल. देशपांडे यांच्या समीक्षणाने. पु. ल. देशपांडे यांनी 18 मार्च, 1979 च्या 'महाराष्ट्र टाइम्स' मध्ये 'दुःखाने गदगदलेले झाड' या शीर्षकाखाली लेख लिहिला आणि पुढे या पुस्तकावर कितीतरी चर्चा, परिसंवाद, वाद झाले. परीक्षणे प्रकाशित झाली. काही अपवाद वळगता बहुतेक समीक्षकांनी 'बलुत' ची प्रशंसा केले.

या पुस्तकाला इतकी लोकप्रियता मिळण्याचे कारण अशा पध्दतीचे अनुभव बहुसंख्य वाचक प्रथमच घेत होते.

'बलुत' ही काही कथा किंवा कादंबरी नव्हती, की जी कल्पनेतून साकार होऊ शकेल. ती होती परिस्थितीमुळे भरडल्या गेलेल्या एका संवेदनशील, अनुभव संपन्न, जिवंत माणसाची कहाणी! जातीच्या नावाखाली ज्याला अनंत चटकें सोसावे लागले, अन्याय-अत्याचार सहन करावा लागला, बकाल वस्ती आणि गलिच्छ वातावरणातील घाण तुडवत मोठे व्हावे लागले, अशा माणसाची कहाणी। खाजगी, कौटुंबिक, सामाजिक, शैक्षणिक अशा सर्वच पातळ्यांवर अनुभवलेंलं भोगलेलं, पचवलेलं दुःख ज्यामध्ये ठायी ठायी आढळते, ते हे दुःखाचं 'बलुत' भारतीय समाजव्यवस्थेनं त्याच्या पदरात बांधलेलं हे दुःख मांडताना त्यात कसलीही तक्रार नाही अगदी तटस्थपणे दया पवारांनी कित्येक प्रसंग मांडलेले आहेत.

बलुत मधील प्रसंग चित्रण –

दया पवार यांनी लिहिलेल्या 'बलुत' या आत्मकथनाने मराठी साहित्यात आत्मकथनांचा मार्ग प्रशस्त केला. प्रस्तुत कथनाला 'फोर्ड फाउंडेशन' चा अँवार्डमिळाला आणि हिंदी, कन्नड, गुजराती या भारतीय भाषांप्रमाणेच जपानी, जर्मन अशा विदेशी भाषांमध्ये ही त्याचे अनुवाद झाले. याचेच 'अछूत' नावाचे हिंदी रूपांतर प्रसिध्द झाले.

'बलुत' मधील लेखकाच्या जीवनप्रवासाची हकीकत म्हणजे दगडू मारुती पवारचा साहित्यिक दया पवार होईपर्यंतच्याजीवनप्रवासाची ही कहाणी आहे. लेखकानेच म्हटल्याप्रमाणे "बर्फाळ अशा टुंड्रा प्रदेशात माझा जन्म झाला असता, तर माझ्या वाट्याला नेमका भूतकाळ आला तसा आला' असता काय ? तिथंही दुःख असेल. पण त्या दुःखाची प्रत वेगळी असेल अशी मनुष्य निर्मित नसेल." 2 पवारांचेहे म्हणणे सर्वार्थाने खरे आहे. त्यांचे बालपण व दोन्ही येथील समाजव्यवस्थेमुळे कोळपले होते. जातीयतेच्या असंख्य इंगळ्या त्यांना डसल्या होत्या.

या आत्मकथनातून जाणवतं की, लेखकाला स्वतःचे 'दगडू' हेनावआवडत नसे. आईने कागद वेचायला जाणे, हेही त्यांना लज्जास्पद वाटायचे. स्वजातीच्या मुलांत खेळणेही त्यांना आवडत नसे. ग्रामीण व नागर असे दुहेरी जीवन जगावे लागणाऱ्या दया पवारांची दुभंगलेली मानसिकता 'बलुत' मधून जाणवते ते याविषयी लिहितात, "माझं बालपण कधी खेड्यात तर कधी शहरात गेलं' माझी मानसिकता दुभंगलेली जरासंधासारखी दोन दिशांना फेकलेली." 03

पुस्तकी जगामुळे आपण आपल्या वस्तीपासून जाणिवेच्या पातळीवर कसे दूर जाऊल आलो, याची दखल घेताना तेत्यांच्या कवितेत म्हणतात,

'कशाला झाली पुस्तकांची ओळख

बरा ओहोळाचा गोटा

गावची गुरं वळली असती

असल्या इंगळ्या डसल्या नसत्या'. 4

लोकजीवनाचेदर्शन घडविणे हा दया पवारांचा हेतू नाही. परंतू ज्या समाजात लेखकाचा जन्म झाला त्या समाजाच्या रुढी, परंपरा, समजुती, आचार-विचार धार्मिक विधी, जातपंचायतीव अन्य, जीवनपध्दती, इत्यादीबाबतचे उल्लेख अपरिहार्यपणे येतात.

लेखकाने 'बलुतेदारी' चे वर्णन केले आहे. महारांना चोवीस तास राबावे लागे. तो पडल्या कामाचा चाकर समजला जाई. त्याला 'बिगार' म्हणत याशिवाय गावचा सारा तालुक्याला नेणे, अंमलदाराच्या घोड्यापुढे धावणे, जनावरांची देखभाल करणे, चारापाणी घालणे, दवंडी देणे, मेलेले जनावर ओढणे, लाकडं फोडणे, मृत व्यक्तीचा निरोप पोचविणे, नवरदेव वेशीवर ओवाळणे इत्यादी सारी कामे महारालाच करावी लागत. त्या मोबदल्यात त्याला 'बलुतेदारी', मिळे अर्थात हे बलुतंसुद्धा मानाने मिळत



नव्हतेच. हक्काचं बलुतं घेतानाही एखादा शेतकरी – ‘ए धेडपटांनो’ ! तुमच्या आयला कामाच्या नावानं बोंब आणि बलुतं मागायला सगळ्याच्या पुढ ! काय बापाची पेंड हाये काय ? 5 असे खवचट बोलायचाच.

दलितांमध्ये आपापसातही जातिभेद पाळण्यासंबंधीचे अनेकप्रसंग ‘बलुतं’ मध्ये आहेत. दया पवार म्हणतात, ‘महार मंडळीतील मेहतरे महारांचा न्याय करीत त्यामुळे त्यांना समाजात मान असे, तर दुसऱ्या बाजूने महारांचे लग्न लावणारे ‘भाट’ हे जन्मदलित असूनही त्यांना मात्र महार मंडळी स्वतः पेक्षा हलके समजत’. ठाकरे आदिवासी स्वतःला महादेवाचे वंशज समजत. आम्हा मंडळीचा त्यांना बाट लागे असे. ते आम्हाला पाणीही वरून पाजायचे. चटणी भाकर द्यायची असेल, तीही वरूनच. ठाकरांनी ही विटाळ पाळावा, कळसच!’

असाच अनुभव गावच्या न्हाव्यासंबंधीही लेखक सांगतात. हा न्हावी गावच्या महार, चांभारांचे केस कापायचा नाही. तेव्हा लेखकाला वाटायचे – “हा खुशाल म्हशी भादरतो. पण म्हशीपेक्षा ही आमची किंमत ज्यादा न सावी ना ? या समाजव्यवस्थेला ला जणूकाही श्रेष्ठतेचा अहंकार पोसण्याची सवयच झालेली आहे. असे ‘बलुतं’ मधील विविध प्रसंगांवरून प्रत्ययास येते.

लेखक म्हणतात की ते शिक्षित झाले तरी त्यांना महारपण जसं गोचिडासारखं चिकटलेलं होतं. कारण लेखक गावात गेले की, ‘कायरे मारत्या म्हाराचा ना तू ?’ असाप्रश्न नेहमीच विचारला जायचा. त्यावेळी पवारांना मनस्वी दुःख व्हायचे. अशा मनावर आघात करणाऱ्या, भीषण विषयावरील भाष्याचे ज्वलंत चित्रण ‘बलुतं’ मध्ये पवारांनी केलेले आहे.

‘पवारांची’ भाषा साधी सोपी व ओघवती असून तिला अलंकाराचा सोस नाहीबरेचदा ती काव्यात्म बनते. एखाद्या घटनेकडे किंवा प्रसंगाकडे दया पवार भावुक आणि कवि हृदयाने पाहतात आणि त्या घटनेचा अन्वयार्थ लावण्याचा प्रयत्न करताना दिसतात. या कारणांमुळे प्रस्तुत दलित ‘स्वकथन’ ‘ललित’ होण्याला मदतच झाली आहे. मात्र दया पवारांनी ‘काही सवंग प्रसंगांच्या नोंदी करण्याचा मोह टाळला असता तर त्यांच्यावर झालेली टीका झाली नसती : आणि नवीन आवृत्तीत समर्थन करण्याची पाळीही त्यांच्यावर आली नसती.’ 6

‘बलुतं’ मधील ग्रामीणता –

‘बलुतं’ मध्ये गावगाड्याचे, गावाच्या रचनेचे त्याचप्रमाणे तिथली जीवनपद्धती, भाषा, लोकव्यवहार, रूढी परंपरा इत्यादींचे वर्णन आलेले आहे.

ग्रामीण भागातील महारवाड्याचे वर्णन करताना दया पवार म्हणतात की, घराजवळ जो जमिनीचा तुकडा असे त्याला ‘हाडकी’ म्हणत. बहुधा या शेतात जनावर सोलल्यावर त्याची हाड पडत, म्हणून त्या जागेला हाडकी म्हणत असावेत. असा निष्कर्ष लेखक काढतात. गावापासून दूरवर डोंगराच्या पोटाशी जी जमीन असे. तिला ‘हाडवळा’ म्हणत. गावाची महार मंडळी हा हाडवळा. कसताना केव्हाच दिसत नसत. पण लांबच्या पल्ल्यावर असल्यामुळे ही जमीन त्या गावाचं गायरान म्हणून वापरीत. त्याबद्दल त्यांना मोबदला मिळे.

ग्रामीण भागात जातिभेद तीव्र असतो. त्याचे बरेच चटके लेखकाला बसले. अशाच एका प्रसंगाचे वर्णन करताना लेखक म्हणतात, पाण्याला येता-जाता महार बायकांची सावली मारुतीवर पडते, आणि देव विटाळतो म्हणून गावक-यांनी ही वाट बंद केली. विहिरीवर दुसऱ्या मार्गाने जायचे म्हणजे मैलभर चिखलातून वाट तुडवावी लागे. महारांनी ही वाट खुली करावी, म्हणून गावाशी झुंज दिली. कोर्टकचेऱ्या झाल्या. ‘आमची वहिवाट आम्ही सोडणार नाही.’ वाटले तर तुम्ही मारुतीला दुसरीकडे बसवा’ 7 असा आक्रमक मुद्दा महार मंडळी मांडत. हेवेदावे, भांडणं यांचे ग्रामीण भागात प्रचंड पीक असते, याची जाणीव अशा कितीतरी प्रसंगांवरून होते.

गावच्या जत्रेचे वर्णन लेखक करतात. जत्रेचे गांव मरिआईची पूजा करायचा म्हसोबाची पूजा करण्याचा मान महारांचा असायचा. म्हसोबा मात्र महाराजांसारखाच बाहेर उन्हात-पावसात तळपत असायचा. हा म्हसोबा कोण ? त्याला आपण का पूजायचं ? हे कोडं मात्र दया पवारांना उलगडत नसे.

‘बलुतं’ मधील ग्रामीण जीवन हेसर्वसामान्य ग्रामीण भागातील जीवनाप्रमाणेच आहे. फरक इतकाच की, लेखकाने महार समाजाच्या दृष्टीकोनातून गावगाड्याचे वर्णन केले आहे. त्यांनी वर्णिलेले ग्रामीण जीवन हे त्यांच्याच समाजावर जास्त प्रकाश टाकते. त्यांच्या चालीरीती, सुखदुःखे, श्रद्धा यांचे दर्शन त्यातून होते. अस्पृश्यता, गरिबी, हेवेदावे, व्यसने यावर्णनावर मात्र लेखक अधिक भर देतात.

अज्ञानामुळे, अडाणीपणामुळे महार समाज प्रगती



करू शकत नाही. व्यसने आपापसातील हेवेदावे अनावश्यक रुढी-परंपरा' जपण्याचा हव्यास यामुळे आपला समाज दारिद्र्यात खितपत पडला आहे, याची जाणीव मुंबईत राहिल्यामुळे, इतर समाजातील मुलांबरोबर शिकल्यामुळे लेखकाला अधिक तीव्रतेने होते. आपल्या लोकांनी सवर्णासारखे सन्मानाचेजीवन जगावे, असे त्यांना मनापासून वाटते. असे हे ग्रामीण जीवन 'बलुते' मधून साकार होते.

बलुतं मधील जातिभेद –

दया पवारांनी 'बलुतं' मध्ये एकीकडे जातिभेदाची ज्वलंत वर्णने केली आहेत तर दुसरीकडेसवर्णांनीकेलेल्या मदतीचे कृतज्ञापूर्वक उल्लेखही केले आहेत.

बाजा रभरला की वेगवेगळ्या झाडांखाली गावोगावची माणसं समूहाने जातवार बसत. महारांना कुठेही बसता येत नसे. हॉटेलातसुद्धा महार, मांग, चांभारांना चहासाठी वेगळा कप असायचा, त्यांचा कप त्यांनाच विसळावा लागे. त्यांची हॉटेलात बसण्याची जागाही वेगळी असे.

गावच्या यात्रेतकुस्त्यांचा हंगाम होई. महार कुस्तगीर कितीही बलाढ्य असला, तरी त्याला सवर्णांच्या कुस्तीगिरा बरोबर खेळण्याची परवानगी नसे. एखादा महार कुस्तगीर चुकुण-सवर्ण कुस्तीगिराबरोबरखेळलाच आणि प्रमुखांना ते समजले, तर त्याला बेदम मारले जायचे. लेखकाची आई ठाकरांकडे आपली जमीन वाट्यानं, लावी. हे ठाकर आदिवासी होते. तेस्वतः ला महादेवाचे वंशज समजत. पण त्यांनाही महारांचा बाट लागे. ते पाणी ही वरून पाजायचे चटणीभाकरीही वरूनच घायचे. मराठ्यांप्रमाणे ठाकरही आपल्या व्यवहारात जातिप्रथा पाळत, यांचे लेखकाला दुःख होत.

महारांना न्हाव्याच्या दुकानात जाऊन केस कापून घेणे मोठे दिव्य वाटायचे कारण न्हावी महारांचांभारांचे केस कापत नसे. दया पवार म्हणतात, 'हा खुशाल म्हशी भादरतो, पण म्हशीपेक्षाही आमची किंमत ज्यादा नसावी ना?'

अशी जातीभेदाची अनेक वर्णने 'बलुतं' मध्ये ठायी ठायी आढळतात. लेखक शिक्षित झाले तरी त्यांना गावात गेल्यावर, विचारले जायचे की 'कायरे मारत्या, म्हाराचाच ना तू 1'. महारपण जसं त्यांना गोचिडीसारखं चिकटलं होतं.

पुढे डॉ. आंबेडकरांनी केलेल्या वैचारिक

जागृतीमुळे प्रारंभ झालेले सामाजिक परिवर्तन अस्पृश्योद्वारास उपकारक ठरले. परंतु, आंबेडकरांच्या निधनानंतर राजकारणातील जिवंत धग संपली. पोटजातीनिहाय अस्पृश्यांचे गट पडले आणि सामाजिक परिवर्तनाची चळवळ 'काँग्रेस-रिपब्लिकन युतीनंस्तो-पॉयझनिंगसारखी खतमकेली. 9

'बलुतं' मधून लेखक केवळ दगडूवर झालेल्या अन्याय अत्याचारावरच प्रकाश टाकत नाही, तर दलितांतील विविध जाती – जमातींवर उच्चवर्णीयांनी केलेल्या अन्यायालाही वाचा फोडतो. जातिभेदाच्या या इंगळ्या डसल्या जाणवल्या, त्यामुळे होणार्या अन्यायाची जाणीव झाली. ती 'शिक्षणामुळे.

'बलुतं' मधील भाषा शैली –

कोणत्याही वाङ्मयकृतीच्या कलात्मकतेचे स्वरूप हे त्यातील आशय आणि अभिव्यक्ती यांतील नावीन्याच्या कसोटीवर तपासून पाहिले जाते. एखाद्या कलाकृतीचा आशय हा तिच्या भाषाशैलीचे स्वरूप निश्चित करतो. आशय आणि अभिव्यक्ती यातील नावीन्यपूर्ण मांडणीमुळे एक नवेसाहित्यरूपप्रत्ययाला येते. दलित 'स्वकथना' मधील नवा आशय मंडण्यासाठी वास्तवरूप अशी भाषाशैली स्वीकारणे या लेखकांना आवश्यक होऊन बसले. कारण कलाकृतीमध्ये आशयद्रव्य आणि भाषाशैली यांचेसाध्य – साधनरूप आणि परस्परावलंबी असतात 10. बलुतं' हे अपवादात्मक आत्मकथन अभ्यासताना जाणवते की, त्यातील भाषेमध्ये एकप्रकारचे सॉफेस्टिकेशन आलेले आहे. लेखकाने वापरलेली विशेषणे त्याची निवेदन पध्दती, विचार प्रकटरीकरणाची पध्दत ही इतर दलित आत्मकथनांशी विसंगत वाटते. सुरुवातीलाच अशिक्षित दगडू सुशिक्षित झालेल्या दया पवाराला कहाणी सांगतो आहे, ही भूमिका घेतल्याने भाषा कृत्रिम वाटू लागते' असे मत बाळकृष्ण कवठेकरांनी मांडले आहे. पण पुढे ते म्हणतात की, दया पवारांनीच दूगडूची 'पोज' घेतल्याने हे 'सॉफेस्टिकेशन' दोषास्पदठरणारनाही.

'बलुतं' मधील भाषा ही महारी बोली नसून मध्यमवर्गीयांची भाषा आहे. कधी-कधी एखाद्या पात्राच्या मनातील विचार, भाषा ही त्या व्यक्तीची न वाटता तिच्या मुखावाटे दया पवारच बोलत असावे असे वाटते. परिणामी विषयाची धार कमी होते.

"बलुतं' मध्ये दोन बाजूला फेकला जाणारा जरासंध या महाभारतातील कथेचा आणि तोंडातून मोती,



पोवळे काढणारा ब्राह्मण या दंतकथांचा प्रतिमांसारखा उपयोग पवारांनी केला आहे. मधून मधून डोकावणार्या आत्मीयतेमुळे आलेल्या जिवंतपणा प्रमाणेच कुठेकुठे येणार्या प्रादेशिक बोलीमुळेही 'बलुतं' मधील चित्र सजीव झाले आहे. गाण्याचे तुकडे, म्हणी, संवाद हे सारे प्रादेशिक बोलीत, त्याचप्रमाणे प्रादेशिक बोलीतील लकबा, लत लागली वगैरे शब्दप्रयोग 'हाडवळा' 'गुडसा', 'चाणी' वगैरे प्रादेशिक बोलीचे शब्द निवेदानातील सच्चेपणा जाणवून देतात. छोटी – छोटी वाक्ये धावत असतात. तर वाचकाला चाटून जाण्याचे, थबकवून, टाकण्याचे, चक्रावून टाकण्याचे सामर्थ्य मोठ्या वाक्यात आहे. 12

आशय दलित जीवनाच्या दुःखाचा असताना दया पवारांनी प्रारंभापासून अखेरपर्यंत वापरलेली प्रमाणभाषा ही परस्परसंबंध जोडताना खटकते. त्यांनी काही संवादात बोलीभाषेचा प्रयोग केलेला आहे, पण निवेदनाची पातळी सुशिक्षित पांढरपेशा समाजाचीच आहे. तसेच त्यांनी अधूनमधून वापरलेल्या महारी शब्दांचे तिथेच अर्थ सांगितल्याने कथनाच्या सुसंगत रचनेत थोडाफार खंड पडल्याचे जाणवते. परंतू पुस्तकाच्या दुसऱ्या आवृत्तीत त्यांनी याचा खुलासा देखील केला आहे. त्यांच्या भाषेवर आरोप झाले असले तरी त्यांची भाषा साधी सोपी, ओघवती असून तिला अलंकारांचा सोस नाही, बरेचदा 'ती काव्यमय बनते.

निष्कर्ष –

1. दया पवारांनी हे आत्मपर लेखन कादंबरीच्या अंगाने लिहिल्यामुळे 'बलुते' ला एक नवाच आकृतीबंध प्राप्त झाला आहे. लेखनाचा एक नवा आदर्श यातून मराठी साहित्यात उदयास आला.

2. दया पवार यांच्या वाट्याला आलेलं 'दुःखाचं बलुतं' भारतीय समाजव्यवस्थेनं त्यांच्या पदरात बांधल्याचं वाचून आपलं सामाजिक विषमतेतरुतलेलं मन कोणती दाद देणार, याची जाणीव पवारांना दिसते. या वेदनेचा वेध कुणालाही घ्यावासा वाटावा, इतके प्रभावी चित्रण या जाणिवेतून साकार झाले आहे.

3. दया पवारांनी 'बलुतं' च्या माध्यमातून आपले संपूर्ण जीवन सांगून टाकले आहे. आपले गुण-दोष वैगुण्य-वैषम्य, दैन्य-लाचारी, आचार-विचार, खेद-खंत हे सारे प्रांजळपणे त्यांनी कथन केले आहे.

4. 'बलुतं' च्या निवेदनात संवाद अभावानेच येतात. पण संवादाची गरजही वाटत नाही कारण लेखकाची शैली

ओघवती प्रभावी आणि सरळ निवेदनाची आहे.

5. 'बलुतं' मुळे मराठी साहित्यात दलित आत्मकथनांचे आगळेवेगळे नवे दालन उघडले गेले. सामाजिक जाणीव विस्तृत झाली. वास्तविक जीवनाचा कलात्मपूर्ण प्रत्यय आणून देणारी ही आत्मकथा मराठी वाङ्मयात नवी मोलाची भर टाकणारी सामर्थ्यवान कलाकृती म्हणून तिचे स्थान अनन्यसाधारण आहे.

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. खरात शंकरराव – तराळ – अंतराळ, प्रस्ताविक ।
2. पवार दया – बलुतं, पृष्ठ – 03 ।
3. पवार दया – बलुतं, पृष्ठ 04 ।
4. पवार दया – बलुतं, पृष्ठ – 27 ।
5. पवार दया – बलुतं, पृष्ठ – 40 ।
6. कुलकर्णी आरती – दलित स्वकथनाचा परिचय, दलित स्वकथने : साहित्यरूप, पृष्ठ – 59 ।
7. पवार दया – बलुतं, पृष्ठ – 42 ।
8. पवार दया – बलुतं, पृष्ठ – 68 ।
9. पवार दया – बलुतं, पृष्ठ – 153 ।
10. आरती कुसरे कुलकर्णी, – 'दलित स्वकथने : वाङ्मयीन गुणवत्ता', दलित स्वकथने : साहित्य रूप, पृष्ठ – 136 ।
11. कवठेकर बाळकृष्ण – दलित साहित्य : एक आकलन, पृष्ठ – 82 ।
12. सरखोत विद्यागौरी 'बलुतं' (समीक्षा), अस्मितादर्श, पृष्ठ – 48 (वर्ष – 13, अंक – 4) ।



भारतीय संगीत शिक्षण पद्धति का क्रमिक विकास 'गुरु शिष्य परम्परा से संस्थागत शिक्षण तक'



— श्रीमती ज्योति मिश्रा
शोधार्थी – संगीत गायन (Kn13)
जुहारी देवी गर्ल्स डिग्री कॉलेज
कानपुर –208004 (उत्तर प्रदेश)

E-mail:
jmishra8324@gmail.com



रिसर्च सुपरवाइजर
— डॉ. मोहिनी शुक्ला
एसोसिएट प्रोफेसर –
संगीत गायन विभाग,
जुहारी देवी गर्ल्स डिग्री कॉलेज
कानपुर–208004 (उत्तर प्रदेश)

E-mail:
mohinishukla29@gmail.com

सारांश

प्राचीन काल से ही भारतीय संगीत आध्यात्मिक तथा लौकिक संगीत की धाराओं में प्रवाहित होकर शिक्षण प्रक्रिया के रूप में पोषित होता रहा है। ऋषियों द्वारा अपने शिष्यों को दी जाने वाली सामवेद की ऋचाओं की गायन शिक्षा से संगीत शिक्षण की शुरुआत हुई। गुरुकुल पद्धति में दी जाने वाली वर्ण व्यवस्था, जीवन दर्शन वेदों की शिक्षा धीरे-धीरे व्यवसायिक अध्ययन के उद्देश्य से विशिष्ट कल केन्द्रों एवं संगीत शालाओं के रूप में परिणत होती चली गई। पूर्व मध्यकाल एवं मध्यकाल में परिवर्तित स्थिति में संगीतज्ञों के व्यक्तितक प्रयत्नों राजाओं और बादशाहों की संगीत प्रियता एवं विलासिता विदेशी संस्कृति के प्रभाव के फलस्वरूप घराने के रूप में संगीत शिक्षण प्रक्रिया प्रवाहित होती रही। तत्पश्चात् अंग्रेजों के आगमन के फलस्वरूप संस्थागत शिक्षण को बढ़ावा मिला परन्तु संगीत उपेक्षित ही रहा। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जन्मे पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे एवं विष्णु दिगम्बर पलुस्कर की अथक प्रयासों से संगीत को एक विषय के रूप में संस्थानों में मान्यता मिली एवं अब इसकी विधिवत शिक्षा महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय में दी जा रही है। परन्तु कुछ कारणों वश अभी भी संगीत शिक्षण का उद्देश्य प्रभावित है जिनका पता लगाना एवं उसे पर विचार करना आज अति आवश्यक हो गया है।

बीज शब्द— संगीत शिक्षण पद्धति, गुरु शिष्य परम्परा, घराना पद्धति, संस्थागत शिक्षण संगीत पद्धति, पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे।

मानव संस्कृति के साथ-साथ संगीत कला का भी विकास हुआ। भारतवर्ष सदैव अपनी अनूठी संस्कृति के लिए विश्व प्रसिद्ध रहा है। यह तो तय है कि जब से मानव सभ्यता का विकास हुआ। संगीत किसी न किसी रूप में मानव से जुड़ा था परन्तु किसी लिखित साक्ष्य के न होने से इसका प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिल सका। सिंधु सभ्यता में भी कई ऐसे साक्ष्य मिले हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि संगीत कला उसे समय भी विद्यमान थी। वैदिक काल से संगीत की औपचारिक शुरुआत हुई। चार वेदों ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद में से सामवेद एक ऐसा वेद था जिसमें संगीत विद्यमान था। इसे संगीतिक वेद भी कहते हैं क्योंकि इसकी रचनाएं गेय थीं। उसे काल में संगीत को धर्म से जोड़कर देखा जाता था। धीरे-धीरे लौकिक समारोह में संगीत प्रयोग किया जाने लगा। मध्यकालीन परिभाषा के अनुसार— “एक को मार्गी कहा गया दूसरे को



देशी। प्रथम को सामगान कहा गया तो दूसरे को गांधर्व नाम दिया गया। यही गांधर्व रामायण और महाभारत काल में मार्ग का स्वरूप बन गया। वैदिक काल से धार्मिक तथा लौकिक संगीत की धाराओं के रूप में प्रचलित संगीत शिक्षण प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुतित हुआ।¹,

शिक्षा मानव के सर्वांगीण विकास का आधार होती है जिसके कारण मानव उन्नति के पथ पर अग्रसर होता है। मानव में अंतरनिहित दोषों का निराकरण करके उसमें निहित गुणों का विकास कर उसके व्यक्तित्व निर्माण में सहायक होती है उसका यही व्यक्तित्व स्वयं के साथ समाज व संस्कृति के लिए उपयोगी होता है। जहाँ सामान्य शिक्षा मनुष्य का मानसिक विकास करती है, वहीं ललित कला की शिक्षा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास कर उसे कार्यकुशल बनाती है। संगीत कला को ललित कलाओं में सर्वश्रेष्ठ माना गया है क्योंकि संगीत व्यक्ति के भावात्मक अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम साधन है।

संगीत शिक्षा का महत्व व उद्देश्य—

प्राचीन काल में ही संगीत कला को एक संस्कृतिक शिक्षा के रूप में मान्यता मिली। धार्मिक अनुष्ठानों एवं समारोहों से जुड़ी होने कारण अध्यात्म अलौकिकता पवित्रता एवं संस्कार उसमें रचे बसे हुए थे। आता संगीत की शिक्षा ग्रहण करने वाले व्यक्ति में यह सभी संस्कार स्वतः ही आ गए। “संगीत की शिक्षा का अर्थ केवल स्वर ताल युक्त गुणों या रागों को सिखाना मात्रा नहीं है, वरन सारगर्भित रूप में संगीत के साधना पक्ष में विद्यार्थी की श्रद्धा व आस्था उत्पन्न करना, संगीत के प्रयोग के प्रति विशाल दृष्टिकोण अपनाते हुए उसमें लालित्य एवं रस तत्व के प्रति सचेत रहना तथा संगीत के उचित विकास के लिए प्रयत्नशील रहना अति आवश्यक है।”² साथ ही उसमें वैज्ञानिक विचारधारा को अपनाते हुए भी उसके मूल रूप को नष्ट ना करना तथा सांस्कृतिक महत्व को बनाए रखना भी संगीत शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। हर कल और समय के परिवर्तन के साथ संगीत शिक्षा में भी परिवर्तन होता गया। संगीत समाज और संस्कृति का आईना होता है अतः जैसे-जैसे भारतीय संस्कृति में बदलाव हुए वैसे-वैसे संगीत तथा उसकी शिक्षण पद्धति में भी परिवर्तन होता गया। आगे हम संगीत शिक्षण पद्धति के क्रमिक विकास के बारे में जानेगे—

सामान्यतः हम भारतीय संगीत शिक्षण पद्धति को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—

1— गुरु शिष्य परम्परा अथवा गुरुकुल पद्धति।

2— घराना शिक्षण पद्धति अथवा घराना परम्परा।

3— आधुनिक शिक्षण पद्धति अर्थात् संस्थागत शिक्षण पद्धति।

प्राचीन काल में संगीत शिक्षण पद्धति एवं गुरु शिष्य परम्परा—

संगीत शिक्षण की परंपरागत पद्धति का प्रचलन भारत में प्राचीन काल से ही चला आ रहा है जिसका केन्द्र गुरु-शिष्य थे। गुरु द्वारा शिक्षा देना और शिष्य द्वारा शिक्षा ग्रहण करने की परम्परा थी। इसे हम गुरुकुल पद्धति के नाम से भी जानते हैं। प्राचीन काल में किसी लिपि के विकसित न होने के कारण गुरु मुख द्वारा शिक्षा ग्रहण करने का विधान था। वेदों, उपनिषदों, पुराणों में सम्पूर्ण साहित्य श्लोकों के माध्यम रचित व निबन्धित था। अतः श्लोकों के माध्यम से ही उनका वाचन किया जाता था। संगीत कला मुख्य रूप से मौखिक एवं क्रियात्मक होने के कारण पूर्णतया गुरुमुख द्वारा ही सिखाई जाती थी। इसी कारण भारतीय शिक्षण परम्परा में गुरु का स्थान सर्वोच्च माना गया है।

संत कबीर के एक दोहे के अनुसार—

‘गुरु गोविंद दोउ खड़े काके लागू पायँ ।

बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय ॥’

अर्थात् भारतीय संस्कृति में गुरु को ईश्वर प्राप्ति का माध्यम माना गया है तथा ईश्वर तुल्य समझा गया है।

‘तैत्तरीय उपनिषद में शिक्षा ग्रंथों राधा याज्ञवल्क्य शिक्षा माण्डुकीय शिक्षा, पाणिनीय शिक्षा, नारदीय शिक्षा आदि का उल्लेख किया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि संगीत के क्रियात्मक रूप के साथ-साथ संगीत शास्त्र का भी वैदिक काल में महत्वपूर्ण स्थान था।’³ प्राचीन साहित्य में कुछ शिक्षालयों के संकेत भी मिले हैं जिन्हें ‘चरण’ कहते थे। इन शिक्षालयों में वैदिक संहिता, अरण्यक, उपनिषद एवं वेद आदि की शिक्षा दी जाती थी। सामगायन का विशेष रूप से प्रचलन था तथा इसका प्रशिक्षण तीन प्रकार से देने का उल्लेख मिलता है। (1) पिता पुत्र द्वारा, (2) गुरु शिष्य परम्परा के रूप में तथा गुरुकुल में जाकर शिक्षक ग्रहण करना। सामगान गायकों को ‘उदगाता’ कहा जाता था। सामगान में निपुण आचार्य से प्रशिक्षण प्राप्त करने हेतु व्यक्ति स्वतः जाकर सामगान की शिक्षा ग्रहण करता था। संभवतः यहीं से गुरु-शिष्य परम्परा की शुरुआत हुई। सामगान की प्रचलित होने के साथ उसके विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होने लगी और गुरुकुलों की स्थापना हुई।



इन आश्रमों में गुरुमुख से ही शिक्षा दी जाती थी। इस काल में किसी विद्यालय या पाठ्यक्रम का उल्लेख नहीं मिलता है संगीत शिक्षा की कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी है जो कुछ विवरण प्राप्त हुआ है उससे यही प्रतीत होता है कि संगीत शिक्षा का ज्ञान गुरु-शिष्य पद्धति पर ही आधारित था और सामगान के स्वरूप में ही प्रचलित था।

रामायण काल में गुरुकुल पद्धति से शिक्षा ग्रहण करने के प्रमाण मिलते हैं— “आदि कवि वाल्मीकि एक अच्छे संगीतज्ञ थे तथा उन्होंने एक शिक्षक की भांति लव तथा कुश को संगीतमय रामायण की शिक्षा दी। महर्षि वाल्मीकि एक अच्छे संगीतज्ञ ही नहीं एक अच्छे वाग्देकार भी थे।”⁴

गुरुकुल पद्धति से सीखने वाले विद्यार्थियों को कठोर अनुशासन परिश्रम तथा गुरु की सेवा करते हुए नियम और संयम से रहकर गुरु के सानिध्य में रहकर शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती थी। गुरु-शिष्य परम्परा की सबसे अच्छी बात यह थी कि यह आमजन से दूर प्रकृति से घिरे हुए एक शांत वातावरण में स्थित होते थे जहाँ रहकर नियमित अभ्यास कर वर्षों के अध्ययन के पश्चात् शिष्य शिक्षित होते थे। ऐसे वातावरण में प्राप्त शिक्षण अपने आप में अलौकिक था। गुरु शिक्षा का कोई शुल्क तो नहीं था परन्तु ऋषियों के आश्रम ही एक प्रकार से शिक्षा का केन्द्र थे।

उत्तम स्वभाव, शिक्षा के प्रति समर्पण एवं अपने गुरु के प्रति सच्ची श्रद्धा ही गुरु का वास्तविक पारिश्रमिक था। शिक्षा व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों रूपों से दी जाती थी। लिखित रूप से कोई प्रणाली विकसित नहीं थी, अतः शिष्य गुरुमुख से सीखकर वैसा ही अनुकरण करते थे अर्थात् पूर्णतया मौखिक प्रणाली ही शिक्षण का आधार थी संगीत कला के सीखने के लिये यह पद्धति उत्तम थी। धीरे-धीरे समय परिवर्तन होने के साथ तथा परिस्थितियों के बदलाव के फलस्वरूप इस पद्धति का प्रचलन कम हो गया।

मध्यकाल एवं घराना पद्धति—

मध्यकाल जैसे तो संगीतिक दृष्टि से स्वर्ण युग कहलाता है परन्तु मुस्लिमों के आगमन के फल स्वरूप दो संस्कृतियों के आदर्शों एवं परम्पराओं में अन्तर होने के कारण संगीत पर इसका विशेष असर पड़ा। आध्यात्मिकता के इतर संगीत मात्र मनोरंजन की दृष्टि से देखा जाने लगा। प्राचीन काल में संगीत शिक्षा जहाँ व्यवस्थित थी उसमें आदर्श और संस्कार विद्यमान थे, वहीं मध्यकाल में

संगीत की शिक्षा के लिए कोई विशेष प्रयास नहीं किए गए थे बल्कि समाज में ऐसी धारणा थी कि जिसके पास कोई काम धाम नहीं होता वही संगीत सीखने लगता है। उसे समय पर्दा प्रथा का चलन होने के कारण महिलाओं को संगीत की शिक्षा से वंचित ही रहना पड़ा। राज दरबारों में आश्रय आये हुए संगीत संगीतज्ञ केवल धन अर्जन में लगे हुए थे उन्हें ना तो संगीत शिक्षण से कोई लेना-देना था न इसके प्रचार—प्रसार से। कुछ कलाकार जिन्हें राज्याश्रय प्राप्त नहीं था वे अपनी कला को सुरक्षित रखे हुए थे तथा एकांतवासी हो गए थे। हम कह सकते हैं कि संगीत की स्थिति विशेष अच्छी नहीं थी परन्तु ऐसा भी नहीं है कि संगीत पूर्ण रूप से उपेक्षित रहा। कई मुस्लिम एवं हिन्दू शासकों ने संगीत को राज्याश्रय दिया एवं उसका प्रचार—प्रसार किया।

‘महमूद गजनबी का युद्ध की विभिषिका में भी सुमधुर संगीत सुनना मोहम्मद गौरी का सूफियों की चिश्ती परम्परा के संगीतानुरागी ख्वाजा मुहम्मदीन चिश्ती के संगीत अनुराग से प्रभावित होना। अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में फारसी कवि अमीर खुसरो का सांगीतिक प्रचार प्रसार करना और अलाउद्दीन का वार्षिक उर्स में संगीतज्ञों को सम्मानित करना। बाबर का संगीत प्रेमी होना, मोहम्मद तुगलक के काल में प्रान्तीय संगीत समारोहों में संगीत शास्त्र पर चर्चा होना।’⁵ तथा सबसे महत्वपूर्ण मुगल शासक जलालुद्दीन अकबर का जिसके काल में महान संगीतज्ञ मियां तानसेन जो संगीत के प्रकाण्ड विद्वान थे उन्हें अपने नवरत्नों में शामिल करना इस बात का प्रमाण है कि मुगल शासक संगीत प्रेमी थे तथा संगीत कला का सम्मान करते थे। इस काल में बैजू बावरा, स्वामी हरिदास जैसे संगीतज्ञ भी हुए। तत्पश्चात् अंग्रेजों के आगमन की फल स्वरूप पुनः संगीत तथा उसकी शिक्षण पद्धति में परिवर्तन हुआ। जिन संगीतज्ञों को राज्याश्रय प्राप्त नहीं था वे अपनी कला को सहेजने के प्रयास में लग रहे। प्राचीन गुरु शिष्य परम्परा में गुरु एवं शिष्य का जो अनुपम संगम था वह शिक्षा का एक अनिवार्य तथ्य बन गया था। यही परम्परा घराना पद्धति में भी अनवरत् चलती रही। गुरु शिष्य का अटूट सम्बन्ध गुरु के प्रति आदर एवं समर्पण शिक्षा के प्रति लगन कठोर परिश्रम एवं साधना इस पद्धति की भी विशेषता रही है। परन्तु घराना पद्धति क्या है यह जानना आवश्यक है। यह एक ऐसी शिक्षण पद्धति है जिसमें गुरु अपने शिष्य को पीढ़ियों से चली आ रही अपनी विशिष्ट गायन शैली, विशेषताएं, नियम—कायदे, हूबहू हस्तांतरित कर संगीत



शिक्षण प्रदान करता है। यह पद्धति किसी विशिष्ट घराने से सम्बन्धित होने के कारण घराना पद्धति कहलाई। घरानों का नाम किसी विशेष जगह स्थान के व्यक्तियों से सम्बन्ध रखने के कारण उसे जगह के नाम पर पड़ गया। विशिष्ट गायन शैलियों, विधाओं के अपने अलग-अलग घराने प्रसिद्ध हुए, जिसमें गायन वादन नृत्य सभी विधाओं के अपने घराने हुए इससे घराना पद्धति की विशिष्टता का अंदाजा लगाया जा सकता है। मध्यकाल में ध्रुपद, ख्याल तथा तुमरी जैसी महत्वपूर्ण गायन शैलियों का विकास हुआ। जिनके अपने अपने घराने विकसित हुए। जैसे—

ख्याल के घराने— ग्वालियर, आगरा, किराना, जयपुर, पटियाला, दिल्ली इत्यादि।

ध्रुपद की बानिया— ध्रुपद की विशिष्टताओं और विशेष प्रकार की गायन के तरीकों से विभिन्न बानियों का जन्म हुआ। वाणी घरानों का ही पर्याय है। ध्रुपद में विशेषतया चार वानियाँ प्रचलित हुई—

(1) गोवरहारी, (2) खण्डार, (3) डागुरी, (4) नौहार।

तुमरी के घराने— तुमरी विशेषतः दो अंगों में गाई जाती है—

(1) पूर्वी अंग की तुमरी।

(2) पंजाब अंग की तुमरी।

पूर्वी अंग की तुमरी में लखनऊ तथा बनारस घराने प्रचलित हुए।

इसी प्रकार वादन व नृत्य के घराने भी प्रचलित हुए। यदि हमारी संगीत परम्परा में घराने ना होते तो संगीत की विरासत सुरक्षित न रहती। घराना शब्द मुगल काल में प्रचार में आया जब संगीत अपनी स्वर्णिम अवस्था में था। गुरु सच्चे मन से नादब्रह्म की उपासना करके अपने सूक्ष्म भेद एवं रहस्यों को अपने शिल्पों को आत्मसात् कराता था। गुरुओं को राज्याश्रय प्राप्त होने के कारण रोजी-रोटी की फिक्र नहीं थी और वह केवल संगीत को श्रेष्ठता को ध्यान में रखकर ही संगीत साधना करते थे। योग्यता सिद्ध होने पर और गुरु जी की कृपा होने पर ही कोई व्यक्ति किसी उस्ताद या कलाकार से संगीत की शिक्षा प्राप्त करता था। इसके लिए समारोह का आयोजन होता था। गुरु अपने शिष्य के हाथ पर कलावा बांधकर तथा उसके कानों में कुछ शब्द या मंत्र बोलकर उसे अपना शिष्यत्व प्रदान करता था। उसी दिन से उसकी शिक्षा का श्रीगणेश होता था। अनेक गुणों के होने के बावजूद कठोर नियमों, अधिक समय, संकीर्ण विचारधारा और सर्व सुलभ न होना आदि

कई दोष व्याप्त थे। जिससे इसका चलन कम हो गया। यद्यपि आज भी कई ऐसे कलाकार हैं जो इस परम्परा का सहेजे हुए हैं।

आधुनिक संगीत शिक्षण पद्धति अर्थात् संस्थागत संगीत शिक्षण पद्धति—

ब्रिटिश शासन के प्रादुर्भाव के बाद घराना पद्धति में कुछ शिथिलता आने लगी थी। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण शिक्षण पद्धति में वैज्ञानिक तत्व प्रबल रहे तथा सामूहिक शिक्षण को बढ़ावा मिला जो शैक्षिक संस्थानों के माध्यम से दी जाती थी अध्यात्म की अपेक्षा भौतिकवाद इस काल में प्रबल था। जिस प्रकार प्राचीन काल में संगीत को एक उच्च स्थान प्राप्त था तथा मध्यकाल में भी संगीत को मनोरंजन की वस्तु आवश्यक माना गया परन्तु राज्याश्रय प्राप्त होने के कारण इसके अस्तित्व एवं महत्व को बरकरार रखने के प्रयास भी होते रहे और घराना पद्धति ने इसमें अहम भूमिका निभाई।

'संगीत के पुनरुत्थान की दृष्टि से इस समय में घरानों की अंतिम कड़ी के रूप में पंडित भातखण्डे एवं पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर यह दो ऐसे महान संगीतज्ञ हुए जिन्होंने संगीत के पुनरुद्धार के लिए अथक परिश्रम किया और संगीत के आध्यात्मिक धरातल को सुदृढ़ रखते हुए ही उसको सर्वजन सुलभ बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।⁶ पंडित विष्णु दिगम्बर पुलस्कर ने जहाँ संगीत के क्रियात्मक पक्ष को मजबूत किया वहीं पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे ने संगीत के शास्त्र पक्ष एवं क्रियात्मक पक्ष दोनों को सुदृढ़ किया एवं संगीत की खोई हुई प्रतिष्ठा का पुनः प्रस्थापित किया। वैसे तो दोनों ही महापुरुषों ने संगीत सेवा में ही अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया परन्तु पंडित भातखण्डे का कृतित्व इस कारण भी उल्लेखनीय है कि पेशे से वकील होते हुए भी उन्होंने संगीत की विधिवत तालीम ली। संगीत के पूर्वकालीन शास्त्र का अध्ययन किया जिससे उसमें व्याप्त अशुद्धियों का अवलोकन कर उनका निराकरण करने के उपरान्त भावी संगीत को सुनियोजित एवं सुव्यवस्थित किया जा सके। इस प्रयास को फलीभूत करने हेतु उन्होंने सम्पूर्ण भारत की यात्राएं कीं, संगीत सम्मेलनों का आयोजन किया एवं सांगीतिक संस्थाओं की स्थापना की।

इससे पूर्व इस बारे में छुटपुट प्रयास 19वीं शताब्दी से प्रारम्भ हो गए थे। संगीत की शिक्षा गुरु शिष्य प्रणाली से होते हुए तथा घराना पद्धति की बाधाओं को पार करते हुए संस्थाओं या विद्यालयों में सामूहिक रूप से प्रारम्भ होने



लगी थी। जन सामान्य में अधिकतम प्रचार प्रसार शिक्षण में नियमबद्धता एवं स्तरीयता के उद्देश्य से संगीत विषय की संस्थागत सामूहिक शिक्षण पद्धति अपनाई जाने लगी। इसके द्वारा ही अधिकतम व्यक्ति लाभान्वित हो सके एवं संगीत की शिक्षा सर्वसुलभ हो सकी। इस दिशा में कई विभूतियों ने सार्थक प्रयास किये—

☛ 'भास्कर बुआ बखले द्वारा पुणे में 1874 में 'भारत गायन समाज' नामक संस्था स्थापित की गई।'⁷

☛ '1890 में बम्बई के धनी पारसियों द्वारा 'गायन उत्तेजक मंडली' नामक का एक सांगीतिक क्लब स्थापित किया गया।'⁸

☛ 'बड़ौदा के स्वर्गीय मौलाबख्श घिस्से खाँ के द्वारा स्थापित 1886 ई में सर्वप्रथम संगीत विद्यालय था जो बाद में बड़ौदा स्टेट म्यूजिक स्कूल के नाम से जाना गया।'⁹

☛ 1901 में लाहौर में पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर द्वारा गन्धर्व महाविद्यालय की स्थापना की गई।

☛ 'डॉ. एनीबेसेंट द्वारा थियोसोफिकल विद्यालय की स्थापना बनारस में की गई जिसमें संगीत को शिक्षा का विषय बनाया गया।'

☛ पंडित भातखंडे जी द्वारा 1918 में ग्वालियर के महाराजा माधव राव सिंधिया के सहयोग से महाविद्यालय की स्थापना की गई। 1920 में बड़ौदा विद्यालय का पुनरुद्धार कर कर उसे पुनः स्थापित किया तथा 1926 में लखनऊ में मैरिस म्यूजिक कॉलेज की स्थापना की गई जिसे आज हम 'भातखण्डे संस्कृति विश्वविद्यालय' के नाम से जानते हैं।

☛ 1950 में 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' की स्थापना वाराणसी में हुई जिसमें सर्वप्रथम संगीत विभाग खोला गया। जिसका अनुकरण अन्य विश्वविद्यालयों ने भी किया और संगीत शिक्षा को बढ़ावा दिया।

☛ गंधर्व विद्यालय की कई शाखाएं भी खोली गईं। इस प्रकार संगीत की संस्थागत शिक्षा का प्रारम्भ हो गया एवं उसे भी अन्य विषयों की भांति पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाने लगा इसका बहुत कुछ श्रेय पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे एवं विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी को जाता है।

आज संगीत की शिक्षा हेतु हर नगर में शिक्षण संस्थान, कोचिंग सेंटर खुले हुए हैं। महाविद्यालय विश्वविद्यालय में भी संगीत को एक विषय के रूप में स्थान

व मान्यता मिली हुई है। हम कह सकते हैं कि संगीत शिक्षा सर्वसुलभ हो गई है। परन्तु क्या इतना काफी है, संगीत का वह उद्देश्य जिसे लेकर पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे एवं पलुस्कर जी चले थे क्या वह पूरा हो गया है? इस पर विचार की आवश्यकता है। संगीत शिक्षा आज सुलभ तो हो गई है परन्तु संगीत का वह गुण जिसमें आध्यात्मिकता थी, रस था, सौंदर्य था, पवित्रता का भाव था गुरु शिष्य परम्परा एवं घराना पद्धति में जो गुरु शिष्य का सम्बन्ध था एवं शिष्य के मन में गुरु के प्रति आदर एवं समर्पण का भाव रखते हुए सीखने की प्रबल इच्छा व लगन थी वह कहीं ना कहीं संस्थागत शिक्षण में देखने को नहीं मिलती।

सोशल मीडिया का प्रभाव, समय की पाबन्दी, कार्य का अतिरिक्त भार, दोषपूर्ण पाठ्यक्रम आदि कई ऐसे कारण हैं, जिससे संगीत शिक्षण का उद्देश्य प्रभावित होता है। अतः हमें इस पर गंभीरता से विचार करना होगा और जो सपना हमारे महान संगीतज्ञों ने भावी पीढ़ी के लिए देखा उसे साकार करने हेतु प्रयास करने होंगे तभी संगीत शिक्षा का उद्देश्य फलीभूत होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- 1— शर्मा स्वतंत्र, भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, पृष्ठ संख्या 11, अनुभव पब्लिशिंग हाउस।
- 2— सक्सेना मधुबाला, भारतीय संगीत शिक्षक प्रणाली, पृष्ठ संख्या 18, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़।
- 3— रानी भावना, शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता में सांगीतिक संस्थाओं का महत्व, पृष्ठ संख्या 7, संजय प्रकाशन दिल्ली।
- 4— रानी भावना, शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता में सांगीतिक संस्थाओं का महत्व, पृष्ठ संख्या 7, संजय प्रकाशन दिल्ली।
- 5— शर्मा स्वतंत्र, भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, पृष्ठ संख्या 275, अनुभव पब्लिशिंग हाउस।
- 6— सक्सेना मधुबाला, भारतीय संगीत शिक्षक प्रणाली, पृष्ठ संख्या 84, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़।
- 7— रानी भावना, शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता में सांगीतिक संस्थाओं का महत्व, पृष्ठ संख्या 16, संजय प्रकाशन दिल्ली।
- 8— क्षीरसागर दीपक, भारतीय संगीत को पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे का योगदान, पृष्ठ संख्या 24, राजस्थान संगीत अकादमी, जोधपुर।
- 9— सक्सेना मधुबाला, भारतीय संगीत शिक्षक प्रणाली, पृष्ठ संख्या 85, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़।
- 10— सिंह ठाकुर जयदेव, भारतीय संगीत का इतिहास, संगीत रिसर्च अकादमी कलकत्ता।



वैश्वीकरण के युग में कानूनी खामियों की वजह से 'बाल श्रम' एक अभिशाप



— डॉ. अनामिका सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर —
समाजशास्त्र विभाग,
जागरण कॉलेज ऑफ आर्ट्स एण्ड
कॉमर्स, 620 डब्ल्यू ब्लॉक, साकेत
नगर, कानपुर—208014
(उत्तर प्रदेश)

ई-मेल:
anamikasinghlenovo@gmail.com

सारांश

पिछले दो दशकों में बच्चों के अधिकार के लिए राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर तमाम कानून बनाए गए हैं अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन से लेकर लाखों जन संगठन बाल मजदूरी को खत्म कर बच्चों को शिक्षित करने के लिए प्रयासरत हैं इसके बावजूद बाल मजदूरी का कलंक दुनिया के माथे से मिटाने का नाम नहीं ले रहा है दरअसल इसकी एक बड़ी वजह बच्चों के प्रति समाज का संवेदनशील ना होना है बच्चों के भी कुछ अधिकार हैं, जिसे उन्हें मिलना चाहिए समाज में इस सोच का व्यापक अभाव है की हर वर्ग का बच्चा आगे बढ़े, बच्चों का बचपन खुशहाल हो उन्हें खेल और पढ़ाई का अधिकार मिले, इसके लिए अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

संशोधित बाल श्रम निषेध कानून का उद्देश्य 14 वर्ष की आयु के नीचे के सभी बच्चों को स्कूल में दाखिला दिला कर, यह भी सुनिश्चित किया जाता है कि कोई बच्चा स्कूल ना छोड़े। बाल श्रम निषेध कानून के तहत, बाल मजदूरों की पहचान करके उनके शैक्षणिक पुनर्वास करने की कोशिश की जाती है।

बाल मजदूरी कानून एक ऐसा प्रमुख बिन्दु है। इसके ईद—गिर्द छोटी उम्र में कठोर मजदूरी की समस्या से निपटने के लिए रणनीतियाँ अख्तियार की जाती हैं।

कानून का उद्देश्य 'बाल मजदूरी' को केवल रोकना ही नहीं बल्कि सामाजिक मानकों और इसके प्रति लोगों के रवैया और व्यवहार की अभिव्यक्ति की भी समीक्षा करना है। हमारे सामाजिक आर्थिक ताने—बाने में गहराई तक समायी 'बाल मजदूरी' के जटिल मसले से निपटने के लिए कानून का हस्तक्षेप अनिवार्य हो जाता है। भारत में राष्ट्रीय बाल मजदूरी नीति के तीन अवयवों में एक महत्वपूर्ण अवयव है—'विद्यार्थी कार्य योजना' जिसका लक्ष्य है बाल मजदूरी को सामान्य रूप से खत्म करना, खास तौर पर स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक कामों से बच्चों को दूर रखना, कानून को तभी प्रभावी बनाया जा सकता है जब इसे लागू करने में कोई बाधा ना आए।

सभी बच्चों को बाल मजदूरी से दूर रखने के लिए बच्चों को मुक्त एवं अनिवार्य शिक्षा के अधिकार के तहत (कानून — 2009) स्कूल में प्रवेश सुनिश्चित करने स्वास्थ्य की दृष्टि से खत्म खतरनाक कार्य से किशोर



को दूर रखने का प्रावधान किया गया है।

बाल मजदूर दो शब्दों से बना है जो खुद में विरोधाभासी है। बाल शब्द का अभिप्राय है निष्कपट और नाजुक जब कि मजदूर शब्द का अभिप्राय है— कठिन परिश्रम और कठिन कार्य। नाजुक बच्चों से कठिन परिश्रम लेना अनैतिक और सामाजिक होने के साथ-साथ अपराध भी है। प्रारम्भ में ऐसा माना जाता था कि काम करने से बच्चों में आत्मविश्वास बढ़ता है और उन्हें सामाजिकरण की प्रक्रिया में मदद भी मिलती है। ऐसा भी माना जाता रहा है कि कम उम्र से हुनर सीखने से बच्चा जल्द ही पारंगत हो जाता है और पारम्परिक हुनर संरक्षित रहते हैं।

परन्तु आज समाज वैज्ञानिकों और मनोवैज्ञानिकों की राय माने तो जब बच्चों को मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य खराब करने वाली परिस्थितियों में लम्बे समय तक काम करने को मजबूर किया जाता है और जब उन्हें उनके बचपन से महरूम कर दिया जाता है तथा शिक्षा एवं एन अधिकारों से वंचित कर दिया जाता है तो ऐसे बालक समाज में वह स्थिति नहीं पाते। जिनके वह हकदार हो सकते थे।

बाल मजदूर विभिन्न प्रकार के होते हैं, जैसे— बंधुआ बाल मजदूर, घरेलू कार्यों में लगे बाल मजदूर, औद्योगिक कार्यों में लगे बाल मजदूर और प्रवासी बाल मजदूर। लोगों के मन में यह भ्रांति है कि गरीबी की वजह से बाल मजदूरी होती है तर्क यह भी दिया जाता है कि देश में इतनी गरीबी है कि गरीब का बच्चा काम नहीं करेगा तो भूखा मर जाएगा लेकिन हकीकत यह है कि बाल मजदूरी की वजह से ही देश में व्याप्त है— गरीबी। दुनिया के तमाम अध्ययनों से यह साबित हो चुका है कि बाल मजदूरी से गरीबी बढ़ती है उनका मानना है कि बेरोजगारी और बाल मजदूरी में एक गहरा रिश्ता है।

भारत में बंधुआ बाल मजदूरी—

बंधुआ बाल श्रम जबरन या आंशिक रूप से जबरन श्रम की एक प्रणाली है जिसके तहत बच्चा या बच्चों के माता-पिता लेनदारों के साथ मौखिक या लिखित समझौता करते हैं। बच्चा ऋण के भुगतान के रूप में काम करता है। वर्ष—2005 की आई.एल.ओ. रिपोर्ट में भारत में ऋण बंधुआ प्रथा औपनिवेशिक काल के दौरान विश्वसनीय सस्ते श्रम प्राप्त करने के साधन के रूप में उभरी, भारतीय इतिहास के उसे युग के दौरान ऋण और भूमि पट्टा सम्बन्धों को लागू किया गया, इन्हें क्षेत्रीय रूप से हाली,

हलवाहा प्रणाली कहा जाता था।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के विशेष रिपोर्ट में 1996 में तमिलनाडु राज्य में एक औचक निरीक्षण के दौरान 53 बाल मजदूर के पाए जाने की सूचना दी गई थी। इस दौरान मजदूर बच्चों के माता-पिता ने मिल मालिकों से एक लाख से ढाई लाख रूपए की अग्रिम राशि ली थी और बच्चे प्रतिदिन 12 से 14 घंटे काम कर रहे थे।

तकनीक से लैस इस आधुनिक युग में जहाँ हर असम्भव पर जीत हासिल करके उसे सम्भव में तब्दील किया जा सकता है तो मानवता के चेहरे पर लगे बाल दासता के कलंक को हम क्यों नहीं मिटा पा रहे हैं? गैर सरकारी आंकड़ों के मुताबिक दुनिया में करीब 96.2 करोड़ बच्चों आज भी बाल मजदूरी के लिए अभिशप्त हैं। मुझे याद है कुछ साल पहले तक जब हम लोग यह नारा लगाते थे की 'रोटी खेल पढ़ाई प्यार हर बच्चे का है अधिकार' तब देश में बच्चों के अधिकारों पर कोई चर्चा नहीं होती थी, इधर कई दशकों से बाल मजदूरी खत्म करने और बच्चों के अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए कई कानून बने हैं। बचपन बचाओ आंदोलन की स्थापना के करीब 6 साल बाद देश में बाल मजदूरी को लेकर पहला कानून बाल श्रम अधिनियम 1986 बना था। वर्तमान में, बाल मजदूरी पर पूरी तरह से प्रतिबन्ध लगा हुआ है फिर भी हमें कई बालक छोटे-मोटे दुकान, चाय की दुकान होटल में काम करते हुए दिख ही जाते हैं।

हमारे देश की सरकार बच्चों के विकास के लिए समय-समय पर कई योजनाएं लाती रहती है परन्तु कानूनी खामियों की वजह से सभी वर्ग के बच्चे इन योजनाओं का लाभ नहीं उठा पाते हैं। नए अधिनियम में सरकार ने बाल श्रम के लिए प्रतिबंधित खतरनाक उद्योगों की सूची, जो 83 उद्योगों को शामिल किया गया था, से घटकर महज तीन कर दी है, साथ ही बच्चों को पारिवारिक उद्यम में काम करने की इजाजत भी दे दी है इसके तहत 14 साल तक के बच्चे पढ़ाई के साथ-साथ फैमिली इण्टरप्राइजेज में काम कर सकते हैं। नए कानून के तहत बच्चा माता-पिता के अलावा चाचा मामा मौसी आदि सभी परिवार का जो हिस्सा माने जाते हैं, उनके घर में काम या मजदूरी कर सकता है यह गैर कानूनी नहीं माना जाएगा।

गड़बड़ी यही से शुरू होती है परिवार का दायरा माता-पिता तक ही सीमित रहना चाहिए था क्योंकि



ज्यादातर मामलों में रिश्तेदार ही मजदूरी करवाते हैं। नए कानून में देखा गया है कि बाल श्रम को क्षमा योग अपराध की श्रेणी में ला दिया गया है और डी.एम. को यह अधिकार मिल गया है कि वह बाल श्रम कराने वाले को पहली बार पकड़े जाने पर महज जुर्माना लगाकर छोड़ सकता है, ऐसे में गुनहगार को और भी छूट मिल जाती है।

निष्कर्ष—

पिछले दो दशकों में बच्चों के अधिकार के लिए राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर तमाम कानून बनाए गए हैं अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन से लेकर लाखों जन संगठन बाल मजदूरी को खत्म कर बच्चों को शिक्षित करने के लिए प्रयासरत हैं इसके बावजूद बाल मजदूरी का कलंक दुनिया के माथे से मिटाने का नाम नहीं ले रहा है दरअसल इसकी एक बड़ी वजह बच्चों के प्रति समाज का संवेदनशील ना होना है बच्चों के भी कुछ अधिकार हैं, जिसे उन्हें मिलना चाहिए समाज में इस सोच का व्यापक अभाव है की हर वर्ग

का बच्चा आगे बढ़े, बच्चों का बचपन खुशहाल हो उन्हें खेल और पढ़ाई का अधिकार मिले, इसके लिए अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. इण्टरनेशनल लेबर ऑर्गेनाइजेशन।
2. विश्व रोजगार सामाजिक परिदृश्य ट्रेड्स।
3. महा पंजीयक एवं जनगणना आयुक्त कार्यालय, भारत सरकार।
4. एन. एस. एस. ओ. - नेशनल सैंपल सर्वे आर्गनाइजेशन।
5. आर. वी. ई. - राइट टू एजुकेशन।



सुपर प्रकाशन

(विश्वविद्यालय स्तरीय लाइब्रेरी पुस्तकों के प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता)

हम पुस्तकों को स्पष्ट शब्द सज्जा, डिजाइन एवं उत्तम कोटि की छपाई व अत्याधुनिक बाइंडिंग के साथ प्रकाशित करते हैं। विभागाध्यक्ष, एसोसिएट प्रोफेसर, प्रवक्ता, कवि, लेखक, रचनाकार - कहानीकार अपने संस्मरण, गीत, गज़ल एवं कृतियाँ या अन्य किसी भी विधा पर उत्कृष्ट ग्रन्थ अथवा रिसर्च स्कालर (शोध कर्ता) थीसिस प्रकाशन हेतु तैयार हो तो मूल प्रति (Script) भेजकर एक माह में ही अपनी प्रति को पुस्तक के आकार में प्राप्त करें।

सुपर प्रकाशन देश-विदेश के समस्त शिक्षा जगत् से जुड़े डिग्री कालेजों (Higher Education) में यू जी सी के द्वारा उपलब्ध निर्धारित मानकों के अनुसार नेशनल एवं इन्टरनेशनल पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल में अपने शोध लेख (Research Paper) को 'दि गुँजन' एवं 'अभिनव गवेषणा' (मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल) के द्वारा प्रकाशित कराने का अवसर उपलब्ध कराता है।

सुपर प्रकाशन द्वारा हिन्दी साहित्य - कला संकाय, कामर्स संकाय एवं विज्ञान संकाय तीनों फैकल्टी की पुस्तकों एवं इनसाइक्लोपीडिया का प्रकाशन एवं विक्रय विश्वविद्यालय लाइब्रेरी स्तर पर किया जाता है। हमें एक बार सेवा का अवसर अवश्य प्रदान करें।

- सर्वेश तिवारी 'राजन'

(प्रबन्ध संपादक - 'दि गुँजन' एवं 'अभिनव गवेषणा')

(मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल)

के-444 'शिवराम कृपा' विश्व बैंक बर्रा, कानपुर-208 027 (उत्तर प्रदेश)

मो0- 08896244776 E-mail:super.prakashan@gmail.com

वैश्वीकरण और आत्मनिर्भर भारत की परिकल्पना

सारांश



— डॉ. अंशु पांडेय
एसोसिएट प्रोफेसर —
राजनीति विज्ञान विभाग,
दयानन्द गर्ल्स (पी. जी.) कॉलेज,
कानपुर-208001 (उत्तर प्रदेश)

ई-मेल :
mail4anshu01@gmail.com

वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसने न केवल विश्व अर्थव्यवस्था को संगठित किया, बल्कि समाज, राजनीति, संस्कृति और पर्यावरण को भी गहरे रूप से प्रभावित किया है। भारत में 1991 के उदारीकरण और निजीकरण के द्वारा वैश्विक अर्थव्यवस्था में सक्रिय भागीदारी की। इससे आर्थिक वृद्धि, सेवा क्षेत्र का अभूतपूर्व विकास और विदेशी निवेश का आगमन हुआ। कोविड-19 महामारी ने वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं की कमजोरियों को उजागर कर दिया। इसी समय भारत ने 'आत्मनिर्भर भारत अभियान' की घोषणा की। इसका मुख्य उद्देश्य यह था कि भारत बाहरी आपूर्ति पर अधिक निर्भर न होकर स्वयं अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने और वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धा करने में सक्षम बने।

मुख्य शब्द— वैश्वीकरण, भारत, उदारीकरण संस्कृति, अर्थव्यवस्था, असमानता।

वैश्वीकरण आधुनिक युग की एक महत्वपूर्ण सामाजिक एवं राजनीतिक आत्मनिर्भर भारत की परिकल्पना है। यह केवल आर्थिक समृद्धि से ही सम्बन्धित नहीं है, बल्कि बहुआयामी क्षेत्रों पर प्रकाश डालती है। सामान्यतः वैश्वीकरण का अर्थ वस्तुओं, सेवाओं, पूंजी, सूचना, तकनीकी और संस्कृति का राष्ट्रीय सीमाओं के पार मुक्त आयात निर्यात का होना है। दूसरे शब्दों में वैश्वीकरण को एक वैश्विक गाँव (Global village) के रूप में परिवर्तित करना है।

भारत जैसे विकासशील देश के लिए वैश्वीकरण का महत्व और भी अधिक है। 1991 के बाद भारत ने आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की नीतियां अपनाई तब से भारतीय समाज की राजनीति और अर्थव्यवस्था में काफी परिवर्तन दिखाई देते हैं। भारत में 1991 के उदारीकरण ने वैश्वीकरण की प्रक्रिया को तीव्र गति प्रदान की और भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व के बाजारों से जोड़ा। 'वैश्वीकरण का प्रभाव रोजगार, शिक्षा, संस्कृति, जीवन शैली पर पड़ा और भारतीय लोकतंत्र भी इससे अछूता नहीं रहा। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन लिखते हैं— "वैश्वीकरण अपने आप में ना तो पूरी तरह अच्छा है और नहीं पूरी तरह बुरा। यह बात इस पर निर्भर करती है कि समाज इसे किस प्रकार दिशा देता है।"

वैश्वीकरण की परिभाषा विद्वानों ने अलग-अलग प्रकार से दी है। एंथनी गिडेन्स के अनुसार — "वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके



माध्यम से विश्व भर के लोग एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं और यह सम्पर्क राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान के रूप में प्रकट होता है।'

विमल जालान के अनुसार— वैश्वीकरण का अर्थ है— उत्पादन, व्यापार और वित्तीय लेन-देन की ऐसी संरचना, जिसमें राष्ट्रों के बीच की सीमाएं कमजोर पड़ जाती हैं।

भारत में वैश्वीकरण का ऐतिहासिक काल —

प्रारम्भिक चरण में भारत में अंग्रेजों के आगमन ने भारतीय अर्थव्यवस्था को वैश्विक व्यापार व्यवस्था से जोड़ा, जिसके फलस्वरूप भारत से कपड़ा, मसाले और कृषि — उत्पादन यूरोप तथा अन्य देशों तक पहुंचे तथा भारत ने मशीनें, तैयार माल और नई तकनीक विदेशों से आयात की। हालांकि यह सम्बन्ध शोषणकारी था।'

इसके पश्चात (1947-1980) स्वतंत्र भारत ने समाजवादी योजना आधारित अर्थव्यवस्था अपनाई जिसमें राज्य उत्पादन और वितरण का मुख्य केन्द्र था। तथा विदेशी पूंजी पर नियंत्रण आयात — प्रतिस्थापन की नीतियों ने भारत को अपेक्षाकृत बंद अर्थव्यवस्था बनाए रखा। यद्यपि इस दौरान आत्मनिर्भरता, औद्योगिकीकरण और विज्ञान प्रौद्योगिकी में कुछ उपलब्धियाँ मिली, परन्तु वैश्विक स्तर पर भारत अपेक्षाकृत अलग-थलग रहा।

1991 के बाद भारत में व्यापक आधार पर आर्थिक सुधार देखने को मिले जिसमें गम्भीर आर्थिक संकट (विदेशी मुद्रा भण्डार की कमी, भुगतान संतुलन की समस्या) ने भारत को अपने आर्थिक नीतियों में बड़े बदलाव करने के लिए बाध्य किया। तत्कालीन वित्त मंत्री डॉ मनमोहन सिंह और प्रधानमंत्री पी. वी. नरसिंहराव के नेतृत्व में उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (L.P.G.) नीतियां लागू की गईं। इन सुधारों ने भारत को विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ा। आई.टी., क्षेत्र टेलीकॉम, बैंकिंग और सेवा क्षेत्र में व्यापक रूप से बदलाव आए। बहुराष्ट्रीय कंपनियों (M.N.N.S.) का भारत में प्रवेश हुआ और भारतीय सॉफ्टवेयर और सेवा उद्योग ने बेसिक स्तर पर पहचान बनाई।

21वीं सदी में भारत वैश्वीकरण की प्रक्रिया में गहराई से जुड़ चुका है। WTO (World Trade Organization) की सदस्यता ने भारत को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ढांचे का हिस्सा बनाया, साथ ही BRICS, G-20 और ASEAN जैसे मंचों पर भी भारत की सक्रिय भूमिका

रही।

वैश्वीकरण को प्रोत्साहित करने वाले कारक—

उदारीकरण एवं विश्व व्यापार संगठन ने वैश्वीकरण के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, साथ ही साथ विश्व में संचार परिवहन एवं उत्पादन के साधनों के विकास से विश्व के राष्ट्रों के मध्य भौतिक दूरियाँ कम हुई हैं जिसकी वजह से सभी वस्तुएं आसानी से हर जगह उपलब्ध हो सकीं हैं। आज विदेशी निवेशकों एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को भारत द्वारा अपने देश में निवेश हेतु आमंत्रित किया जा रहा है। जिसके फलस्वरूप विदेशी पूंजी का आगमन भारत में होने से हमारी अर्थव्यवस्था और भी अधिक सुदृढ़ हो रही है।

आर्थिक विकास हेतु प्रत्येक राष्ट्र को वैश्वीकरण की नीतियों को अपनाना आवश्यक हो गया है। घरेलू बाजार की सीमाएं एवं प्रतिस्पर्धा क्षमता भी भूमंडलीकरण को प्रोत्साहन दे रही है।

भारत पर वैश्वीकरण का सबसे गहरा और प्रत्यक्ष प्रभाव इसकी अर्थव्यवस्था पर पड़ा है। 1991 के बाद लागू की गई उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की नीतियों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को बन्द दरवाजों से निकलकर वैश्विक मंच पर ला खड़ा किया। इससे उत्पादन, निवेश, रोजगार और व्यापार के क्षेत्र में अनेक सकारात्मक बदलाव हुए।

जैसे वैश्वीकरण के बाद भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को भारत में निवेश करने की अनुमति प्रदान की गई, जिससे औद्योगिक और सेवा क्षेत्र को गति मिली। विदेशी पूंजी के आगमन ने नई तकनीक प्रबन्धन के आधुनिक तौर तरीके और उत्पादन क्षमता में सुधार किया। हालांकि इससे भारतीय उद्योग विदेशी कम्पनियों पर भी निर्भर होते चले गए।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आगमन ने भारतीय बाजार की संरचना को पूरी तरह से बदल दिया है। रोजमर्रा की वस्तुओं से लेकर संचार और सूचना प्रौद्योगिकी तक इन कम्पनियों ने भारतीय बाजार का प्रभुत्व स्थापित किया है। आई. टी. उद्योग और बिजनेस प्रोसेस आउटसोर्सिंग (B.P.O.), सेवाओं का विस्तार वैश्वीकरण की सबसे बड़ी उपलब्धियों में से एक है। बेंगलुरु, हैदराबाद, और गुरुग्राम जैसे शहर वैश्विक आई.टी. हब के रूप में उभरे हैं। इसने न केवल विदेशी मुद्रा अर्जन में



योगदान दिया बल्कि लाखों युवाओं को रोजगार भी उपलब्ध कराया।

वैश्वीकरण भारत में न केवल आर्थिक क्षेत्र तक सीमित रहा बल्कि इसने समाज की संरचना, जीवन – शैली, शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक संबंधों को भी गहराई से प्रभावित किया है।

शिक्षा और स्वास्थ्य क्षेत्र में वैश्वीकरण के बाद निजी विश्वविद्यालयों और तकनीकी संस्थानों की स्थापना हुई, जिससे उच्च शिक्षा को वैश्विक मानकों से जोड़ा गया। आई.टी. और प्रबन्धन शिक्षा का प्रसार भी इसी दौर की देन है। इसी प्रकार स्वास्थ्य सेवाओं में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ी और आधुनिक चिकित्सा के क्षेत्र में क्रांतिकारी वृद्धि हुई। वैश्वीकरण के कारण शहरीकरण और जीवन शैली में भी व्यापक बदलाव देखने को मिले हैं, महानगरों में रोजगार के अवसरों के कारण ग्रामीण आबादी का शहरों की ओर पलायन बढ़ा है जिसके परिणामस्वरूप महानगरों की जनसंख्या तेजी से बढ़ी और वहा जीवन शैली वैश्विक मानकों की ओर उन्मुख हुई।

वैश्वीकरण ने महिलाओं को भी नए अवसर प्रदान किये। कार्यस्थल पर उनकी भागीदारी बढ़ी और शिक्षा तथा रोजगार में उनका दायरा विस्तृत हुआ है।

वैश्वीकरण का भारतीय संस्कृति पर भी गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। जिसमें भारत की समृद्ध परंपराएं और सांस्कृतिक विविधता विश्व मंच पर अपनी पहचान बना रही है।

भारतीय सांस्कृतिक विविधता और मूलता पर आधारित है। वैश्वीकरण ने इस विविधता को विश्वपटल पर पहुंचाया है। योग, आयुर्वेद, भारतीय भोजन और बॉलीवुड जैसे सांस्कृतिक प्रतीकों ने वैश्विक पहचान बनाई। वैश्वीकरण का सबसे बड़ा सांस्कृतिक प्रभाव मीडिया और इंटरनेट के माध्यम से हुआ। उपग्रह चैनल, सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म ने भारतीय समाज को वैश्विक सांस्कृतिक प्रवाह के साथ जोड़ा।

वैश्वीकरण के लिए एक मुख्य भाषा का होना अति आवश्यक होता है इसमें अंग्रेजी भाषा वैश्विक भाषा के रूप में सामने आई, इससे रोजगार के वैश्विक अवसर बढ़े, किन्तु क्षेत्रीय भाषाओं और लोक संस्कृतियों के लिए संकट उत्पन्न हुआ। लोकगीत, लोक-कला और क्षेत्रीय परम्पराएं धीरे-धीरे बाजारवादी संस्कृति से पीछे होते चले गए।

वैश्वीकरण ने भारतीय राजनीति को अत्यधिक

प्रभावित किया है अब राजनीतिक निर्णय घरेलू परिस्थितियों से निर्धारित नहीं होते, बल्कि अन्तरराष्ट्रीय दबाव और वैश्विक नीतियाँ भी उनका हिस्सा होती हैं। वैश्वीकरण ने भारत को वैश्विक राजनीति में अधिक सक्रिय बनाया। W.T.O., BRICS, G-20 और संयुक्त राष्ट्र जैसे मंचों पर भारत की भूमिका महत्वपूर्ण हुई। वैश्वीकरण ने भारत की विदेश नीति को भी प्रभावित किया। पहले जहाँ भारत गुटनिरपेक्ष नीति का पालन करता था, वहीं अब वह वैश्विक शक्तियों के साथ रणनीतिक साझेदारी की ओर उन्मुख हुआ है।

भारत पर वैश्वीकरण के अवसर और चुनौतियाँ : एक समग्र मूल्यांकन –

भारत जैसे विकासशील देश के लिए वैश्वीकरण जहाँ वरदान साबित हुआ है, वहीं दूसरी तरफ कुछ चुनौतियाँ भी इसके सामने आई हैं। यह इस बात पर निर्भर करता है कि देश किस तरह से अवसरों का प्रयोग करता है तथा साथ ही चुनौतियों का सामना कैसे करता है।

वैश्वीकरण से प्राप्त अवसर –

1. आर्थिक वृद्धि – वैश्वीकरण के बाद भारत की ळक्क वृद्धि दर में तेजी से वृद्धि हुई। सेवा क्षेत्र, आई.टी. और उद्योग विश्व स्तर पर भारत जैसे विकासशील देश की पहचान बने है।

2. विदेशी निवेश – प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (F.D.I.) में वृद्धि हुई, जिससे रोजगार व तकनीकी प्रणाली को प्रोत्साहन मिला।

3. तकनीकी प्रगति– आधुनिक तकनीक और संचार साधनों तक पहुंच आसान हुई। इन्टरनेट क्रांति और मोबाइल इसका विशेष उदाहरण है।

4. वैश्विक मंच पर पहचान – भारत की विदेश नीति और सांस्कृतिक कूटनीति को वैश्वीकरण से एक नई पहचान प्राप्त हुई है।

वैश्वीकरण से उत्पन्न चुनौतियाँ –

1. आर्थिक असमानता – वैश्वीकरण के माध्यम से विकास का लाभ समान रूप से सभी में वितरित नहीं हो पाता। ग्रामीण वर्ग एवं गरीब तबके के लोग अभी हाशिए पर हैं जब कि उद्योगपति और भी अधिक धनी होते जा रहे हैं।

2. रोजगार संकट – तकनीकी प्रगति ने बहुत सी परम्परागत नौकरियों का समाप्त कर दिया है जिससे बेरोजगारी की समस्या बढ़ी है।

3. सांस्कृतिक संकट – पश्चिमीकरण के प्रभाव



के कारण भारत की परम्परा, भाषाएं और मूल्य कमजोर पड़ रहे हैं।

4. राजनीतिक दबाव – I.M.F. और W.T.O. जैसे अंतरराष्ट्रीय संगठनों की दी गई शर्तों के कारण भारत की नीतिगत स्वतंत्रता प्रभावित हुई।

5. जलवायु परिवर्तन – ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन से भारत बाढ़, सूखा और चक्रवात जैसी आपदाओं के खतरे हमारे सामने नजर आते हैं।

निष्कर्ष –

वैश्वीकरण और आत्मनिर्भर भारत परस्पर विरोधी न होकर पूरक विचारधाराएं हैं। भारत यदि वैश्विक अर्थव्यवस्था में अपनी पहचान बनाए रखना चाहता है, तो उसे आत्मनिर्भर बनना ही होगा। आत्मनिर्भरता भारत को केवल उपभोग का केंद्र नहीं, बल्कि उत्पादन और नवाचार का केंद्र बनाएगी। इस प्रकार, वैश्वीकरण के अवसरों का लाभ उठाते हुए और आत्मनिर्भरता के सिद्धांतों पर चलते हुए भारत 'विश्वगुरु' बनने की दिशा में आगे बढ़ सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. कौशिक, (2008) – भारतीय अर्थशास्त्र और वैश्वीकरण, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
2. सेन, अमर्त्य (2008) – भारत – विकास और स्वतंत्रता, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. गिडेंस, ए (2009) – Runaway World : How to Globalization is Reshaping our Lives.

4. जालान, बी. (1996) – इंडियाज इकोनामिक पॉलिसी, बिलिंग।
5. चन्द्र, बी (1998) भारत का स्वतंत्रता संग्राम, ज्ञान प्रकाश लिमिटेड, दिल्ली।
6. भगवती, जे. एन. (1993) – इंडिया इन ट्रांजिशन, फ्रीडम द इकोनामी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
7. अग्रवाल, सुरेश (2012) – भारतीय अर्थव्यवस्था और वैश्वीकरण, ज्ञान गैंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
8. पटनायक, पी. (2002) – वैश्वीकरण और भारत, राजकमल प्रकाशन।
9. कोठारी, के. राकेश, जैन (2009) – अंतर्राष्ट्रीय विपणन, जयपुर।
10. मित्र, राकेश (2010) – भारत में उदारीकरण और वैश्वीकरण, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
11. शर्मा के.सी. (2005) – वैश्वीकरण और भारतीय अर्थव्यवस्था, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
12. पांडे, अशोक (2014) – भारतीय संस्कृति और वैश्वीकरण, भारतीय प्रकाशन वाराणसी।
13. गुप्ता, रमेश (2011) – भाषा, संस्कृति और वैश्वीकरण, साहित्य भवन, लखनऊ।
14. कश्यप, एस. (2012) – भारतीय राजनीति और वैश्वीकरण। राजकमल प्रकाशन।
15. नाथ, एम. (2012) – वैश्वीकरण और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन।



विज्ञापन एवं निवेदन

रिसर्च जर्नल में विज्ञापन के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रबन्ध सम्पादक के पते पर सम्पर्क करें। 'अभिनव गवेषणा' (मल्टी डिस्लनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियररिव्यूड रिसर्च जर्नल) आप सभी की एक-स्ववित्त पोषित पत्रिका है, अतः पत्रिका के लिए किसी भी प्रकार का आर्थिक सहयोग सराहनीय होगा।? कृपया अपनी सहयोग राशि चेक, ड्राफ्ट अथवा आर टी जी एस के माध्यम से निम्नलिखित पते पर प्रेषित करें। - सम्पादक? - 'अभिनव गवेषणा'

के-444, 'शिवराम कृपा' विश्व बैंक बर्रा, कानपुर-208 027 (उत्तर प्रदेश, भारत)

प्रबन्धन एवं सम्पादन

'अभिनव गवेषणा' (मल्टी डिस्लनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियररिव्यूड रिसर्च जर्नल) में अपने शोध पत्रों की प्रकीर्णित करने हेतु नियमित स्थान प्रदान करने के लिए कृपया फुल स्केप की गज पर टाइप किया हुआ अथवा मेल किया हुआ शोध लेख अपनी स्वीकृति के साथ भेजें।? भेजने की पता - सेक्टर के - 444, 'शिवराम कृपा' विश्व बैंक बर्रा - कानपुर-208 027 (उत्तर प्रदेश, भारत) मोबाइल नं0 8896244776, E-mail super.prakashan@gamil.com पर सम्पर्क करें। मिलने का समय- सप्ताह में 6 दिन 10.00 से 6.00 (रविवार अवकाश)।

शिक्षा में साइबर क्राइम : चुनौतियाँ, प्रभाव और समाधान



— डॉ. सीमा मिश्रा
असिस्टेंट प्रोफेसर— बी. एड. विभाग,
डॉ. वीरेन्द्र स्वरूप इन्टीट्यूट ऑफ
प्रोफेशनल स्टडीज, किदवई नगर,
कानपुर—208011 (उत्तर प्रदेश)

ई-मेल:
seemaawasthi4@gmail.com

सारांश

डिजिटल युग में शिक्षा प्रणाली ने नए आयाम प्राप्त किए हैं। ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म, ऑनलाइन परीक्षाएं, डिजिटल पुस्तकालय और शिक्षण ऐप्स ने शिक्षा को कहीं अधिक सुलभ और प्रभावी बना दिया है। परन्तु इसी के साथ साइबर क्राइम (Cyber Crime) की समस्या भी शिक्षा क्षेत्र में विकराल रूप ले चुकी है। यह लेख शिक्षा क्षेत्र में साइबर अपराध की विविधता, प्रभाव, रोकथाम के उपाय, और भविष्य की रणनीति पर गहन चर्चा प्रस्तुत करता है। साथ ही, ग्राफिक्स के माध्यम से समस्या का दृष्टिगत विश्लेषण और समाधान को समझना आसान बनाया गया है।

प्रस्तावना—

इंटरनेट और डिजिटल तकनीक के व्यापक उपयोग ने शिक्षा प्रणाली को पूरी तरह से बदल दिया है। पहले जहाँ छात्र केवल भौतिक कक्षा में पढ़ाई करते थे, अब ऑन लाइन प्लेटफॉर्म पर शिक्षा ग्रहण करना आम हो गया है। ऐसे परिवर्तनों ने शिक्षा को अधिक सुलभ, लचीला और व्यक्तिगत बनाया है। लेकिन इसके साथ-साथ साइबर अपराध की घटनाएँ भी तेजी से बढ़ी हैं, जो शिक्षा के वातावरण को असुरक्षित बना रही हैं। इस लेख में हम साइबर क्राइम के प्रमुख प्रकार, उनके प्रभाव, रोकथाम, उपाय और जागरुकता के महत्व को समझेंगे।

साइबर क्राइम के प्रमुख प्रकार—

1. **ऑनलाइन परीक्षा धोखाधड़ी**— ऑनलाइन परीक्षा प्रणाली में लगातार बढ़ती धोखाधड़ी की घटनाएँ शिक्षा व्यवस्था के लिए चुनौती बन चुकी हैं। छात्र मोबाइल ऐप्स, ब्राउजर टैब्स, या हैकडसिस्टम के माध्यम से प्रश्नों के उत्तर प्राप्त कर लेते हैं। इसके परिणामस्वरूप शिक्षण मूल्यांकन प्रणाली की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न लगते हैं।

2. **व्यक्तिगत डेटा की चोरी**— शैक्षणिक संस्थान छात्रों व शिक्षकों का व्यक्तिगत डेटा संग्रह करते हैं, जिसमें नाम, पता, पहचान पत्र, बैंक डिटेल्स आदि शामिल होते हैं। इन डेटाबेस को हैक करके डेटा चोरी करना साइबर अपराधियों की आम प्रवृत्ति बन चुकी है। इससे छात्र-शिक्षक की गोपनीयता पर गम्भीर खतरा उत्पन्न होता है।

3. **साइबर धमकी व बदमासी**— सोशल मीडिया, इंस्टैंट मैसेजिंग ऐप्स व ईमेल के माध्यम से छात्रों और शिक्षकों को धमकाना, अपमानित करना और बदनाम करने की घटनाएँ बढ़ती जा रही हैं। मानसिक स्वास्थ्य पर इसका गहरा प्रभाव पड़ता है, जिससे शिक्षा के प्रति रुचि कम हो जाती है।

4. **फर्जी कोर्स सामग्री और अवैध सॉफ्टवेयर**— कुछ फर्जी ऑनलाइन प्लेटफॉर्म नकली कोर्स प्रमाणीकरण उपलब्ध कराते हैं। इसके



परिणामस्वरूप छात्र और अभिभावक अनजाने में इन प्लेटफॉर्म से जुड़ जाते हैं। अवैध सॉफ्टवेयर का प्रयोग भी कॉपीराइट कानून का उल्लंघन करता है और साइबरजोखिम बढ़ाता है।

साइबर क्राइम का शिक्षा क्षेत्र पर प्रभाव—

1. शैक्षणिक निष्पक्षता पर प्रभाव— ऑन लाइन परीक्षा धोखाधड़ी के चलते योग्य छात्र-अभ्यर्थियों की मेहनत पर प्रश्न उठता है। इससे निष्पक्ष मूल्यांकन प्रणाली प्रभावित होती है।

2. व्यक्तिगत गोपनीयता पर आघात— डेटाचोरी से छात्र व शिक्षक दोनों की निजी जानकारी सार्वजनिक हो जाती है। इसके चलते सामाजिक बदनामी व वित्तीय नुकसान भी हो सकते हैं।

3. मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव— साइबर धमकियों से छात्र अवसाद, चिंता और आत्म-सम्मान में गिरावट का शिकार हो सकते हैं। यह मानसिक स्वास्थ्य के लिए गंभीर चुनौती बनता जा रहा है।

साइबर क्राइम से बचाव के प्रभावी उपाय—

1. सशक्त साइबर सुरक्षा नीति— शैक्षणिक संस्थानों को साइबर सुरक्षा नीति बनाकर प्रभावी क्रियान्वयन करना चाहिए। इसमें पासवर्ड प्रबंधन, फायरवॉल, एंटी वायरस सॉफ्टवेयर, डेटा एन्क्रिप्शन, और नियमित सिस्टम अपडेट शामिल होने चाहिए।

2 — डिजिटल साक्षरता का नियमित पाठ्यक्रम— संस्थानों में डिजिटल साक्षरता को पाठ्यक्रम का अनिवार्य भाग बनाया जाना चाहिए। छात्रों और शिक्षकों को इंटरनेट की सुरक्षित उपयोग पद्धतियों, फिशिंग से बचने के उपाय, संदिग्ध लिंक पहचानने, और व्यक्तिगत जानकारी की सुरक्षा पर प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

3. साइबर अपराध रिपोर्टिंग तंत्र— छात्र और शिक्षक साइबर अपराध की घटनाओं को आसानी से रिपोर्ट कर सकें, इसके लिए स्पष्ट प्रणाली होनी चाहिए। उदाहरण के लिए — हेल्पलाइन नम्बर, ऑनलाइन पोर्टल, मोबाइल ऐप्स आदि।

4. कानूनी जागरूकता अभियान— IT Act-2000 के प्रावधानों की जानकारी व्यापक रूप से प्रदान की जानी चाहिए। छात्रों व शिक्षकों को उनके अधिकार और कानूनी कार्रवाई के विकल्प से अवगत कराना चाहिए।

5. प्रौद्योगिकी आधारित समाधान — ए आई — संचालित सुरक्षा उपकरणों का प्रयोग कर संदिग्ध गतिविधि की पहचानकर अपराध को रोका जा सकता है। उन्नत

साइबर सुरक्षा सॉफ्टवेयर संस्थानों में स्थापित किए जाने चाहिए।

5. वैश्विक दृष्टिकोण और सहयोग— साइबर क्राइम से निपटने के लिए वैश्विक स्तर पर भी प्रयास किए जा रहे हैं। अन्तरराष्ट्रीय संगठन जैसे— INTERPOL और UNODC शिक्षा क्षेत्र में साइबर सुरक्षा के प्रति सजगता बढ़ाने के लिए विशेष कार्यक्रम चला रहे हैं। भारत में राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा केन्द्र (NCSC) प्रभावी उपाय और सहायता प्रदान करता है। इसके अलावा भारत सरकार द्वारा 'राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा नीति-2013' को लागू किया गया है, जो साइबर अपराध पर रोकथाम के लिए दिशानिर्देश प्रदान करती है।

भविष्य की रणनीति —

शैक्षणिक संस्थानों में साइबर सुरक्षा शिक्षा को अनिवार्य पाठ्यक्रम में शामिल करना।

• नियमित साइबर सुरक्षा ऑडिट और निगरानी प्रक्रिया स्थापित करना।

• साइबर अपराध पीड़ितों के लिए सहायक मानसिक स्वास्थ्य सहायता प्रावधान करना।

• सरकार और शैक्षणिक संस्थानों के बीच सामंजस्य स्थापित कर साइबर अपराध नियंत्रण योजना को सशक्त बनाना।

निष्कर्ष—

साइबर क्राइम शिक्षा क्षेत्र में एक चुनौतीपूर्ण समस्या बन चुका है। इस समस्या से निपटने के लिए शैक्षणिक संस्थानों, छात्रों, शिक्षकों और सरकार को मिलकर काम करना होगा। साइबर सुरक्षा नीति का निर्माण, डिजिटल साक्षरता का समावेश, कानूनी जागरूकता, तकनीकी समाधान और वैश्विक सहयोग मिलकर एक सुरक्षित शैक्षणिक वातावरण सुनिश्चित करेंगे। भविष्य में तकनीकी नवाचार के साथ-साथ सामाजिक जागरूकता ही साइबर क्राइम को नियंत्रित कर सकेगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Information Technology Act, 2000, Government of India.
2. United Nations Office on Drugs and Crime (UNODC), Cybercrime Prevention.
3. Dr. S. K. Mishra, P Cyber Crime : Challenges and Preventive Measures in India, B International Journal of Cyber Security, Vol.-5, Issue 2, 2020.



मध्यमवर्गीय समाज में महिलाओं की स्थिति

सारांश



— डॉ. विद्या वर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर— गृहविज्ञान विभाग,
गवर्नमेन्ट डिग्री कालेज, सुमेरपुर —
210502 हमीरपुर, (उत्तर प्रदेश)

ई—मेल:
vermavidya478@gmail.com

हालांकि महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए बहुत से प्रयास हुए हैं परन्तु यह भी सत्य है, कि वह आज भी प्रताड़ित है किसी न किसी रूप में चाहे वह घर—परिवार में हो, समाज में हो, अपने कार्य—क्षेत्र में हो, आपसी रिश्ते में हो वह किसी न किसी माध्यम से शोषण का शिकार है। इस बात को नकारा नहीं जा सकता है, क्योंकि यह वास्तविक सत्य है। समाज में मध्यवर्गीय महिलायें शोषण का शिकार हैं, जिनसे मानसिक कुंठायें जन्म लेती हैं, जिसे कारण से उनका चारित्रिक, मानसिक आदि विकास बाधित होता है। वह प्रत्येक महिला प्रतिभाशाली है, परन्तु उन्हें मौका नहीं दिया जाता है, अकारण समाज में व्याप्त अनैतिक कृत्य जिसकी वजह से अपने आप को असुरक्षित महसूस करती हैं तथा घर—परिवार को भी इसी बात का ज्यादा डर रहता है। जिस कारण उनकी प्रतिभाओं का दमन हो जाता है। उनकी जिन्दगी अपनी नहीं रह जाती है वह इसीलिए दूसरे के आश्रित रहती हैं। चाहे कितने भी कठोर कदम उठाये गये हों महिलाओं की सुरक्षा को लेकर परन्तु वह बहुत ज्यादा कारगर सिद्ध नहीं हो पाये हैं।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और सामाजिक ढाँचा वर्गों में विभाजित है। यह तीन वर्गों में विभाजित है— उच्चवर्ग, मध्यमवर्ग तथा निम्न वर्ग। उच्चवर्ग की महिलाओं को सामाजिक बन्धन कम होते हैं तथा निम्न वर्ग को अपनी समय रोजी—रोटी की व्यवस्था करने में ही लग जाता है। सामाजिक समस्याओं, रीति—रिवाजों, कुसंस्कारों, रूढ़ियों आदि से मध्यमवर्ग ही प्रभावित रहता है। मध्यमवर्ग को ही इनका सामना करना पड़ता है, जूझना पड़ता है, लड़ना पड़ता है। रोजी—रोटी की व्यवस्था के साथ—साथ उसे सामाजिक स्थितियों, परिस्थितियों का भी ध्यान रखना पड़ता है। इस वर्ग को ही अपनी मान—मर्यादा का ख्याल रखना पड़ता है, क्योंकि उच्चवर्ग की अपनी सामाजिक स्थिति का ख्याल नहीं रखना पड़ता है, निम्न वर्गीय लोगों को इतना संघर्ष है क्योंकि वह तो मजदूरी करेगा, मिलों, कारखानों में काम करेगा, परन्तु मध्यमवर्ग ही इन बातों से ज्यादा प्रभावित रहता है। सभी वर्गों की जीवन शैली, मानसिक स्तर भी अलग—अलग होता है, जैसा डॉ. देवराज उपाध्याय कहते हैं— “भिन्न—भिन्न वर्ग के भिन्न—भिन्न लोग, भिन्न—भिन्न मानसिक स्तरों पर निवास करते हैं। किन्तु उनकी जीवनानुभूतियाँ भिन्न होती हैं और उनके देखने—सुनने का ढंग भी अलग—अलग होता है।”

इस प्रकार हर वर्ग का मानसिक धरातल अलग—अलग होता है। मध्य वर्ग में पुरुष अपनी नौकरी को लेकर सोशल स्टेटस बनाने में प्रयत्नशील रहता है, परन्तु इस वर्ग की महिलाओं को भी कम संघर्ष नहीं



करना पड़ता है। उसे परिवारिक संघर्ष के साथ, आर्थिक, सामाजिक, मानसिक तथा हर प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। परिवारिक समस्याओं में जो समस्याएँ आयीं उनमें प्रमुख विवाह के कारण दहेज समस्या, पति-पत्नी के सम्बन्धों में विघटन की समस्या, परिवार के अन्य सदस्यों के साथ विघटन की समस्या आदि। दहेज की परम्परा बहुत पुरानी है। प्राचीन काल में हर राजा अपनी पुत्री के विवाह के समय अनेकों हाथी घोड़े, दास-दासियों को दहेज के साथ भेजते थे, तब यह प्रथा निर्दोष हानिरहित रिवाज भर था। सभी वर्गों के व्यक्ति भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार कन्या-दान के साथ अन्य सामान भी देते थे, लेकिन आज वह शोषण का एक ढंग बन गया है। लड़के का पिता लड़के का मूल्य मांगता है। अगर बेटी वाला सामर्थ्य नहीं है तो वह या तो विवाह तोड़ेगा या कहीं से कर्ज लेकर विवाह करेगा। इस स्थिति में कन्या के मन में ससुराल वालों के प्रति एक प्रकार की कुण्ठा भर जाती है। फिर वह उन लोगों के प्रति सम्मान या प्रेम का भाव नहीं ला पाती है। यह कुप्रथा आज हर लड़की के स्वाभिमान के लिए प्रश्न-चिन्ह है।

इस प्रकार लड़की अपने पति से जल्दी सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाती है। नतीजा आपसी रिश्तों में विघटन होता है, क्योंकि नारी सिर्फ शारीरिक मिलन ही नहीं चाहती, बल्कि उसे आत्मिक मिलन की भी आवश्यकता होती है। वह चाहती है कि उसका पति उसकी भावनाओं को समझे उसका सम्मान करें, इस सम्बन्ध में डॉ. श्रीराम महाजन लिखते हैं—“नारी मन को पुरुष के भावात्मक मिठास की अपेक्षा होती है। अपनी भीतरी आवश्यकता पूर्ति करना चाहती है। केवल वाह्य दैहिक मिलन से उसके मन को संतोष नहीं होता। अतः दैहिक मिलन के बावजूद मन की सूक्ष्म भूख की तृप्ति के लिए वह पुरुष के प्रति आकर्षित होती है।”¹ इसी विषम परिस्थिति में मध्यम वर्गीय महिलायें मानसिक कुंठा का शिकार होती हैं। दहेज से उत्पन्न इन समस्याओं ने नारी के आत्म सम्मान को ठेस पहुँचती है। कभी-कभी आर्थिक स्थिति अच्छी न होने या बिल्कुल ही गरीब होने के कारण गरीब कन्याओं का विवाह सम्पन्न परिवार में करना दुष्कर हो जाता है, दहेज से बचने के लिए कोई-कोई परिवार कन्या का बेमेल विवाह भी कर देते हैं। जिससे पति-पत्नी में आपसी सामंजस्य स्थापित नहीं हो पाता है। क्योंकि कन्या और वर की उम्र में काफी अन्तर रहता है। उसकी पसन्द का भी ख्याल नहीं रखा जाता है, जैसे नित्यानन्द पटेल कहते हैं—

“उम्र की दृष्टि से अनमेल विवाह कन्या की पसन्द की नापसन्दी का ख्याल किये बिना ही उसे बूढ़े-खूसट के गले बांध देना नारी-जाति पर भयंकर अन्याय है।”² दहेज एक भयंकर अभिशाप है, जिसमें न जाने कितने घर बर्बाद हुए हैं। कन्या के युवा होते ही माता-पिता के ऊपर उसके विवाह का एक भय सवार हो जाता है। यह समस्या जितना मध्यवर्ग की महिलाओं का शोषण करती है, उतना अन्य वर्ग का नहीं।

मध्यवर्ग की महिलाओं को अनेक परिवारिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, कभी उसे समझौता करना पड़ता है। कभी-कभी कलह की स्थिति होती है जिससे सम्बन्धों में विघटन होता है। क्योंकि कभी-कभी कोई बात ऐसी हो जाती है जिससे समझौता करना मुश्किल हो जाता है। लिहाज सम्बन्ध टूटते हैं, बिखरते हैं। इस वर्ग की नारी अगर नौकरी या व्यवसाय में है, तो वह भी परम्पराओं के तले अनेक प्रकार से प्रताड़ित होती है, जैसा ज्ञानेन्द्र रावत कहते हैं—“जो मध्यवर्गीय औरत आगे बढ़ती हुई, स्वतंत्र हुई और समृद्ध होती हुई दिखाई देती हैं, वही औरत पारम्परिक परिवारिक ढाँचे में कई तरह से प्रताड़ित भी होती है।”³ उसे आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने में भी इस प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

परम्पराओं, रीति-रिवाजों के बीच पिसना नारी जीवन की बिडम्बना रही है, उससे पार जाना मतलब परम्पराओं को तोड़ना, नहीं जाना तो अपने आप की तोड़ना क्योंकि वह परम्पराओं बल्कि गलत परम्पराओं के कारण ही तो संघर्ष की स्थिति में है। अगर परम्परायें तथा रीति-रिवाज उसके अनुकूल हों तो उसे क्यों झेलना पड़े। गलत परम्पराओं तथा उनके नाम पर उनका समाजीकरण मध्यवर्गीय महिलाओं को कुण्ठित करते हैं। इस सम्बन्ध में डॉ. कल्पना वर्मा कहती हैं—“परम्परा, रीति-रिवाज, सुरक्षा आदि के नाम पर अनुकूलन और समाजीकरण स्त्री चेतना को कुण्ठित करते हैं।”⁴ इन गलत परम्पराओं के कारण मध्यवर्गीय महिलायें शोषण का शिकार होती हैं तथा उनमें हीनभावना आती है। इन रूढ़ियों, गलत परम्पराओं की वजह उनमें आत्मविश्वास की कमी आयी है। वह ना चाह कर भी पुरुष पर भी अवलम्बित रहती हैं, जो इन्हें आगे बढ़ने से रोकती है।

स्त्री अपने ऊपर हो रहे अन्याय को कब तक सहेंगी, अन्याय एवं अपमान के साथ वह कब तक जीवन जियेगी। स्त्री को हमेशा दबाकर रखा गया। स्त्री हमेशा से प्रताड़ित रही है। उसे हमेशा उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया



है। स्त्री की मुक्ति के लिए सभी रूढ़ियों को नष्ट करने में समाज के प्रचलित गलत मान्यताओं, परम्पराओं, बराबर का दर्जा, सामाजिक परिवर्तन की मांग सफल क्यों नहीं हो रही है। घर-परिवार में हमेशा दोगली दर्जा चाहे वह मायके में हो या ससुराल में और अगर गलती से उसने प्रेम-विवाह कर लिया तो फिर प्रताड़ना। उसे कुलकलंकिनी, दुष्टा, पापिनी एवं कई प्रकार के अपमानित गलतियों से होकर गुजरना पड़ता है। आखिर ऐसा क्यों उसके साथ जिसके साथ उस महिला ने प्रेम किया है, उसे क्यों नहीं गालियाँ मिलती हैं, बस थोड़ा बहुत घर के लोग ही प्रताड़ित करते हैं, महिला को भगोड़ी आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है परन्तु अगर पुरुष प्रेम विवाह करता है तो उसे भगोड़ा क्यों नहीं कहा जाता है। मध्यमवर्गीय समाज में महिलाओं को प्रेम विवाह में बहुत अपमानित होना पड़ता है, पुरुष को कम। महिला के लिए मायके के दरवाजे हमेशा के लिए बन्द कर जाते हैं और ससुराल में भी कोई सम्मान नहीं मिलता है। अगर प्रेम विवाह से महिला अपने पिता घर-परिवार की इज्जत समाज में मिट्टी में मिलती है तो फिर पुरुष भी क्यों नहीं मिलती है। इन महिलाओं को प्रेम-विवाह में दुःख ही उठाने पड़ते हैं।

प्रेम एक नैसर्गिक क्रिया है इसका होना अपने वश में नहीं है। लड़के-लड़कियों का एक-दूसरे के प्रति आकर्षण स्वाभाविक क्रिया है, परन्तु जब दोनों विवाह कर लेते हैं तो समाज उन्हें जीने नहीं देता। अगर वह विवाह नहीं करते हैं तो कभी सुखी नहीं रह पाते हैं। क्योंकि उनका प्रेम तो अपने प्रेमी या प्रेमिका से था, ऐसी स्थिति में वह घुटते रहते हैं जैसे कमला सिंघवी कहती हैं— “कई बार लड़के-लड़कियाँ परिवारिक दबाव से या परिस्थितिबस अपनी इच्छा के विरुद्ध जिससे वे प्रेम नहीं करते हैं, उससे विवाह कर लेते हैं और फिर कभी सुखी नहीं रह पाते हैं।”⁶ कभी-कभी प्रेम की असफलता में लड़कियाँ आत्महत्या भी कर लेती हैं। क्योंकि अनेक कारणों से वह असफल रहती हैं। कभी-कभी तो समाज के भय से पुरुष भी प्रेम में शोषण दे देते हैं। पहले तो वह प्रेम कर लेते हैं परन्तु जब विवाह का समय आता है तो वह राजी नहीं होते, अपनी असंख्य समस्याओं को बताकर। असफल प्रेम के अन्य कारण जिनमें समाज का भय, नायक का किसी दूसरे के प्रति अनुरक्त होना, प्रेमी द्वारा धोखा, नायिका के मन का द्वन्द्व आदि। इस प्रकार समाज से घर से परिवार से पति आदि से परेशान मध्यमवर्गीय महिलायें अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए संघर्ष करती हैं। परन्तु कभी-कभी आत्मसम्मान

नाममात्र के लिए भी नहीं बच पाता है, जैसा कि रमणिका गुप्ता कहती हैं— “मध्यमवर्गीय औरतों में उनकी कुंठा निषेध, प्रधान आचरण-संहिता या यौन-शुचिता की ग्रन्थि उन्हें अधिक कमजोर बनाती है और उन्हें इस हद तक हीन भावना का शिकार बना देती हैं, कि उनमें आत्मसम्मान या स्वाभिमान नाममात्र भी नहीं बच पाता।”⁷ इस प्रकार से वह कुंठित हो जाती हैं।

हालांकि आज का युग वैश्वीकरण का युग है पहले जैसे पारम्परिक मूल्य समाज के किसी क्षेत्र में भी नहीं रह गये, इनमें पर्याप्त बदलाव देखने को मिलता है। पुराने समय में महिलाओं का क्षेत्र घर गृहस्थी, परिवार आदि था, ज्यादातर महिलायें इन्हीं कार्य में रहती थी। उनसे अपेक्षा भी की जाती थी कि वह घर का कार्य करें, पर्दा करें, सभी का सम्मान करें। कुछ अपवाद भी थीं जिन्होंने समाज में अपना नाम रोशन किया तथा अपना आत्मसम्मान नहीं खोने दिया, परन्तु उनसे बहुत ज्यादा परिवर्तन नहीं आया। फिर धीरे-धीरे समय के साथ परिवर्तन आया। शिक्षा का दायरा बढ़ा तो महिलायें भी शिक्षित होने लगीं, जिससे महिलाओं के बारे में लोगों के विचारों में भी परिवर्तन हुआ। कुछ लोग इस ओर अग्रसर भी हुये। कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं ने महिलाओं पर हो रहे अत्याचार को रोकने के लिए कठिन प्रयास भी किया।

हिन्दी साहित्यकारों ने भी महिलाओं की स्थिति को देखते हुए अनेक रचनायें लिखीं जिससे समाज में जागरूकता फैले, इन रचनाकारों में महिलाओं ने भी लेखन कार्य किया, जैसे— कान्ता भारतीय, मैत्री पुष्पा, मुन्नी भंडारी, प्रभा खेतान, मधुलिका, शशि प्रभा शास्त्री, शिवानी, मेहरुन्निसा परवेज, मालती जोशी, सूर्य वाला, दीप्ति खण्डेलवाल आदि महिला रचनाकारों ने नारी की मानसिक स्थितियों के धरातल को अपनी रचनाओं में वर्णित किया है। दुनिया में अब ऐसा कोई कार्यक्षेत्र नहीं रहा जहाँ महिलाओं की सहभागिता न हो। वह हर क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहीं हैं। चाहे वह खेल जगत हो, साहित्य जगत हो, राजनीति में हो या फिर विज्ञान के क्षेत्र में सभी जगह महिलायें अपना परचम लहरा रही हैं। परिवर्तन की यह बयार पारम्परिक रूप से रूढ़िवादी देशों में भी दिखाई पड़ती है। स्त्रियाँ अब दुनियाँ में न केवल राजनीति बल्कि साहित्य, कला, व्यापार, वाणिज्य, कानून, वैज्ञानिक अध्ययन आदि सभी जगहों पर महत्वपूर्ण कार्य करती दिखाई पड़ती हैं। अब साहित्य को ही ले लीजिए अभी तक महिलायें साहित्य की विषय-वस्तु के रूप में



दिखाई पड़ती थीं। अब परन्तु अब वह कई महिला साहित्यकार बन गई हैं। जिन्होंने अपनी लेखनी का लोहा मनवाया है। महादेवी वर्मा आदि महिला लेखकों ने विषय परिस्थितियों में लेखन कार्य किया और हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया।

आज के समय में पुरुष अगर महिलाओं को सीमित दायरे में रहने की बात करता है तो वह पुरातनपन्थी माना जाता है, उसको आलोचना का शिकार होना पड़ता है। जैसे कहा जाता है, कि कौन से युग में जी रहे हैं या कितना गलत सोचते हैं। आप जो स्थिति है, वर्तमान में जो महिलायें सफल हैं तो उन्हें यह सफलता बड़े संघर्ष से मिली है। अपने मुकाम तक पहुँचने के लिए उन्हें बहुत बड़ा संघर्ष करना पड़ा है, बहुत सी अड़चनें पार करने के बाद उन्हें अपनी मंजिल मिली है। मध्यवर्गीय समाज में महिलायें कितनी भी आगे बढ़ गयी हों परन्तु जिन यातनाओं को उन्होंने झेला है उस दुःख को वही समझ सकती हैं। पुरानी परम्परायें दूर रही हैं। परन्तु संघर्ष यहीं खत्म नहीं हो जा रहा है। हर मोड़ पर चुनौतियाँ मुँह बाये खड़ी हैं और हर किसी के बस की बात नहीं है, उन्हें उन से जितना जो संघर्ष करता है वही विजय पाता है, जिसने हार मान ली वह आगे भी दुःख का मार्ग चुनते हैं।

परिस्थितियाँ कितनी भी बदल गई हों, परन्तु आज भी मध्यवर्गीय महिलाओं की स्थितियों में बहुत ज्यादा सुधार नहीं हुआ है, जिस परिवर्तन की अपेक्षाएँ हैं, उनको सही होने में अभी बहुत समय लगेगा क्योंकि इस वर्ग में 'व्यक्तिगत स्वतंत्रता वर्जित है। जैसा डॉ. कुसुम वाष्णीय इस सम्बन्ध में लिखती हैं— "निम्न मध्यम वर्गीय समाज के बन्धन ऐसे हैं, जिनमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता वर्जित है। फलतः युवक—हृदय की नैसर्गिक भावनाओं को समाज की वर्जना और कठोर बन्धन कुण्ठित कर देते हैं।" और यही कुंठा विकास को अवरुद्ध करती है। असल में मध्यवर्गीय समाज बहुत जटिल है। इसी वर्ग में तमाम प्रकार के बन्धन हैं, तमाम गलत परम्परायें विद्यमान हैं, जिससे छुटकारा पाना इतना आसान नहीं है, क्योंकि समाज में रहना है, इसलिए सामाजिक प्रतिष्ठा या दिखावा करना आवश्यक है, भले ही इस आवरण को ओढ़ने में उसकी निजी जिन्दगी खत्म हो जाये। इस सम्बन्ध में रामदरश मिश्र का कहना है कि — "जीवन की सहजता स्वयं एक मूल्य है। हमारी सभ्यता ने हमारे ऊपर कितने कृत्रिम आवरण डाल रखे हैं, कि मनुष्य की तरह जिन्दगी न जीकर यन्त्र की तरह जीता है।" इतने मुखौटे उसे लाकर जीवन की वास्तविकता समाप्त हो

जाती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हालांकि महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए बहुत से प्रयास हुए हैं परन्तु यह भी सत्य है, कि वह आज भी प्रताड़ित है किसी न किसी रूप में चाहे वह घर—परिवार में हो, समाज में हो, अपने कार्य—क्षेत्र में हो, आपसी रिश्ते में हो वह किसी न किसी माध्यम से शोषण का शिकार है। इस बात को नकारा नहीं जा सकता है, क्योंकि यह वास्तविक सत्य है। समाज में मध्यवर्गीय महिलायें शोषण का शिकार हैं, जिनसे मानसिक कुंठाएँ जन्म लेती हैं, जिसे कारण से उनका चारित्रिक, मानसिक आदि विकास बाधित होता है। वह प्रत्येक महिला प्रतिभाशाली है, परन्तु उन्हें मौका नहीं दिया जाता है, अकारण समाज में व्याप्त अनैतिक कृत्य जिसकी वजह से अपने आप को असुरक्षित महसूस करती हैं तथा घर—परिवार को भी इसी बात का ज्यादा डर रहता है। जिस कारण उनकी प्रतिभाओं का दमन हो जाता है। उनकी जिन्दगी अपनी नहीं रह जाती है वह इसीलिए दूसरे के आश्रित रहती हैं। चाहे कितने भी कठोर कदम उठाये गये हों महिलाओं की सुरक्षा को लेकर परन्तु वह बहुत ज्यादा कारगर सिद्ध नहीं हो पाये हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. देवराज उपाध्याय, आधुनिक हिन्दी कथा—साहित्य और मनोविज्ञान, साहित्य भवन (प्राइवेट)लिमिटेड, इलाहाबाद, संस्करण — 1963 ई., पृष्ठ संख्या — 15।
2. डॉ. श्रीराम महाजन, आधुनिक हिन्दी साहित्य में काम—मूलक सम्वेदना, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर—208021, संस्करण—1986, पृष्ठ संख्या—171।
3. नित्यानन्द पटेल, प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में साहित्यिक चेतना, सुबोध पब्लिकेशन्स, दिल्ली—1984, पृष्ठ संख्या—5।
4. ज्ञानेन्द्र रावत, औरत : एक समाज शास्त्रीय अध्ययन, विश्वभारती प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण—2006, पृष्ठ संख्या — 191।
5. डॉ. कल्पना वर्मा, स्त्री विमर्श : विविध पहलू, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण— 2009, पृष्ठ संख्या — 109।
6. कमला सिन्धवी, नारी भीतर और बाहर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, संस्करण—1985, पृष्ठ संख्या — 89।
7. रमणिका गुप्ता, स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने, शिल्पायक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण— 2007, पृष्ठ संख्या — 14।
8. डॉ. कुसुम वाष्णीय, हिन्दी उपन्यासों में नायक, शोध सहित प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण—1973, पृष्ठ संख्या — 119।
9. रामदरश मिश्र, हिन्दी कहानी : अन्तरंग पहचान, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, संस्करण—1994, पृष्ठ संख्या—72।



संस्कृत वाङ्मय में लोक मंगल



— डॉ. अर्चना पाण्डेय
असिस्टेन्ट प्रोफेसर — संस्कृत विभाग,
बद्री विशाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
फर्रुखाबाद—209625 (उत्तर प्रदेश)

ई. मेल—

archnapandey8529@gmail.com

सारांश

साहित्य वह शक्तिशाली तत्व है जो समाज के नव निर्माण की शक्ति रखता है। समाज में शनैः-शनैः परिवर्तन लाता है। साहित्य सरलता से समाज कल्याण में सहायक होता है। साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। साहित्य समाज का दर्पण है। समाज जैसा होता है, उसी प्रकार साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है। भारत का अधिकांश प्राचीन साहित्य संस्कृत भाषा में निबद्ध है। संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषा होते हुए भी नित नूतन है। वैदिक संस्कृत साहित्य से लेकर लौकिक संस्कृत साहित्य और कालक्रम से विकास को प्राप्त आधुनिक संस्कृत साहित्य में लोक कल्याण की भावना कूट-कूट कर भरी है। संस्कृत वाङ्मय में प्राकृतिक, सामाजिक, धार्मिक, एवं राजनीतिक परिस्थितियों को सम्यक् रूप से अवगत कराता है। सम्पूर्ण विश्व के साहित्य में संस्कृत भाषा का विशिष्ट स्थान है। यह विश्व के मूर्धन्य विद्वानों ने सर्वसम्मति से स्वीकार किया है। साहित्य का मूल तत्व सबका हित साधन है। साहित्य की मूल प्रकृति लोक कल्याण की भावना से अनप्राणित है। यदि यह कहा जाए कि संस्कृत वाङ्मय का सृजन ही लोक मंगल के लिए हुआ है तो अतिशयोक्ति न होगी।

संस्कृत साहित्य के विकास क्रम को ध्यान में रखते हुए सबसे पहले वैदिक साहित्य का अनुशीलन करने पर ही हमें मानव जाति के उदात्त आदर्श का ज्ञान प्राप्त होता है। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य ज्ञान, विज्ञान, अध्यात्म तथा लौकिक विद्याओं की विपुल राशि है। जो मानव के लिए कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है। वैदिक साहित्य ने सदैव उदारता का आश्रय लिया है और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से सर्वथा परिव्याप्त है। इसके विपरीत पश्चिमी देश संकीर्ण राष्ट्रीयता की भावना से जकड़े हुए हैं, फलतः उनके साहित्य में संकीर्णता का ही परिचय हमें स्थान स्थान पर देखने को प्राप्त होता है। संस्कृत साहित्य में मानव को श्रेष्ठ बनाने का संकल्प और राष्ट्रहित निहित है। वैदिक साहित्य में कल्याण का भाव व्यष्टि के लिए न होकर अपितु समष्टि के कल्याण को द्योतित करता है। निम्न मंत्र का प्रामाण्य इस विषय में अक्षुण्ण है।

'विश्वानि देव सवितुर्दुरतानि परासुव यद् भद्रं तन्न आसुव ।।'

— (यजुर्वेद-30/3)

निम्न मंत्र भी विश्व कल्याण की भावना का परिचय देता है—

'संगच्छ्वं संवदध्वम्, सं वो मनांसि जानताम् ।



देवा भागं यथा पूर्वं सं जनाना उपासते ।।'

उपर्युक्त मंत्र में समष्टि की भावना से प्रेरित होकर एक साथ कार्य करने में प्रवृत्त होने की भावना उत्पन्न हुई है। ऋग्वेद के विश्वेदेवा सूक्त में ऋषि ने प्रार्थना की है—

'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतो—

उदध्यासो अपरीतास उदिभदः ।

देवा नो यथा सन्दिभद वृधे अरा न्—

प्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ।।'

वेदों में राष्ट्र महिमा का गायन किया गया है। वैदिक ऋषियों ने संपूर्ण विश्व के लिए एक राष्ट्र की कल्पना की थी। एकच्छत्र राजा के शासन में कभी भ्रष्टाचार नहीं होना चाहिए। यह वेदों का उद्घोष है। राष्ट्र की उन्नत कल्पना के निमित्त शुक्ल यजुर्वेद के एक मंत्र में सुन्दर प्रार्थना उपलब्ध है जो आधुनिक समाज को स्वस्थ एवं सुदृढ़ बनाने में अपनी एक अहम भूमिका निभा रही है—

'अ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्म वर्चसी जायताम् आ राष्ट्र राजन्यः शूर इषण्योऽति व्याधी महारथो जायताम्। दोग्धी धेनुर्वोढाऽनड्वान्, आशुः सप्ति, पुरंधियर्योषा जिष्णू रथेष्ठा सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे निकामे नःपर्जन्योवर्षतु। फल वत्यो न ओषधयः पच्यताम्। योगक्षेमो न कल्पताम् ।'

इस वैदिक मंत्र में प्रत्येक पदार्थ के अभ्युदय की कामना है। एवं ब्रह्मचारी हो। वेद में गुरु के लिए वाचस्पति शब्द आया है। अथर्ववेद में अच्छे शिक्षक के लिए निर्देश है कि वह स्वयं संयमी गुरु छात्र को सच्चरित्र बनाकर उसे वास्तविक मनुष्य बनता है अतः उसे भूतकृत कहते हैं—

भूतकृत ऋषयः

— (अथर्ववेद 6 / 133 / 5)

मानव कल्याण की भावना से ऋषियों ने तप और दीक्षा को अपनाया इन दोनों को अपनाने से राष्ट्र बल और आज उत्पन्न होता है।

'भद्रमिच्छन्त ऋषयः, तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।

तपो राष्ट्र बलमोजश्च जातम् ।।'

— (अथर्ववेद 19 / 41 / 1)

मनुष्य बलिष्ठ, ओजस्वी, तेजस्वी व शतायु तभी हो सकते हैं जब वह निरोगी हो। आयुर्वेद आयु का स्वतः उपदेश करता है। आयुवर्धक और आयु नाशक द्रव्यों के गुण और धर्म का वर्णन आयुर्वेद में प्राप्त होता है। सुश्रुत ने आयुर्वेद के उद्देश्य का यह भाव प्रस्तुत किया है— रोगी के

रोग की निवृत्ति और स्वस्थ के स्वास्थ्य की रक्षा।

प्राणों के यथा विधि संचार से ही जीवन है, अतः प्राण विद्या को शतपथ ब्राह्मण में अंगिरा विद्या का नाम दिया गया है। दूसरे स्थान पर रसायन विज्ञान को ही अंगिरा कहा गया है। लोगों के स्वास्थ्य लाभ हेतु स्वच्छ चिकित्सालय सुन्दर स्थान पर बनाए जाते थे ऐसा अथर्ववेद में संकेत है। वैदिक मंत्रों में वैद्य का उल्लेख भी मिलता है, वैद्य का कर्तव्य है कि वह रोगों का निवारण करें और रोगी के रोग विस्तार को और उसकी सीमा को घटा दे। वैद्य ऐसी औषधि का निर्माण करते थे जिससे मनुष्य पर वृद्धावस्था का प्रभाव ही न होवे। वैदिक सूक्तों में अश्विनी कुमारों की वैद्य के रूप में स्तुति की गई है। ऋग्वेद में अनेक गाथाएं प्राप्त हैं जब कि इन्होंने देवताओं को भी यौवन प्रदान किया और उनकी शारीरिक अशक्ति को दूर किया। ऋग्वेद में उल्लेख प्राप्त है कि अश्विनी कुमार रथ पर बैठकर पृथ्वी लोक में आते हैं और अपने उपासकों का कल्याण करते हैं।

नैतिकता का विशुद्ध वातावरण हमें वेदों से प्राप्त होता है। वेदों में निहित नैतिक भावना हमारे अन्तःकरण को निर्मल करती है। सभी जीव, पुरुष, पशु आदि सुखी हों और संसार का कल्याण हो यही संदेश नैतिकता का विशुद्ध वातावरण हमें वेदों में प्राप्त होता है। वेदों में निहित नैतिक भावना हमारे अंतःकरण को निर्मल करती है। सभी वेदों से हमें प्राप्त होता है। सफलता का साधन है स्वाहा अर्थात् सेवार्थ और हम मित्र बनकर रहें। ऋग्वेद के वरुण सूक्त में वरुण देव की त्याग और आत्मसमर्पण। वेद कहते हैं परस्पर हमारे हृदय समान हो नैतिक नियमों के देवता के रूप में स्तुति की गई है वरुण देव नियम भंग करने वालों को कठोर दण्ड देते हैं। किन्तु आत्मसमर्पण करने वालों को क्षमा भी करते हैं।

अवदुग्धानि पितर्या सृजानोऽव या वयं चकृमा तनूभिः ।

अव राजन्पशुतृपं न तायुं सृजा वत्सं न दाम्प्रो वसिष्ठम् ।।

— (ऋग्वेदः वरुण सूक्त—7 / 86 / 5)

वैदिक साहित्य में दान की महिमा का वर्णन प्रचुरता में मिलता है। दान में त्याग की भावना होती है। सृष्टि का एक-एक तत्व त्यागशील है समग्र जगत दानशील एवं त्यागशील बना हुआ जीवन की प्रणाली को अग्रसर करने में संलग्न है। दान की महिमा ऋग्वेद के एक सूक्त में वर्णित है। दान में घोड़ा दिया जाता है गौ दी जाती है। चांदी और सोना दिया जाता है। दक्षिणा देने वाला अन्न



से कभी भी शून्य नहीं होता। दक्षिणा उसकी आत्मा में प्रवेश करके सर्व समर्थ कवच का रूप धारण कर लेती है।

दक्षिणाश्वंदक्षिणा गां ददाति दक्षिणान्नं वनुते यो न आत्मा दक्षिणां वर्म कृणुते विजानन् ।।

ऋग्वेद के युग में नारी जाति ने समाज में उचित सम्मान और अधिकार प्राप्त किया था। पिता के घर में कन्याएं बहुत अधिक सम्मान पाती थीं तथा उच्च शिक्षा भी प्राप्त करती थीं। वह पति के घर पहुँचकर सारे परिवार की स्वामिनी होती थी अतः उन्हें साम्राज्ञी कहा गया है। अथर्ववेद में पत्नी को धर्मपत्नी कहा गया है। ऋग्वेद में तो पत्नी को ही घर कहा गया है। ऋग्वेद के अनेक देवता पृथ्वी उषावाक् आदि नारी रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। उपनिषदों का प्रारम्भ वैदिक परम्परा में ही हुआ था इसलिए स्वभावतः उपनिषदों में भी स्त्री समाज की स्थिति सुदृढ़ थी। स्त्री अपने पति के साथ आवश्यक रूप से यज्ञ के अनुष्ठान में भाग लेती थी। अध्ययन अध्यापन में भी उसको पूर्ण अधिकार प्राप्त थे।

वेदों ने एक ओर मंगलकारी तथ्यों की ओर दृष्टि डाली है वहीं दूसरी तरफ समाज को गलत दिशा की ओर ले जाने वाले निन्दनीय कर्मों से दूर रहने की प्रेरणा दी है। जैसे— वैदिक काल में द्यूतक्रीड़ा प्रचलित होने पर भी निन्दनीय प्रथा थी, ग्राह्य नहीं थी।

ऋग्वेद में कहा गया है कि द्यूत कर अर्थात् जुआरी का मित्र भी साथ छोड़ देता है तथा पत्नी भी उसके विरुद्ध हो जाती है।

‘दैष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि न

नाथितो विन्दते मर्डितारम् ।’

— (ऋग्वेद — अक्षसूक्त — 10/34/3)

उपर्युक्त मंत्र द्यूत कर की दयनीय व निन्दनीय स्थिति का परिचय देता है। निम्न मंत्र जुआरी को जुआ न खेलने की शिक्षा दे रहा है—

‘अक्षैर्मादीव्यः कृषिमित् कृषस्व,

वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः ।’

— (अक्ष सूक्त — 10/34/13)

यह मंत्र भी जुआरी के कल्याण की कामना कर रहा है।

ब्राह्मण काल का समाज भी पूर्ण रूप रूपेण नैतिकता से युक्त आचारवान था तथा कल्याण के लिए सत्य के अनुष्ठान पर आग्रही था। झूठ बोलने वाले व्यक्ति को यज्ञ के लिए अयोग्य बताया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में

श्रद्धा तथा सत्य की जोड़ी की रोचक कल्पना की गई है।

उपनिषदों में नैतिकता चरमोत्कर्ष पर है। उपनिषदों में वर्णित है कि यह ब्रह्मलोक अथवा ब्राह्मी स्थिति उन्हीं को प्राप्त होती है, जिनमें तप, ब्रह्मचर्य और सत्य प्रतिष्ठित है। यह निर्मल विशुद्ध ब्रह्मलोक उन्हीं को प्राप्त हो सकता है जिनमें कुटिलता, अनृत और छल—कपट नहीं है। नीति शास्त्र का मौलिक आधार श्रेयस् अथवा वास्तविक आत्म कल्याण या मानव कल्याण की भावना ही है। श्रेयस् और प्रेयस् दोनों ही मनुष्य में उपस्थित होते हैं। बुद्धिमान मनुष्य सम्यक्तया विचारकर उन दोनों में विवेक करता है तथा प्रयास को छोड़कर श्रेयस् का वरण करता है।

‘श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेत स्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः ।

श्रेयो हि धीरो ऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मंदो योगक्षेमादृणीते ।।’

— (कठोपनिषद् 1/2/2)

वेदोत्तर काल में संस्कृत काव्य जगत का महत्वपूर्ण ग्रंथ है रामायण। इसके रचयिता आदिकवि वाल्मीकि हैं। रामायण के बाण से बिंध हुए क्रौंच के लिए विलाप करने वाली क्रौंची को आदि काव्य माना जाता है। कथा प्रसिद्ध है कि जब व्याध का करुण क्रन्दन को सुनकर ऋषि वाल्मीकि के हृदय में जो शोक का उद्रेक हुआ वही आदि श्लोक बन गया। क्रौञ्च मिथुन के विघटित हो जाने पर करुणा से जो श्लोक उनके मुख से निकला वही लोक कल्याण का संदेश फैलाने वाला बना। वाल्मीकि का शोक शोक के रूप में छलका अतः रामायण का प्रारम्भ ही करुणा से होने के कारण वाल्मीकि साहृदय कवि के रूप में माने जाने लगे वाल्मीकि ने रामराज्य की सच्ची कल्पना देकर विश्व के समक्ष एक अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया है।

राम के भ्रातृप्रेम का परिचय हमें निम्न श्लोक से प्राप्त होता है—

‘देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः ।

तं पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ।।’

सीता का चरित्र भारतीय नारी के गौरव को सदा उद्घोषित करता रहेगा। निम्न श्लोकांश यह कथन सिद्ध करता है—

‘चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम् ।’

इस ग्रंथ का उद्देश्य नहीं है अपितु हिन्दू धर्म का विस्तृत चित्रण प्रस्तुत करने के कारण यह धार्मिक ग्रन्थ महाभारत में भारतीय सभ्यता का भव्य रूप दिखाई देता है। कौरव और पाण्डवों का इतिहास वर्णन ही की श्रेणी में आता



है। इसका पठन-पाठन, श्रवण-मनन सब प्रकार से मानव कल्याण के लिए है। इस विशाल ब्रह्माण्ड में मनुष्य ही सबसे श्रेष्ठ वस्तु है जिसके हितार्थ पदार्थ की सृष्टि होती है।

‘न हिमानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्।’

पुरुषार्थ से ही मानव की उन्नति होती है। व्यास जी के शब्दों में यह सिद्धान्त पाणिवाद के नाम से प्रसिद्ध है, जो कर्म में दक्ष है, उसके सब अर्थ सिद्ध होते हैं। व्यास की राष्ट्र भावना बड़ी उदात्त है। राजा ही प्रजा का हित चिंतन व मंगल साधक होता है, अतः राजनेता के लिए महाभारत एक विलक्षण आदर्श उपस्थित करता है। राजधर्म के बिगड़ने पर समाज तथा राष्ट्र का सर्वनाश हो जाता है।

‘राजमूलो महाप्राज्ञ धर्मलोकस्य लक्ष्यते।’

प्रजा राज भयादेव न खादन्ति परस्परम्।।’

— (शान्ति पर्व-अध्याय-68)

महाभारत मानव जाति की समग्र अन्तरात्मा, विचारधारा और जीवन की एक काव्यमय अभिव्यक्ति है। जो अपनी ओजस्विता और पूर्णता में अद्वितीय है और मानव कल्याण के लिए तत्परता का संदेश प्रस्तुत करती है।

भारतीय धर्म तथा संस्कृति के स्वरूप को यथार्थ रूप में जानने के लिए पुराण का अनुशीलन नियतांक अपेक्षित है। धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा भौगोलिक आदि अनेक दृष्टियों से पुराणों में मानव का कल्याण दृष्टिगोचर होता है। सभी प्राचीन विधाओं को एकत्र कर पुराणों में समाहित कर दिया गया है। पुराणों में परमेश्वर के लोक कल्याण अर्थ ब्रह्मरूप धारण करने पर निष्ठा है। अठारह पुराणों से श्रीमद्भागवत पुराण का विशेष महत्व है। श्रीमद्भागवत का कथन है कि विद्वान पुरुष उस दान की प्रशंसा नहीं करते जिसके बाद जीवन का निर्वाह करने के लिए कुछ बचे ही नहीं। दान की महिमा में और भी कहा गया है जो मनुष्य अपने धन को पाँच भागों में बाँट देता है। कुछ धर्म के लिए, कुछ यश के लिए कुछ धन की अभिवृद्धि के लिए, कुछ भोगों के लिए, कुछ अपने स्वजनों के लिए वही इस लोक और पर लोक दोनों में सुख पाता है। श्रीमद्भागवत पुराण में ब्रह्माण्ड की सृष्टि से लेकर प्रलय तक महनीय घटनाओं का अंकन उपदेश रूप में प्रस्तुत है और उन उपदेशों को कथा, कहानी, आख्यान उपाख्यान के रूप में प्रस्तुत कर जन कल्याण हेतु आकर्षक बनाया गया है।

कालिदास भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि कवि हैं।

भारतीय समाज के सच्चे रूप की झलकियाँ उनकी रचनाओं में देखने को मिलती हैं। देवता और ब्राह्मण में भक्ति, गुरु वाक्य में अटल विश्वास, मातृ रूपिणी पयस्विनी की परिचर्या, अतिथि की इष्टपूर्ति के लिए धरणीधर राजा की व्याकुलता लोकरंजन के निमित्त तथा अपने कुल को निष्कलंक रखने के लिए राजा के द्वारा अपनी प्रियतमा धर्मपत्नी का निर्वासन यह भी घटनाएं रघुवंश के अद्वितीय पात्र सृजन का द्योतन करते हैं।

कालिदास वैयक्तिक उन्नति के साथ सामाजिक उन्नति के पक्षपाती हैं। भारतीय ऋषि परम्परा ने जो तथ्य हमारे सामने प्रस्तुत किए हैं उन्हें कालिदास ने जन साधारण के हृदय में उतारने का कार्य किया है। कालिदास ने अभिज्ञान पतिगृह को जाती हुई शकुन्तला को दिया गया उपदेश इसकी पुष्टि करता है शाकुन्तलम् में अपने व्यवहारिक ज्ञान का परिचय दिया है। ऋषिकण्व के द्वारा

**‘शुश्रूस्व गुरुन् कुरु प्रिय सखीवृत्तिं सपत्नीजने,
भर्तृर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपंगमः। भूयिष्ठं भव
दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुसेकिनीं, यान्त्येवं गृहिणी पदं
युवतयो वामाः कुलस्याधयः।।’**

— (अभिज्ञान शाकुन्तलम् 4/18)

नीतिपरक रचनाओं की परम्परा जीवन के परिष्कारतथामंगल के निमित्त ही उपदेश काव्यों का सृजन हुआ है। इसका उदाहरण भर्तृहरि के नीति शतक में हमें सम्यक रूप से दृष्टिगोचर होता है।

परोपकारी व्यक्तियों का स्वभाव फलों से युक्त झुके हुए वृक्ष के समान नम्र होता है—

‘भवन्ति नम्रास्तरवः

फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्दूर विलम्बिनो घनाः।

अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः

स्वभाव एवैषपरोपकारिणाम्।।’

— भर्तृहरि (नीति शतकम्)

लोकाभ्युदय एवं निःश्रेयस प्रदात्री सर्व कल्याणकारी कल्पना तत्त्व संस्कृत साहित्य हुआ है। हितोपदेश में चरित्रोन्नयनकारी शिक्षाएं प्रेरणाप्रद, ललित तथा ग्राह्य हैं। सामाजिक संरचना एवं भाईचारे के संपोषण के लिए कवि ने अपनी रचना में विचार मुक्तामणि जगह-जगह बिखरे हुए हैं।

कवि का मानना है कि लोककल्याण के लिए सौ मूर्ख पुत्रों की अपेक्षा एक गुणवान पुत्र ही श्रेयस्कर है—

‘वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्ख शतैरपि।’



एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तार गणैरपि ।।

— (हितोपदेश / 18)

पंडित राज जगन्नाथ का अन्योक्ति विलासः भी नीति ग्रंथों की श्रेणी के अन्तर्गत आता है। इसके प्रत्येक पद्य से एक न एक शिक्षा अवश्य प्राप्त होती है। अन्योक्ति के माध्यम से पंडितराज ने जनों को अनेक शिक्षाएं व उपदेश दिए हैं। पंडित राज ने सत्संगति की विशेषता व बुरी संगति का दुष्प्रभाव बड़े सुंदर ढंग से बताया है—

‘सौरम्यं भुवनत्रयेऽपिविदित शैत्यं तु लोकोत्तरम्,
कीर्तिः किं च दिग्ङ्गनाङ्गणगता किं त्वेतदेकं श्रुणु।
सर्वानेव गुणानियं निगिरति श्री खण्ड ते सुन्दरा, नुज्झन्ती
खलु कोटरेषु गरल ज्वालां द्विजिह्वावली ।।’

मानव जीवन का दर्शन से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। दर्शन का एकमात्र लक्ष्य है, दुख की निवृत्ति। भारतीय दार्शनिकों के अनुसार दर्शनशास्त्र की उत्पत्ति सांसारिक दुखों की सत्ता को समझने में तथा अनुभव गम्य उस हेतु सत्ता को निर्मूल करने हेतु उपायों की गवेषणा व विवेचना से हुई।

दर्शन का मुख्य प्रतिपाद्य जीव और ब्रह्म का ऐक्य तथा परमात्म तत्व का ज्ञान और परमानन्द मुख्य योद्धा अर्जुन थे। कृष्ण भगवान अर्जुन के रथ के सारथी थे। युद्ध क्षेत्र में पहुँचते ही दर्शन के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करती है। महाभारत के युद्ध में पाण्डवों के अर्जुन को मोह ने अभिभूत कर लिया तब जनार्दन ने अर्जुन को ज्ञान का उपदेश दिया। गीता में श्री कृष्ण ने निष्काम कर्म का उपदेश दिया है यह भी लोक मंगल की ओर ही उपदेश सुनकर अर्जुन का मोह दूर हो गया और बह अपने कर्तव्य के मार्ग पर आगे बढ़े, अग्रसर करता है। मधुसूदन ने उपदेश दिया है कि कर्म करो। फल की चिंता मत करो कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

गीता में वासुदेव परम तत्व हैं। मनुष्य रूप में होते हुए भी वह दिव्य हैं। अपने भक्त के लिए वह मित्र, पिता तथा सब कुछ हैं। उनकी रक्षा और कल्याण का समस्त भार अपने ऊपर ले लेते हैं। भगवान ने वर्ण आश्रम धर्म के पालन पर विशेष बल दिया है। भगवान ने कहा है—

“स्वधर्मे निधनं श्रेयः पर धर्मो भयावहः”

निष्कर्ष यह निकलता है कि दिव्य वाणी संस्कृत में रची गई रचनाएँ हैं। वे सभी जीवन को कल्याणमय बनाने के लिए ही कवि के हृदय से निस्त हुई हैं।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु यह मंत्रांश लोक कल्याण की

भावना का सार प्रस्तुत करता है।

सत्यमेव जयते यह मंत्रांश मानव जीवन के अंतिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति के मार्ग को सुगम बनाता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- 1— ऋग्वेद संहिता ।
- 2— ऋक्सूक्त संग्रह — हरिदत्त शास्त्री यजुर्वेदसंहिता ।
- 3— अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन — डॉ. कपिलदेव द्विवेदी ।
- 4— वाल्मीकि रामायण ।
- 5— श्रीमद्भगवद्गीता ।
- 6— अन्योक्तिविलासः पण्डितराज जगन्नाथ ।
- 7— नीतिशतकम् — भर्तृहरि ।
- 8— कल्याण — धर्म शास्त्राकं, गीताप्रेस ।
- 9— कठोपनिषद् ।
- 10— अभिज्ञान शाकुन्तलम् ।



काव्येषु नाटकस्य रमणीयता



— प्रो. (डॉ.) बिन्दु सिंह
विभागाध्यक्ष — संस्कृत विभाग,
के. के. महाविद्यालय, इटावा—206001
(उत्तर प्रदेश)

ई. मेल—
profbindusingh@gmail.com

अस्मिन् जगति कवीनां महिमा महीयान्। कवीनां निर्मितस्तु
ब्रह्मणो निर्मितम् अपि अतिशेते। यथाह काव्यप्रकाशे आचार्यो मम्मटः—
नियतिकृतनियमरहितां ह "लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरुचिरां निर्भितिमादधती भारती कवेर्जयति।।¹

ते लु सौभाग्यशालिनः सन्ति ये कविपदमाप्नुवन्ति।
कथितमप्यस्ति काव्यकलाकोविदैः—

नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्रा सुदुर्लभा।

कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा।।²

कवीनां महिमानमेव गायन अग्निपुराणकारः कथयति—

अपारे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः।

यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।।³

इत्थं काव्यप्रणेतारः कवयो जगति भृशं भजन्ते एवं तावज्जिज्ञासा
जायते किं नाम तत्काव्यम्?⁴ वस्तुतः सहृदयहृदया" लादकारिलोकोत्तर
वर्णनानिपुरण—कविकर्मकाव्यमिति काव्यस्य सामान्यं स्वरूपमुच्यते।
काव्यस्य मीमांसा बुधैः कृतास्ति। अत्रा कानिचित् काव्यलक्षणानि
प्रस्तूयन्ते—

अदोषं गुणवत्काव्यमलंकारैरलंकृतम्।

रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रतिं च विन्दति।।⁵

तथा—

'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि'⁶

अन्यच्च—

'वाक्यं रसात्मकं काव्यं'⁷

अपि च—

'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'⁸

तत्काव्यन्तु दृश्यश्रव्यभेदेन द्विविधं भवति। तथा चाह विश्वनाथः
साहित्यदर्पणे—

'दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्'⁹

तत्र प्राधान्येन श्रवणपदवीं प्राप्य सचेतसां हृदयावर्जकं काव्यं
श्रव्यमिति कथ्यते। दर्शकानां सहृदयसामाजिकानां नेत्रानन्दविधायकं
सहृदयहृदयाकर्षकं काव्यं दृश्यमित्युच्यते। श्रव्यकाव्यं तु केवलं श्रूयते एव
— 'श्रव्यं श्रोतव्यमात्रं तत्'। तदेतच्छ्रव्यकाव्यं महाकाव्य गद्यकाव्य गीति
काव्यादिभेदेन बहुविधमा दृश्यकाव्यं तु यत् श्रूयते तस्य दर्शनमपि जायते।
श्रवणतो दर्शनं वरम् इति प्रसिद्धम्। यतोहि श्रवणेन खलु न तथा
आनन्दोपलब्धिः रसानुभूतिश्च यथा दर्शनेन। रसानुभूतिश्च नाम काव्यस्य
परमं प्रयोजनम्। इदं दृश्यं काव्यम् अभिनेयं भवति। अत्र नटादौ
रामादीनामारोपो भवति, अत इदं रूपकमप्युच्यते—



‘दृश्यं तत्राभिनेय तद्रूपारोपात्तु रूपकम्’¹⁰

अर्थात् काव्ये उपनिबद्धानां धीरोदात्त – धीरोद्धत – धीरललित – धीर प्रशान्तानां नायकानाम् अवस्थानुकारः चतुर्विधभिनय- नाटयकौशलेन अभिनेतुर्नाटस्य नायकेन तादात्म्या- पत्तिरेव नाटयमिति । अभिनेतुं योग्योभिनेय इति व्युत्पत्त्यनुसारेण नटादिभिः अभिनीयमानं नायकादीनां चरितमेव अभिनय उच्यते । अयं अभिनयो नटे रामादिनायकानां स्वरूपारोपणात् रूपकमिति अभिधीयते । अतएव धनंजयेन अपि कथितम्-

‘अवस्थानुकृतिर्नाटयम् । रूपकं तत्समारोपात्’¹¹

रूपकाणि खलु दश सन्ति –

- | | |
|------------|----------------|
| 1. नाटकम् | 2. प्रकरणम् |
| 3. भाणः | 4. व्यायोगः |
| 5. समवकारः | 6. डिमः |
| 7. ईहामृगः | 8. अंकः |
| 9. वीथी | 10. प्रहसनम् । |

यथोत्तमं विश्वनाथेन –

नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः ।

ईहामृगांकवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश ॥¹²

आचार्यः वामनोऽपि समीक्ष्यैव दशरूपकाणां विषये लिति –

‘सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः’¹³

आचार्यो धनंजयो रूपके तत्त्वत्रयं प्रमुखम् उररीकरोति । तन्मतेन एतत् तत्त्वत्रयमेव तेषां भेदकम् –

‘वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः’¹⁴

रूपकस्य विभाजनम् एतत् तत्त्वत्रयमेव खलु श्रूयते । एतेषु रूपकेषु नाटकस्य प्राधान्यं वरीवर्ति । अतः सम्प्रति रूपकस्य कृते नाटकस्यैव प्रयोगो दृश्यते । अत्र नाटके रसस्य खलु अप्रतिमं महत्त्वं वर्तते । साहित्यदर्पणे नाटकलक्षणं प्रतिपादयता विश्वनाथेन प्रोक्तं-

नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पंचसन्धिसमन्वितम् ।

विलाससद्भर्यादिगुणवद्युत्तमं नानाविभूतिभिः ॥

सुखदुःखसमुद्भूतिः नानारसनिरन्तरम् ।

पंचादिका दशपरास्तत्रांकाः परिकीर्तिताः ॥

प्रख्यातवंशो राजर्षिधीरोदात्तः प्रतापवान् ।

दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः ॥

एक एव भवेदंगी श्रृंगारो वीर एव वा ।

अंगमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहर्णोद्भुतः ॥

चत्वारः पंच वा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरुषाः ।

गोपुच्छाग्रसमाग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम् ॥¹⁵

नाटकेषु रमणीयता –

कतिचिद्विद्वांसः कलायाः अन्तः काव्यान्येव न सन्ति

अपितु कलाया अन्तः ललितकलासु दृश्यते इति स्वीकुर्वन्ति । मुख्यरूपेण ललितकलाः पंच स्वीक्रियन्ते – वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला, काव्यकला चेति । आसु पंचसु कलासु यस्याः कलायाः निरूपणे न्यूनतमानि साधनानि प्रयुज्यन्ते सैव कला श्रेष्ठतमोच्यते, अतः वास्तुकलाया अपेक्षया मूर्तिकला श्रेष्ठा अस्ति । क्रमशो विवेचने काव्यकलायामेव न्यूनतमसाधनानि उपयुज्यन्तेतः काव्यकलैव रमणीयत्वमास्वाद्यते । यतश्च श्रव्यकाव्ये तु रमणीयत्वोत्पादकानि तत्त्वानि केवलं श्रवणाभ्यामेव आस्वादकाराणि भवन्ति । तथा सहृदयाः श्रव्यकाव्यान्त- र्गतानां भावानां कल्पनाशक्तफया चित्रां हृन्मानसेकितं कृत्वा कष्टमनुभवन्ति । येन रमणीयतायाः पूर्णास्वादो-नुभोत्तफुं न पार्यतेतः दृश्यकाव्ये कष्टकल्पनया रमणीयतायाः वास्तविकं स्वरूपम् अनायासेन आस्वादयितुं शक्यते । इदमेव कारणमस्ति यत् अलौकिककलाकौशलेन अभिनयनैपुण्येन प्रदर्शितनाटकावलोकनेनैव सर्वाऽपि भावः नायकनायिकादीनां सामाजिकानां चेतःसु साक्षादंकितो भूत्वा सद्यो रसानुभूतिविषयो भवति । श्रव्यकाव्ये तु यद्यदनुभूयते श्रवणसाहाय्येन दृश्यते तत्सर्वं सूक्ष्माति- सूक्ष्म प्रयासेनैव सहृदयैरनुभूयतेतः श्रव्यापेक्षया दृश्यस्य रमणीयता सुतरां श्रेष्ठतमां पद्वीम् अध्यास्ते ।

नाट्ये सर्वविधं ज्ञानम्, सर्वविधं शिल्पं, सर्वाः विद्याः, सर्वाः कलाः, सर्वे भोगाः सर्वाण्यपि च कर्माणि विराजन्ते अतएव नाट्यशास्त्रस्य आविष्कर्त्रा भरतमुनिना नाट्यशास्त्रे प्रत्यपादि तथाहि समीक्ष्यन्ताम्-

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।

नासौ योगो न तत्कर्म नाट्यैस्मिन् यन्न दृश्यते ॥¹⁶

अतः संस्कृतनाटकानि अन्यासां भाषाणां नाटकानाम् अपेक्षया सरसवचनरचनया काव्यकला- कौशलशैल्या प्रायशः सुखान्तानि सद्यो रसानुभूतिकराणि अतिप्रसिद्धानि सन्तीति सर्वैरपि सोल्लासं स्वीक्रियते । संस्कृतनाटकानि तु नान्दीपताकाप्रकरी पंच सन्ध्यर्थ- प्रकृत्यादिभिः निबद्धानि । जीवनस्य सुखैश्वर्य- व्यावहारिकराजनीतिकशिक्षाणाम् उपदेशः तत्र सामाजिकैः अनुभूयते । कानिचिदुदाहरणानि अत्र प्रस्तूयन्ते यथा अभिज्ञानशाकुन्तले कविकुलगुरुः कालिदासः हस्तिनापुरगमनोद्यतां शकुन्तलां गार्हस्थ्यम् उपदेष्टुं काश्यपमुखेन श्लोकम् इमं संदिश्य भारतीयमहिलानाम् आदर्शस्वरूपम् प्रत्यपादयन् अखिलत् यत् –

शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने,

भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मास्म प्रतीपं गमः ।



भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी,

यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याध्याः ।।¹⁷

अपि च –

(क) अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे ।¹⁸

(ख) सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ।¹⁹

इत्यादिभिः उदाहरणैः काश्यपस्य भवानां रमणीयता चेतांसि न समावर्जयति । नागानन्दनाटके दयावीरस्य यच्चित्राम् अवलोक्यते, तदवलोक्य कस्य हृदयं कारुण्येन नाप्लावितं स्यात् । तथा च –

निराधारं धैर्यं कमिव शरणं यातु विनयः?

क्षमः क्षान्तिं वोढुमिह? विरता दानपरता?

हतः सत्यं सत्यं ब्रजतु कृपया क्वाद्य करुणा?

जगज्जातं शून्यं त्वयि तनय! लोकान्तरगते ।।²⁰

नागानन्दनाटकस्य पठनेन दयावीरसप्रवाहेण कस्य हृदयं न द्रवीभवति । हर्षेण एव रत्नावली प्रियदर्शिका च प्रणीते । रत्नावल्यां सागरिकानुरागवर्णनं सहृदयानां तस्य चेतसि सुभगां रमणीयतां न पोषयति । तथा च उत्तररामचरितनाम्नि नाटके सीताविरहेण ग्रावा अपि रोदिति वज्रस्यापि हृदयं दलतीत्यधीत्य रमणीयताया सर्वोत्कृष्टं रूपमास्वादयितुं शक्यते । मुद्राराक्षसे राजनीतेर्दुरासदाः उपदेशाः एवमेव स्मृतिपथेन चेतसि प्रविशन्तः कर्तव्यपरायणतायां नियोक्तुं वीराणां देशभक्तानां सावित्री-सीता-अत्रेयी-अहल्या- लक्ष्मीबाई- इत्यादीनाम् उदारचित्तानां देवीनाम् अभिनयेन एतद् अनुभूयते यत् रामवत् प्रवर्तितव्यम् न तु रावणादिवत् – इत्युपदेशोपि नाटकेभ्यः संगृह्यतेतः नाटकेषु काव्यापेक्षया अधिकं रमणीयत्वम् समनुभूयते ।

नाटकं वीक्ष्य साधारणजनोऽपि परमानन्दं प्राप्नोति तदा सहृदयानां तु कथैव का? ते तु रूपकरसं पायं पायं परां निर्वृतिं गच्छन्ति । आचार्यो धनंजयो रूपकम् एवम् अभिनन्दति –

ज्ञानन्दनिष्यन्दिषु रूपकेषु व्युत्पत्तिमात्रं फलमल्पबुद्धिः ।

र्योपीतिहासादिवदाह साधुस्तस्मै नमः स्वादुपरांगमाय ।।²¹

भरतमुनिः स्वकीये नाट्यस्य महत्त्वमेव निरूपयति –

दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम् ।

विश्रान्तिजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति ।।

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम् ।

लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति ।।²²

एतन्नाट्यं खलु उत्तमाधममध्यमानां सर्वेषामपि लोकानां हितं साधयति प्रचुरमानन्दं च आतनोति । यथोक्तं भरतेन –

उत्तमाधममध्यमानां नराणां कर्मसंश्रयम् ।

हितोपदेशजननं धृतिः क्रीडासुखादिकृत् ।।²³

अत्र सर्वे रसः, सर्वे भावाः, सर्वे गुणाः, सर्वाणि शास्त्राणि च राजन्ते । क्वचिदत् धर्मो दृश्यते, क्वचित् क्रीडा, क्वचिदर्थः, क्वचिच्छमः, क्वचिच्च कामः –

क्वचिद् धर्मः क्वचित् क्रीडा

क्वचिदर्थः क्वचिदर्थः क्वचिच्छमः ।

क्वचिद् हास्यं क्वचिद् युद्धं

क्वचित् कामः क्वचिद् वधः ।।²⁴

क्वचिद् वेदविद्या, क्वचिद् ऐतिह्यं, क्वचिद् आख्यानपरिकल्पनम्, आख्यानपरिकल्पनम्, क्वचिदाचार शिक्षा, क्वचिच्च विनोदविन्यासो वरीवर्ति –

वेदविद्येतिहासानामाख्यानपरिकल्पनम् ।

विनोदकरणं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति ।।

श्रुतिस्मृतिसदाचारपरिशेषार्थकल्पनम् ।

विनोदजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति ।।²⁵

अत्रा लोकवृत्तम् आश्रित्य नैके भावाः विषयाश्चात्र विराजन्ते –

नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम् ।

लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम् ।।²⁶

इदं नाट्यं तदा दैवीमाभां श्रयते ययेदं सर्वेषामपि कामान् प्रपूरयति । अस्मान्नाट्याद् यस्य यादृशी अभिरुचिः स तादृशीमेव सामग्रीम् उपलभते । अत्रा धर्मोपदेशः, विषयोपभोगचर्चा, ज्ञानं, विलासः उत्साहादयश्च सर्वे विषयाः सुशोभन्ते –

धर्मो धर्मप्रवृत्तानां कामः कामोपसेविनाम् ।

निग्रहो दुर्विनीतानां मत्तानां दमनक्रिया ।।

क्लीबानां धृष्टर्यजननमुत्साहः शूरमानिनाम् ।

अबुधनां विबोधश्च वैदुष्यं विदुषामपि ।।

अर्थोपजीविनामर्थो धृतिकद्विग्नचेतसाम् ।

ईश्वराणां विलासश्च स्थैर्यं दुर्गदितस्य च ।।²⁷

भारतीया संस्कृतिः वेदमूला । नाट्यशास्त्रं च वेदमूलम् । अत्र ऋग्वेदात् पाठ्यम्, यजुर्वेदादभिनयः, सामवेदात् संगीतम्, अथर्ववेदाच्च रसाः संगृहीताः सन्ति । यथाह भरतमुनिः –

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।

यजुर्वेदादभिनयान् रसानथर्वणादपि ।।²⁸

सहृदयैरेव रत्यादिवासनामाश्रित्य रसास्वादो विधीयते । स्वचेतोगतवासनाश्रयेणैव प्रेक्षकैरपि रसास्वादनं क्रियते । न स्याच्चेद् वासना प्रेक्षकेषु तर्हि ते जीवन्तोपि मृतोपमाः काष्ठपाषाणादिसमानाश्च । उच्यते विश्वनाथेन



धर्मदत्तेन च —

न जायते तदास्वादो विना रत्नादिवासनाम् ।

सवासनानां सभ्यानां रसस्यास्वादनं भवेत् ।²⁹

निर्वासनास्तु रंगान्तः काष्ठकुड्याश्मसन्निभाः ।³⁰

किं बहुना काव्यापेक्षया नाटकान्यभिनेतुं रंगमंचस्य विविधकलात्मक—वस्तुविन्यासादिरलंकृतस्य साहाय्येन संवादादिषु स्वाभाविकसरसकाव्यादीनां चित्राणेन दृश्यकाव्ये अतीव रमणीयता प्रत्यपादि । वस्तुतः लोकोप्यं भिन्नरुचिरस्ति, नाटकेष्वपि विभिन्नभावानां चित्राणं विविधरमणीयता सम्पादितत्वाद् विभिन्नरुचीनपि जनानभिनयं प्रति समाकृष्य विविधैः भावैः समाजिकानां मनांसि रमयति । एतन्नाट्यमहत्त्वं संवीक्ष्यैव कविता—वनिताविलासः कविकुलगुरुः कालिदासो मालवि—काग्निमित्रो लिति —

देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषम्,

रुद्रेणैदमुमाकृतव्यतिकरे स्वांगं विभक्तं द्विधम् ।

त्रौगुण्योद्भवमत्रा लोकचरितं नानारसं दृश्यते ।

नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधूप्येकं समाराधनम् ।³¹

अत एव विभिन्नरुचीनामपि जनानां समावर्जकेषु काव्यापेक्षया अवश्यं रमणीयत्वं वर्तते । नात्रा संशयः ।

इत्थं काव्यं श्रव्यम् अध्ययनाध्यापनादि द्वारा तस्य तत्त्वार्थबोधः । श्रवणद्वारा तत्र रसनिष्पत्तिः । नाटकेषु तु अभिनयादिप्रदर्शनात् वेशभूषाद्यलंकरणात् प्राकृतिकदृश्य—संयोजनात् आंगिकवाचिकाद्यभिनयसंमिश्रणात् नृत्यगीतलास्यविलासात् न केवलं सचेतसामेव रसास्वादो मनस्तोषस्य, अपितु आवालवृद्धं शिक्षितानाम् अशिक्षितानां नराणां नारीणां चानन्दावाप्तिर्मनोरंजनं च । जीवितमिदं समविषमं सुखदुःखाद्यनुभूतिप्रधानम् । खिन्नचेतोविनोदाय नाट्यं प्रेष्ठं साधनम् । नाट्यं विषण्णस्य विषादापहम्, खिन्नस्य खेदापनोदनम्, आर्त्तस्य आर्त्तिहरम्, आधि—प्रपीडितस्य मानसिकोपचारः, उत्पीडितस्य मार्गप्रदर्शकम्, यथायथं सर्वेषाम् उपकारि च । श्रान्तचित्तविनोदनस्य नान्यः साधीयान् पन्थाः । कानिचिद् नाटकानि उपदेशप्रदानि, कानिचित् शिक्षाप्रदानि कानिचिद् देशभक्ति—भगवद्भक्ति—समाजसेवा—परोपकारादिभाव समान्वितानि च प्राप्यन्ते । एवं नाटकानि सर्वजनहृद्यानि, सर्वविधज्ञानप्रदानि सर्वमनस्तोषकाणि सन्ति । सकलेपि भुवने नाट्यानां प्रसिद्धेरेतदेव मूलम् । अत एव उत्प्रेक्ष्य सत्यमेव उत्तफमस्ति — 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' ।

सन्दर्भसूचिः

1. काव्यप्रकाशः, प्रथम उल्लासः

2. अग्निपुराणोत्तफं काव्यालंकारशास्त्राम्—1 / 3
3. अग्निपुराणोत्तफं काव्यालंकारशास्त्राम्—4 / 26
4. कवेर्भावः कर्म वा काव्यम्
5. सरस्वतीकण्ठाभरणम्
6. काव्यप्रकाशः, प्रथम उल्लासः
7. साहित्यदर्पणम्, प्रथम परिच्छेदः
8. रसगंगाधरः, प्रथमम् आननम्
9. साहित्यदर्पणम्—6 / 1
10. साहित्यदर्पणम्—6 / 1
11. दशरूपकम्—1 / 7
12. साहित्यदर्पणम्—6 / 3
13. काव्यालंकारसूत्रावृत्तिः—1 / 3 / 30
14. दशरूपकम्— 1 / 11
15. साहित्यदर्पणम्— 6 / 7—11
16. नाट्यशास्त्राम्—1 / 117
17. अभिज्ञानशाकुन्तलम्—4 / 18
18. अभिज्ञानशाकुन्तलम्—4 / 19
19. अभिज्ञानशाकुन्तलम्—4 / 9
20. नागानन्दम्—5 / 31
21. दशरूपकम्—1 / 6
22. नाट्यशास्त्राम्—1 / 115—116
23. नाट्यशास्त्राम्—1 / 113
24. नाट्यशास्त्राम्—1 / 108
25. नाट्यशास्त्राम्—1 / 122—23
26. नाट्यशास्त्राम्—1 / 112
27. नाट्यशास्त्राम्—1 / 109—111
28. नाट्यशास्त्राम्—1 / 17
29. साहित्यदर्पणम्—3 / 9
30. साहित्यदर्पणम्, तृतीयपरिच्छेदे
31. मालविकाग्निमित्रम्



शोध पत्र लेखकों को निर्देश

'दि गुंजन' (मल्टी डिडिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरेनशल रेफ्रीड/पियररिव्यूड रिसर्च जर्नल) है, जिसमें सभी उपविषयों के मौलिक शोध पत्र, शोध समीक्षा, विचार एवं लेखों आदि का प्रकाशन किया जाता है। शोधकर्ता हिन्दी, अंग्रेजी अथवा संस्कृत भाषा में अपने शोध पत्र भेज सकते हैं। शोध पत्र भेजते समय कृपया निम्न बिन्दुओं पर विशेष ध्यान दें—

◆ लेखक अपना शोध पत्र सर्वेश तिवारी 'राजन' प्रबन्ध सम्पादक— 'दि गुंजन', के-444 'शिवराम कृपा' विश्व बैंक बर्रा, कानपुर-208027 (उ.प्र.) को अथवा super.prakashan@gmail.com पर प्रेषित करें।

◆ प्राप्त शोध पत्र जर्नल में प्रकाशन के पूर्व पुनर्निरीक्षित किये जायेंगे। स्वीकृत शोध पत्र कहीं और प्रकाशित नहीं होना चाहिए और न ही उस शोध पत्र का कोई भी भाग सम्पादक की अनुमति के बिना कहीं और प्रकाशित किया जा सकता है।

◆ अपने शोध-पत्र की पाण्डुलिपि निम्न भागों में तैयार करें— शीर्षक, सारांश, पाण्डुलिपि, निष्कर्ष एवं पुस्तक सन्दर्भ सूची। कृपया पुनर्निरीक्षण की गुणवत्ता में सहायता करने हेतु शोधालेख पर विशेष ध्यान दें।

◆ शीर्षक : शीर्षक पाण्डुलिपि पर अवश्य दें, किन्तु अपना पूरा नाम, पद, विषय, संस्था, पता जहाँ पर निवास एवं अध्यापन कार्य सम्पादित किया गया हो, आपका दूरभाष, मोबाइल, फ़ैक्स, ई-मेल पत्राचार की सुविधा हेतु अलग पृष्ठ पर अवश्य दें।

◆ सारांश — सारांश कृपया शोध-पत्र का सारांश अधिकतम 200 शब्दों में दें।

◆ पाण्डुलिपि— इसके अर्न्तगत मुख्य पाठ्य सामग्री होगी जो 5 से 8 पृष्ठों तक होनी चाहिए। शोध पत्र में 7-8 पृष्ठ का (सारांश, शब्द संक्षेप, निष्कर्ष एवं सन्दर्भ सूची सहित) से अधिक नहीं होना चाहिए, अन्यथा प्रकाशन हेतु स्वीकार नहीं किया जायेगा। लेखक को यह बात स्वीकार होनी चाहिए कि पुनर्निरीक्षण के दौरान किये गये संशोधन उन्हें मान्य होंगे। आलेख प्रकाशन के दौरान त्रुटि की सम्भावना न बने, इसका पूरा ख्याल रखा जाता है, फिर भी त्रुटि पाये जाने पर लेखक संशोधित री-प्रिन्ट प्राप्त कर सकता है।

◆ पुस्तक — प्रकाशक का नाम, संस्करण, संख्या, प्रकाशन वर्ष, लेखक का नाम, पृष्ठ संख्या दें।

◆ पत्रिका — पत्रिका का नाम, लेख का शीर्षक, लेखक एवं प्रकाशक का नाम, अंक, संख्या, माह, वार्षिक, अर्द्धवार्षिक, त्रैमासिक व मासिक जो भी हो स्पष्ट करें।

◆ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची — कृपया शोध पत्र में कम से कम 8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची अवश्य दें।

◆ समाचार पत्र— समाचार पत्र के प्रकाशक, प्रकाशन तिथि, वर्ष व पृष्ठ संख्या का उल्लेख करें।

◆ इण्टरनेट — वेबसाइट, पृष्ठ संख्या, मुख्य शीर्षक, अन्तःशीर्षक का उल्लेख करें।

◆ मानचित्र एवं सारणी— मानचित्र एवं सारणी अथवा चित्र शोध पत्र की समाप्ति के अन्त में दें। यह ब्लैक एण्ड व्हाइट ही होना चाहिए। इसका स्पष्ट संकेत पाण्डुलिपि में अवश्य दें (उदाहरण, सारणी संख्या आदि)।

◆ विशेष— कृपया अपना शोध पत्र ई-मेल करने के बाद फोन अथवा मोबाइल से अवश्य सूचित करें। शोध पत्र के साथ फोटो, ई-मेल एड्रेस तथा हार्डकापी के रूप में स्पीड पोस्ट द्वारा लिफाफे में भेजें। शोध पत्र हिन्दी, संस्कृत (कृतिदेव हिन्दी फान्ट 14) एवं अंग्रेजी (टाइम्स 12) में तैयार कर मेल करें। शोध पत्र प्राप्त होने के तुरन्त बाद, उसी दिन लेखक की मेल पर स्वीकृति, कवर, इंडेक्स व पेपर प्रेषित कर दिया जायेगा। super.prakashan@gmail.com से प्राप्त शोध पत्र हेतु ई-मेल/वाट्सटप से स्वीकृति भेजी जायेगी। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व प्रबन्ध सम्पादक से मोबाइल/दूरभाष पर सम्पर्क अवश्य कर लें। रिसर्च जर्नल में लेख सम्मिलित करने का सम्पादक मण्डल अथवा सलाहकार समिति का निर्णय ही अन्तिम व सभी को मान्य होगा।

◆ सुझाव — लेखकों एवं पाठकों को यह अंक कैसा लगा, इस सम्बन्ध में अपने-अपने विचार अवश्य लिखें। इससे मुझे अपनी त्रुटियों को जानने और भावी योजना बनाने में सहायता मिलेगी।

◆ विनम्र निवेदन— सभी सम्मानित सदस्यों से निवेदन है कि अपने माध्यम से संस्था में अधिकतम सदस्यों को पत्रिका परिवार से जोड़कर संस्था का सहयोग करें।

दि गुंजन

The Gunjan

मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल

Multi Disciplinary Quarterly International Refereed/Peer Reviewed Research Journal

E-mail : super.prakashan@gmail.com

ISSN - 2349-9273
Web Site: www.thegunjan.com

कार्यालय : सेक्टर 'के'-444 'शिवरामकृपा' विश्व बैंक बर्सा-कानपुर-208027

सदस्यता फार्म

श्रीमान् सम्पादक महोदय,

'दि गुंजन'

(मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल)

सेक्टर 'के'-444 'शिवरामकृपा' विश्व बैंक बर्सा-कानपुर-208027 (उ. प्र.) भारत

महोदय / महोदया,

निवेदन है कि मैं / हमारा महाविद्यालय आपके 'सुपर प्रकाशन' द्वारा प्रकाशित 'दि गुंजन' (मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/ पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल) परिवार का वर्षीय / आजीवन★ / व्यक्तिगत / संस्थागत★ सदस्य बनना चाहता हूँ / चाहती हूँ। मैं / हमारी संस्था 'सुपर प्रकाशन' विश्व बैंक बर्सा, कानपुर-27 के नाम सदस्यता शुल्क रुपये नकद / मनीआर्डर / चेक अथवा बैंक ड्राफ्ट खता क्रमांक (सुपर प्रकाशन - 52570200000355) IFS Code No. BARB0BUPGBX, बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक, शाखा- विश्व बैंक बर्सा (करही) कानपुर-27 के नाम से दे रहा हूँ।

zero

नाम (श्री/श्रीमती/डॉ.) :

पद का नाम (जहाँ वर्तमान में कार्यरत हैं) :

संस्था / निवास का नाम :

पत्र व्यवहार का पूरा पता (पिनकोड सहित) :

फोन / मोबाइल नं. :

स्थान व दिनांक :

: हस्ताक्षर

प्रबन्ध सम्पादक :

सर्वेश तिवारी 'राजन'

मोबा. : 08896244776

सम्पादक :

डॉ. सीमा मिश्रा

मोबा. : 7905483321